1. भारतीय संविधान के विकास का संक्षिप्त इतिहास

- 1757 ई॰ की प्लासी की लड़ाई और 1764 ई॰ के बक्सर के युद्ध को अंग्रेजों द्वारा जीत लिए जाने के बाद बंगाल पर ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने शासन का शिकंजा कसा।
- इसी शासन को अपने अनुकूल बनाए रखने के लिए अंग्रेजों ने समय-समय पर कई ऐक्ट पारित किए जो भारतीय संविधान के विकास की सीढ़ियां बनें।
- **1773 ई॰ का रेग्यूलेटिंग एक्टः** इसके अंतर्गत कलकत्ता प्रेसीडेंसी में एक ऐसी सरकार स्थापित की गयी जिसमें गवर्नर जनरल और उसकी परिषद के चार सदस्य थे, जो अपनी सत्ता के उपयोग संयुक्त रूप से करते थे। इसकी मुख्य बातें इस प्रकार हैं-
  - बंगाल के गवर्नर को तीनों प्रेसिडेन्सियों का गवर्नर जनरल नियुक्त किया गया।
  - कंपनी के शासन पर संसदीय नियंत्रण।
  - कलकत्ता में एक सुप्रीम कोर्ट की स्थापना की गयी।
- **1784 ई॰ का पिट्स इंडिया एक्टः** इस एक्ट के द्वारा दोहरे प्रशासन का आरंभ हुआ-
  - **बोर्ड ऑफ कंट्रोलरः** राजनीतिक मामलों के लिए।
  - **कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्सः** व्यापारिक मामलों के लिए।
- **1793 ई॰ का चार्टर अधिनियमः** इसके द्वारा नियंत्रण बोर्ड के सदस्यों तथा कर्मचारियो के वेतनादि को भारतीय राजस्व से देने की व्यवस्था की गयी।
- **1813 ई॰ का चार्टर अधिनियम-**
  - कंपनी के भारत के साथ व्यापार करने के एकाधिकार को छीन लिया गया।
  - इसके द्वारा कंपनी के अधिकार-पत्र को 20 वर्षों के लिए बढ़ा दिया गया।
  - कुछ सीमाओं के अधीन सभी ब्रिटिश नागरिकों के लिए भारत के साथ व्यापार खोल दिया गया।
  - किंतु उसे चीन के साथ व्यापार एवं पूर्वी देशों के साथ चाय के व्यापार के संबंध में 20 वर्षों के लिए एकाधिकार प्राप्त रहा।
- **1833 ई॰ का चार्टर अधिनियम-**
  - अब कंपनी का कार्य ब्रिटिश सरकार की ओर से मात्र भारत का शासन करना रह गया।
  - इसके द्वारा कंपनी के व्यापारिक अधिकार पूर्णतः समाप्त कर दिए गए।
  - भारतीय कानूनों का वर्गीकरण किया गया तथा इस कार्य के लिए विधि आयोग की नियुक्ति की व्यवस्था की गयी।
  - बगांल के गवर्नर जनरल को भारत का गवर्नर जनरल कहा जाने लगा।
- **1853 ई॰ का चार्टर अधिनियमः** इस अधिनियम के द्वारा सेवाओं में नामजदगी का सिद्धांत समाप्त कर कंपनी के महत्वपूर्ण पदों को प्रतियोगी परीक्षाओं के आधार पर भरने की व्यवस्था की गयी।
- **1858 ई॰ का चार्टर अधिनियम :**
  - भारतीय मामलों पर ब्रिटिश संसद का सीधा नियंत्रण स्थापित किया गया।
  - भारत में मंत्री पद की व्यवस्था की गयी।
  - भारत का शासन कंपनी से लेकर ब्रिटिश क्राउन के हाथों में सौंपा गया।
  - पन्द्रह सदस्यो की भारत-परिषद का सृजन हुआ।
- **1861 ई॰ का भारत शासन अधिनियम :**
  - विभागीय प्रणाली का प्रारंभ हुआ।
  - गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद् का विस्तार किया गया।
  - गवर्नर जनरल को बंगाल, उत्तर पश्चिमी सीमा प्रांत और पंजाब में विधान-परिषद स्थापित करने की शक्ति प्रदान की गयी।
  - गवर्नर जनरल को पहली बार अध्यादेश जारी करने की शक्ति प्रदान की गयी।
- **1892 ई॰ का भारत शासन अधिनियम-**
  - इसके द्वारा राजस्व एवं व्यय अथवा बजट पर बहस करने तथा कार्यारिणी से प्रश्न पूछने की शक्ति दी गई।
  - अप्रत्यक्ष चुनाव-प्रणाली की शुरूआत हुई।
- **1909 ई॰ का भारत शासन अधिनियमः** (मार्ले-मिंटो सुधार)
  - प्रांतीय विधान परिषदों की संख्या में वृद्धि की गयी।

- भारतीयों को भारत सचिव एवं गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषदों में नियुक्ति की गई।
- पहली बार मुस्लिम समुदाय के लिए पृथक प्रतिनिधित्व का उपबंध किया गया।
- केन्द्रीय और प्रांतीय विधान परिषदों को पहली बार बजट पर वाद-विवाद करने, सार्वजनिक हित के विषयों पर प्रस्ताव पेश करने, पूरक प्रश्न पूछने और मत देने का अधिकार मिला।

- **1919 ई॰ का भारत शासन अधिनियमः** (मांटेग्यू चेम्स फोर्ड सुधार)
  - इनमें सिर्फ एक अंतर था कि बजट पर स्वीकृति प्रदान करने का अधिकार निचले सदन को था।
  - केन्द्र में द्विसदनात्मक विधायिका की स्थापना की गयी- प्रथम राज्य परिषद तथा द्वितीय केन्द्रीय विधानसभा।
  - राज्य परिषद के सदस्यों की संख्या 60 थी जिसमें 34 निर्वाचित होते थे और उनका कार्यकाल 5 वर्षो होता था।
  - प्रांतों में द्वैध शासन प्रणाली का प्रवर्तन किया गया। इस योजना के अनुसार प्रांतीय विषयों को दो उपवर्गों में विभाजित किया गया- आरक्षित तथा हस्तांतरित।
  - केन्द्रीय विधानसभा के सदस्यों की संख्या 145 थी, जिनमें 104 निर्वाचित तथा 41 मनोनीत होते थे। इनका कार्यकाल 3 वर्षों का होता है। दोनों सदनों के अधिकार समान थे।
- **आरक्षित विषयः** वित्त, भूमिकर, अकाल सहायता, न्याय, पुलिस, पेंशन, अपराधिक जातियां, छापाखाना, समाचार-पत्र, सिंचाई, जलमार्ग, खान, कारखाना, बिजली, गैस, व्यॉलर, श्रमिक कल्याण, औद्योगिक विवाद, मोटरगाड़ियां, छोटे बंदरगाह और सार्वजनिक सेवाएं आदि।
- **हस्तांतरित विषयः** शिक्षा, पुस्तकालय, संग्रहालय, स्थानीय स्वायत्त शासन, चिकित्सा सहायता। सार्वजनिक निर्माण विभाग, आबकारी, उद्योग, तौल तथा माप, सार्वजनिक मनोरंजन पर नियंत्रण, धार्मिक तथा अग्रहार दान आदि।

आरक्षित विषय का प्रशासन गवर्नर अपनी कार्यकारी परिषद के माध्यम से करता था। जबकि हस्तांतरित विषय का प्रशासन प्रांतीय विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी भारतीय मंत्रियों के द्वारा किया जाता था।

  - इस अधिनियम ने भारत में एक लोक सेवा आयोग के गठन का प्रावधान किया।
  - द्वैध शासन प्रणाली को 1935 के एक्ट द्वारा समाप्त कर दिया गया।
  - भारत-सचिव को अधिकार दिया गया कि वह भारत में महालेखा-परीक्षक की नियुक्ति कर सकता है।
- **1935 ई. का भारत शासन अधिनियमः** 1935 ई. के अधिनियम में 451 धाराएं और 15 परिशिष्ट थे। इस अधिनियम की मुख्य विशेषताएं हैं-
- **अखिल भारतीय संघः** यह संघ 11 ब्रिटिश प्रांतों, 6 चीफ कमिश्नर के क्षेत्रों और उन देशी रियासतों से मिलकर बनना था, जो स्वेच्छा से संघ में सम्मिलित हों।
- देशी रियासतें संघ में सम्मिलित नहीं हुई और प्रस्तावित संघ की स्थापना संबंधी घोषणा-पत्र जारी करने का अवसर ही नहीं आया।
- प्रांतों के लिए संघ में सम्मिलित होना अनिवार्य था। किंतु देशी रियासतों के लिए यह ऐच्छिक था।
- **प्रांतीय स्वायत्ताः** इस अधिनियम के द्वारा प्रांतों में द्वैध शासन व्यवस्था का अंत कर उन्हें एक स्वंतत्र और स्वशासित संवैधानिक आधार प्रदान किया गया।

संघीय न्यायालय की व्यवस्था

- इसका अधिकार-क्षेत्र प्रांतों तथा रियासतों तक विस्तृत था। इस न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश तथा दो अन्य न्यायाधीशों की व्यवस्था की गयी।
- न्यायालय से संबंधित अंतिम शक्ति प्रिवी काउंसिल (लंदन) को प्राप्त थी।

केन्द्र में द्वैध शासन की स्थापना

- कुछ संघीय विषयों (सुरक्षा, वैदेशिक संबंध, धार्मिक मामले) को गवर्नर-जनरल के हाथों में सुरक्षित रखा गया। अन्य संघीय विषयों की व्यवस्था के लिए गवर्नर जनरल को सहायता एवं परामर्श देने हेतु मंत्रिमंडल की व्यवस्था की गयी; जो मंत्रिमंडल व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी था।

ब्रिटिश संसद की सर्वोच्चता

- इस अधिनियम में किसी भी प्रकार के परिवर्तन का अधिकार ब्रिटिश संसद के पास था।

भारत-परिषद का अंत :

- इस अधिनियम द्वारा भारत-परिषद् का अंत कर दिया गया।

सांप्रदायिक निर्वाचन-पद्धति का विस्तार :

- संघीय तथा प्रांतीय व्यवस्थापिकाओं में विभिन्न संप्रदायों को प्रतिनिधित्व देने के लिए सांप्रदायिक निर्वाचन पद्धति को जारी रखा गया और उसका विस्तार आंग्ल भारतीयों-भारतीय ईसाइयों, यूरोपियनो और हरिजनों के लिए भी किया गया।
- इसके द्वारा बर्मा को भारत से अलग कर दिया गया। अदन को इंग्लैंड के औपनिवेशिक कार्यालय के अधीन कर दिया गया और बरार को मध्य प्रांत में शामिल कर लिया गया।
- इस अधिनियम में प्रस्तावना का अभाव था।
- **1947 ई. का भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम:** ब्रिटिश संसद में 4 जुलाई, 1947 ई. को 'भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम' प्रस्तावित किया गया, जो 18 जुलाई, 1947 ई. को स्वीकृत हो गया। इस अधिनियम में 20 धाराएं थीं। इस अधिनियम के प्रमुख प्रावधान इस प्रकार हैं-

देशी अधिराज्यों की स्थापना :

- 15 अगस्त, 1947 ई. को भारत एवं पाकिस्तान नामक दो अधिराज्य बना दिए जाएंगे, और उनको ब्रिटिश सरकार सत्ता सौंप देगी। सत्ता का उत्तरदायित्व दोनों अधिराज्यों की संविधान सभा को सौंपा जाएगा।
- भारत एवं पाकिस्तान दोनों अधिराज्यों में एक-एक गवर्नर जनरल होंगे, जिनकी नियुक्ति उनके मंत्रिमंडल की सलाह से की जाएगी।
- संविधान सभा का विधानमंडल के रूप में कार्य करना :- जब तक संविधान सभाएं संविधान का निर्माण नहीं कर लेतीं, तब तक वे विधानमंडल के रूप में कार्य करती रहेंगी।
- भारत-मंत्री के पद समाप्त कर दिए जाएंगे।
- 1935 ई. के भारतीय शासन अधिनियम द्वारा शासन :- जब तक संविधान सभा द्वारा नया संविधान बनाकर तैयार नहीं किया जाता है, तब तक उस समय 1935 ई. के भारतीय शासन अधिनियम द्वारा ही शासन होगा।
- देशी रियासतों पर ब्रिटेन की सर्वोपरिता का अंत कर दिया गया। उनको भारत या पाकिस्तान किसी भी अधिराज्य में सम्मिलित होने और अपने भावी संबंधों का निश्चय करने की स्वतंत्रता प्रदान की गयी।

Add. 41-42A, Ashok Park Main, New Rohtak Road, New Delhi-110035
+91-9350679141

2. भारतीय संविधान सभा

- कैबिनेट मिशन की संस्तुतियों के आधार पर भारतीय संविधान का निर्माण करने वाली संविधान सभा का गठन जुलाई, 1946 ई. में किया गया।
- मिशन योजना के अनुसार जुलाई, 1946 ई. में संविधान सभा का चुनाव हुआ। कुल 389 सदस्यों में से प्रांतों के लिए निध र्रित 296 सदस्यों के लिए चुनाव हुए। इसमें कांग्रेस को 208, मुस्लिम लीग को 73 स्थान एवं 15 अन्य दलों के तथा स्वतंत्र उम्मीदवार निर्वाचित हुए।
- संविधान सभा के सदस्यों की कुल संख्या 389 निश्चित की गयी थी, जिसमें 292 ब्रिटिश प्रांतों के प्रतिनिधि, 4 चीफ कमिश्नर क्षेत्रों के प्रतिनिधि एवं 93 देशी रियासतो के प्रतिनिधि थे।
- 9 दिसम्बर, 1946 ई. को संविधान सभा की प्रथम बैठक नई दिल्ली स्थित कौंसिल चैम्बर के पुस्तकालय भवन में हुई। सभा के सबसे बुजुर्ग सदस्य डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा को सभा का अस्थायी अध्यक्ष चुना गया।
- हैदराबाद एक ऐसी देशी रियासत थी, जिसके प्रतिनिधि संविधान सभा में सम्मिलित नहीं हुए थे।
- प्रांतों या देशी रियासतों को उनकी जनसंख्या के अनुपात में संविधान सभा में प्रतिनिधित्व दिया गया था।
- संविधान सभा में ब्रिटिश प्रांतों के 296 प्रतिनिधियों का विभाजन सांप्रदायिक आधार पर किया गया, 213 सामान्य, 79 मुसलमान तथा 4 सिक्ख।
- संविधान सभा के सदस्यो में अनुसूचित जनजाति के सदस्यों की संख्या 33 थी।
- संविधान सभा में महिला-सदस्यो की संख्या 9 थी।
- 11 दिसम्बर, 1946 ई. को डॉ. राजेन्द्र प्रसाद संविधान सभा के स्थायी अध्यक्ष निर्वाचित हुए।
- संविधान सभा की कार्यवाही 13 दिसम्बर, 1946 ई. को जवाहरलाल नेहरू द्वारा पेश किए गए उद्देश्य प्रस्ताव के साथ प्रारंभ हुई।
- 22 जनवरी, 1947 ई. को उद्देश्य प्रस्ताव की स्वीकृति के बाद संविधान सभा ने संविधान निर्माण हेतु अनेक समितियां नियुक्त की।
- बी.एन. राव द्वारा तैयार किये गए संविधान के प्रारूप पर विचार-विमर्श करने के लिए संविधान सभा द्वारा 29 अगस्त, 1947 ई. को एक संकल्प पारित करके प्रारूप समिति का गठन किया गया तथा इसके अध्यक्ष के रूप में डॉ. भीमराव अंबेडकर को चुना गया। प्रारूप समिति के सदस्यों की संख्या 7 थी जो इस प्रकार है-
    - डा. भीमराम अम्बेडकर (अध्यक्ष)
    - अल्लादी कृष्णा स्वामी अय्यर
    - एन. गोपालस्वामी आयंगर
    - कन्हैया लाल मणिकलाल मुंशी
    - एन. माधव राव (बी.एल. मित्र के स्थान पर)
    - सैयद मुहम्मद सादुल्ला
    - डी.पी खेतान (1948 ई. में इनकी मृत्यु के बाद टी.टी. कृष्णमाचारी को सदस्य बनाया गया।
- 3 जून, 1947 ई. की योजना के अनुसार देश का बंटवारा हो जाने पर भारतीय संविधान सभा की कुल सदस्य संख्या 324 नियत की गयी, जिसमें 235 स्थान प्रांतों के लिए और 89 स्थान देशी राज्यों के लिए थे।
- देश-विभाजन के बाद संविधान-सभा का पुनर्गठन 31 अक्टूबर, 1947 ई. को किया गया और 31 दिसम्बर 1947 ई. को संविधान सभा के सदस्यों की कुल संख्या 299 थी, जिसमें प्रांतीय सदस्यों की संख्या 229 एवं देशी रियासतो के सदस्यों की संख्या 70 थी।
- संविधान सभा में संविधान का प्रथम वाचन 4 नवम्बर से 9 नवम्बर 1948 ई. तक चला।
    - संविधान पर दूसरा वाचन 15 नवम्बर 1948 ई. को प्रारंभ हुआ जो 17 अक्टूबर, 1949 तक चला।
    - संविधान का तीसरा वाचन 14 नवम्बर 1949 ई. को प्रारम्भ हुआ जो 26 नवम्बर, 1949 तक चला और संविधान सभा द्वारा संविधान को पारित कर दिया गया।
    - इस समय संविधान सभा के 284 सदस्य उपस्थित थे।
- संविधान निर्माण की प्रक्रिया में कुल 2 वर्ष 11 महीना और 18 दिन लगे। इस कार्य पर लगभग 6.4 करोड़ रुपए खर्च किए गए।
- संविधान को जब 26 नवम्बर 1949 ई. को संविधान सभा द्वारा पारित किया गया, तब इसमें कुल 22 भाग, 395 अनु.

और 8 अनुसूचियां थीं। वर्तमान समय में 22 भाग, 395 अनु. और 12 अनुसूचियां हैं।

कैबिनेट मिशन के प्रस्ताव पर गठित अंतरिम मंत्रिमंडल

- **जवाहर लाल नेहरूः** कार्यकारी परिषद् के उपाध्यक्ष, विदेशी मामले तथा राष्ट्रमंडल।
- **वल्लभ भाई पटेलः** गृह, सूचना तथा प्रसारण।
- **बलदेव सिंहः** रक्षा।
- **जान मथाईः** उद्योग तथा आपूर्ति।
- **सी. राजगोपालाचारीः** शिक्षा।
- **सी.एच. भाभाः** कार्य, खान एवं बंदरगाह।
- **राजेन्द्र प्रसादः** खाद्य एवं कृषि।
- **आसफ अलीः** रेलवे।
- **जगजीवन रामः** श्रम।
- **लियाकत अली खानः** वित्त।
- **आई.आई. चुंदरीगरः** वाणिज्य।
- संविधान के कुल अनुच्छेदों में से 15 अर्थात् 5, 6, 7, 8, 9, 60, 324, 366, 367, 372, 380, 388, 391, 392, तथा 393, अनुच्छेदों को 26 नवम्बर, 1949 ई. को ही प्रवर्तित (लागू) कर दिया गया जबकि शेष अनुच्छेदों को 26 जनवरी 1950 ई. को लागू किया गया।
- संविधान सभा की अंतिम बैठक 24 जनवरी 1950 ई. को हुई और उसी दिन संविधान सभा द्वारा डा. राजेन्द्र प्रसाद को भारत का प्रथम राष्ट्रपति चुना गया।
- कैबिनेट मिशन के सदस्य सर स्टेफोर्डक्रिप्स, लॉर्ड पेंथिकलारेंस तथा ए.बी. एलेग्जेंडर थे।
- 26 जुलाई, 1947 को गर्वनर जनरल ने पाकिस्तान के लिए पृथक संविधान सभा की स्थापना की घोषणा की।

<u>संविधान सभा की महत्वपूर्ण समिति</u>

समिति	**अध्यक्ष**
संचालन समिति	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद
संघ संविधान समिति	श्री जवाहर लाल नेहरू
प्रारूप समिति	डॉ. भीमराव अम्बेडकर
प्रांतीय संविधान समिति	सरदार वल्लभ भाई पटेल
संघ शक्ति समिति	श्री जवाहर लाल नेहरू
झण्डा समिति	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद
मूल अधिकार समिति	सरदार वल्लभ भाई पटेल
अल्पसंख्यक समिति	सरदार वल्लभ भाई पटेल

- लॉर्ड विसकाउंट ने संविधान सभा को हिंदुओं का निकाय कहा।
- **अंबेडकर को भारतीय संविधान के पिता के रूप में जाना जाता है। उन्हें आधुनिक मनु की भी संज्ञा दी जाती है।**
- "संविधान सभा ने भारत के केवल एक बड़े समुदाय का प्रतिनिधत्व किया"- चर्चिल

Add. 41-42A, Ashok Park Main, New Rohtak Road, New Delhi-110035
+91-9350679141

3. उद्देशिका/प्रस्तावना

- बेरूबारी यूनियन वाद (1960) मामले में उच्चतम न्यायालय ने उद्देशिका को संविधान का अंग मानने से इंकार कर दिया। किंतु केशवानंद (1973) मामले में उच्चतम न्यायालय ने अपने पूर्ववर्ती निर्णय को पलटते हुए उद्देशिका को संविधान का अंग माना।
- उद्देशिका शक्ति का स्रोत नहीं है। शक्ति का आधार कोई उपबंध ही हो सकता है।
- उद्देशिका विधानमंडल की शक्ति पर प्रतिबंध लगाने का स्रोत नहीं।
- जहां किसी उपबंध का अर्थ संदिग्ध है, वहां उद्देशिका का सहारा लिया जाता है।
- **पंथनिरपेक्ष** : राज्य का अपना कोई पंथ या मत नहीं होगा।
- उद्देशिका से ज्ञात होता है कि संविधान किन उद्देश्यों को प्राप्त करना चाहता है।
- **गणराज्य** : ऐसा राज्य जहां शून्य से शिखर तक का सभी पद सभी नागरिकों द्वारा प्राप्त किये जा सकते है।
- पंथनिरपेक्ष संविधान के आधारिक लक्षणों में से एक है। बोम्मई बनाम भारत संघ (1994) मामले में उच्चतम न्यायालय ने आधारिक लक्षण घोषित किया।
- सामाजिक न्याय मूल अधिकार है।
- आर्थिक न्याय का लक्ष्य आर्थिक लोकतंत्र और कल्याणकारी राज्य की स्थापना है।
- भारतीय समाजवाद, मार्क्सवाद और समाजवाद का सम्मिश्रण है, जिसका झुकाव गांधीवादी समाजवाद की ओर है।
- उद्देशिका में संविधान का दर्शन नीहित है।
- संविधान के 42वें संशोधन (1976) द्वारा संशोधित यह प्रस्तावना इस प्रकार है- **"हम भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, संवत दो हजार छह विक्रमी) को एतदद्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।"**

प्रस्तावना की प्रमुख बातें

- 42वें संविधान संशोधन अधिनियम 1976 के द्वारा इसमें समाजवादी, पंथनिरपेक्ष और राष्ट्र की अखंडता शब्द जोड़े गये।
- प्रस्तावना को न्यायालय में प्रवर्तित नहीं किया जा सकता यह निर्णय '**यूनियन ऑफ इंडिया बनाम मदन गोपाल**', 1957 के निर्णय में घोषित किया गया।
- संविधान की प्रस्तावना को 'संविधान की कुंजी' कहा जाता है।
- प्रस्तावना के अनुसार संविधान के अधीन समस्त शक्तियों के केंद्र बिंदु अथवा स्रोत भारत के लोग ही हैं।
- प्रस्तावना के लिखित शब्द- "हम भारत के लोग" इस संविधान को 'अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।' भारतीय लोगों की सर्वोच्च संप्रभुता का उद्घोष करता हैं।

भारतीय संविधान की अनुसूची

- **प्रथम अनुसूची:** इसमें भारतीय संघ के घटक राज्यों (28 राज्य) एवं संघ शासित (सात) क्षेत्रों का उल्लेख है।
  - संविधान के 69वें संशोधन द्वारा दिल्ली को राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र का दर्जा दिया गया है।
- **द्वितीय अनुसूची:** इसमें भारतीय राज-व्यवस्था के विभिन्न पदाधिकारियों (राष्ट्रपति, राज्यपाल, लोकसभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष, राज्यसभा के सभापति एवं उपसभापति, विधानसभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष, विधान-परिषद् के सभापति एवं उपसभापति, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायधीशों और भारत के नियंत्रक महालेखा परीक्षक आदि) को प्राप्त होने वाले वेतन, भत्ते और पेंशन आदि का उल्लेख किया गया है।
- **तृतीय अनुसूची:** इसमें विभिन्न पदाधिकारियों (राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, मंत्री, उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों के न्यायधीशों) द्वारा पद-ग्रहण के समय ली जाने वाली शपथ का उल्लेख है।

- **चौथी अनुसूचीः** इसमें विभिन्न राज्यों तथा संघीय क्षेत्रों की राज्यसभा में प्रतिनिधित्व का विवरण दिया गया है।
- **पांचवीं अनुसूचीः** इसमे विभिन्न अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजाति के प्रशासन और नियंत्रण के बारे में उल्लेख है।
- **छठी अनुसूचीः** इसमें असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम राज्यों के जनजाति क्षेत्रों के प्रशासन के बारे में प्रावधान है।
- **सातवीं अनुसूचीः** इसमें केंद्र और राज्यों के बीच शक्तियों के बंटवारे के बारे में विवरण दिया गया है। इसके अंतर्गत तीन सूचियां हैं- **संघ सूची, राज्य सूची** और **समवर्ती सूची**।
    - **संघ सूचीः** इस सूची में दिए गए विषय पर केंद्र सरकार कानून बनाती है। संविधान के लागू होने के समय इसमें 97 विषय थे, वर्तमान समय में 99 विषय हैं।
    - **राज्य सूचीः** इस सूची में दिए गए विषय पर राज्य सरकार कानून बनाती है।
    - संविधान के लागू होने के समय इसके अंतर्गत 66 विषय थे, वर्तमान समय में इसमें 61 विषय हैं।
    - **समवर्ती सूचीः** इसके अंतर्गत दिए गए विषय पर केंद्र और राज्य दोनों सरकारें कानून बना सकती हैं। परंतु कानून के विषय समान होने पर केंद्र सरकार द्वारा बनाया गया कानून ही मान्य होता है।
    - समवर्ती सूची का प्रावधान जम्मू-कश्मीर राज्य के संबंध में नहीं है।
    - संविधान के लागू होने के समय समवर्ती सूची में 47 विषय थे। वर्तमान समय में इसमे 52 विषय है।
- **आठवीं अनुसूचीः** इसमें भारत की 22 भाषाओं का उल्लेख किया गया है। मूल रूप से आठवीं अनुसूची में 14 भाषाएं थी, 1967 ई. में सिंधी को और 1992 ई. में कोंकणी, मणिपुरी तथा नेपाली को आठवीं अनुसूची में शामिल किया गया।
- **नौवीं अनुसूचीः** संविधान में यह अनुसूची प्रथम संविधान संशोधन अधिनियम, 1951 के द्वारा जोड़ी गयी।
- इस अनुसूची में सम्मिलित विषयों को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती हैं।
- इसके अंतर्गत राज्य द्वारा संपत्ति के अधिग्रहण की विधियों का उल्लेख किया गया है।
- वर्तमान में इस अनुसूची में 284 अधिनियम हैं।
- **दसवीं अनुसूचीः** यह संविधान में 52वें संशोधन, 1985 के द्वारा जोड़ी गई है।
- इसमें दल-बदल से संबंधित प्रावधानों का उल्लेख है।
- **ग्यारहवीं अनुसूचीः** यह अनुसूची संविधान में 73वें संवैधानिक संशोधन (1993) के द्वारा जोड़ी गयी है। इसमें पंचायती राज संस्थाओं को कार्य करने के लिए 29 विषय प्रदान किए गए हैं।
- **बारहवीं अनुसूचीः** यह अनुसूची संविधान में 74वें संवैधानिक संशोधन (1993) के द्वारा जोड़ी गई है। इसमें शहरी क्षेत्र की स्थानीय स्वशासन संस्थाओं को कार्य करने के लिए 18 विषय प्रदान किए गए हैं।

भारतीय संविधान के विदेशी स्रोत

मौलिक अधिकार, न्यायिक पुनरावलोकन, संविधान की सर्वोच्चता, न्यायपालिका की स्वतंत्रता, निर्वाचित राष्ट्रपति एवं उस पर महाभियोग, उपराष्ट्रपति, उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को हटाने की विधि एवं वित्तीय आपात।

- **आस्ट्रेलियाः** प्रस्तावना की भाषा, समवर्ती सूची का प्रावधान, केंद्र एवं राज्य के बीच संबंध तथा शक्तियों का विभाजन।
- **ब्रिटेनः** संसदात्मक शासन प्रणाली, एकल नागरिकता एवं विधि-निर्माण प्रक्रिया।
- **आयरलैंडः** नीति-निर्देशक सिद्धांत, राष्ट्रपति द्वारा राज्यसभा में साहित्य, कला, विज्ञान, समाज-सेवा इत्यादि के बारे में ख्याति प्राप्त व्यक्तियों का मनोनयन, आपातकालीन उपबंध।
- **कनाडाः** संघात्मक विशेषताएं, अवशिष्ट शक्तियां केंद्र के पास।
- **फ्रांसः** गणतंत्र।
- **जर्मनीः** आपातकाल के प्रवर्तन के दौरान राष्ट्रपति के मौलिक अधिकार संबंधी शक्तियां।
- **रूसः** मौलिक कर्त्तव्यों का प्रावधान।
- **जापानः** विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया।
- **पूर्व सोवियत संघः** मौलिक कर्त्तव्य
- **भारत सरकार अधिनियम 1935:** प्रांतों में शक्ति विभाजन, तीनों सूची, आपात उपबंध।

4. संघ और उसका राज्य क्षेत्र

- अनुच्छेद 1 में भारत को राज्यों का संघ कहा गया है। यद्यपि भारत की राजनीतिक संरचना परिसंघीय हैं। इस शब्द (संघ) के प्रयोग करने के पीछे दो तर्क दिये जाते है– पहला, भारतीय संघ राज्यों के बीच समझौता का परिणाम नही तथा दूसरा, राज्यों को संघ से पृथक होने का अधिकार नहीं है।
- अनुच्छेद 2 में संसद को शक्ति दी गई है कि वह संघीय भारत में नये राज्यों का प्रवेश या गठन कर सकती है। अनुच्छेद 2 भारतीय संसद को दो शक्तियां प्रदान करता है–
  - (i) नये राज्यों का गठन करने की शक्ति है। अनुच्छेद 2 उन राज्यों, जो भारतीय संघ के हिस्से नहीं है के प्रवेश एवं गठन से संबन्धित है।
  - (ii) नये राज्यों को भारत के संघ में शामिल करने की शक्ति।

राज्यों के पुनर्गठन पर संसद की शक्ति

केन्द्र सरकार को राज्यों के पुनर्गठन के लिए जो उदार शक्ति दी गई है, उसका कारण यह है कि भारत शासन अधिनियम के अंतर्गत प्रांतों की बनावट ऐतिहासिक और राजनीतिक कारणों पर आधारित थी। उसका आधार लोगों का सामाजिक, सांस्कृतिक तथा भाषाई स्वरूप नहीं था।

अनुच्छेद 3 – संसद विधि द्वारा :

क. किसी राज्य में से उसका राज्यक्षेत्र अलग करके अथवा दो या दो से अधिक राज्यों को या राज्यों के भागों को मिलाकर अथवा किसी राज्यक्षेत्र को किसी राज्य के भाग के साथ मिलाकर नये राज्य का निर्माण कर सकेगी।

ख. किसी राज्य का क्षेत्र बढ़ा सकेगी।

ग. किसी राज्य का क्षेत्र घटा सकेगी।

घ. किसी राज्य की सीमाओं में परिवर्तन कर सकेगी।

ङ किसी राज्य के नाम में परिवर्तन कर सकेगी।

अनुच्छेद 4–

संसद विधि द्वारा संविधान की पहली और चौथी अनूसूची का संशोधन कर सकेगी।

राज्य निर्माण की प्रक्रिया

संसद नये राज्य का निर्माण या सीमाओं में परिवर्तन साधारण बहुमत से कर सकती है। लेकिन राज्य के निर्माण या सीमाओं में परिवर्तन से सम्बन्धित कोई प्रस्ताव राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी से ही संसद में पेश किया जायेगा। सिफारिश से पूर्व राष्ट्रपति उस अध्यादेश को संबन्धित राज्य के विधानमंडल का मत जानने के लिए भेजता है। यह मत राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित समय सीमा के भीतर दिया जाना चाहिए। राष्ट्रपति राज्य विधानमंडल के मत को मानने के लिए बाध्य नहीं।

संघ राज्य क्षेत्र के मामले में विधानमंडल के सन्दर्भ की कोई आवश्यकता नहीं, संसद जब उचित समझे स्वयं कदम उठा सकती है।

- प्रश्न उठता है कि क्या संसद अनुच्छेद 3 के तहत भारत के किसी राज्य क्षेत्र को अन्य देश को दे सकती है। बेरूबारी मामले में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि संसद को अनुच्छेद 3 के तहत भारत के राज्य क्षेत्र को अन्य देश को देने की शक्ति नहीं है। यह कार्य संविधान के अनुच्छेद 368 के तहत संविधान संशोधन द्वारा ही किया जा सकता है।

संघ क्षेत्रों एवं राज्यों का उद्भव

शाही राज्यों का एकीकरण

आजादी के समय भारत में दो श्रेणियों की राजनीतिक इकाइयां थीं, ब्रिटिश प्रांत (ब्रिटिश सरकार के शासन के अधीन) और शाही राज्य (राजकुमार शासन के अधीन लेकिन ब्रिटिश राज्य शाही से संबद्ध।) भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम (1947) के तहत दो स्वतंत्र एवं पृथक प्रभुत्व वाले देश भारत और पाकिस्तान का निर्माण किया गया और शाही राज्यों को तीन विकल्प दिए गए–भारत में शामिल हों, पाकिस्तान में शामिल हों या स्वतंत्र रहे। 552 शाही राज्य भारत की भौगोलिक सीमा में थे। 549 भारत में शामिल हो गए और बचे हुए तीन (हैदराबाद, जूनागढ़ और कश्मीर) ने भारत में शामिल होने से इनकार कर दिया। यद्यपि ये तीनों बाद में भारत से जुड़े थे–हैदराबाद पुलिस कार्यवाही के जरिये, जूनागढ़ जनमत के जरिये और कश्मीर आवागमन संसाधनों के जरिये।

धर आयोग और जेवीपी समिति

जून, 1948 में भारत सरकार ने एस.के. धर की अध्यक्षता में भाषायी प्रांत आयोग की नियुक्ति की। आयोग ने अपनी रिपोर्ट दिसंबर, 1948 में पेश की। आयोग ने सिफारिश की कि राज्यों का पुनर्गठन भाषायी तथ्य की बजाय प्रशासनिक सुविधा के अनुसार होना चाहिए।

कांग्रेस द्वारा दिसंबर 1948 में एक अन्य भाषायी प्रांत आयोग का गठन किया गया। इसमें जवाहरलाल नेहरू, वल्लभभाई पटेल और पट्टाभि सीता रमैया शामिल थे, जिसे जेवीपी समिति के रूप में जाना गया। इसने अपनी रिपोर्ट अप्रैल 1949 में पेश की और इस बात को अस्वीकार किया कि राज्यों के पुनर्गठन का आधार भाषा होना चाहिए।

हालांकि अक्टूबर 1953 में भारत सरकार को भाषा के आधार पर पहले राज्य के गठन के लिए मजबूर होना पड़ा जब मद्रास से पृथक कर आंध्र प्रदेश का गठन किया गया।

फज़ल अली आयोग

आंध्र प्रदेश के निर्माण से अन्य क्षेत्रों में भी भाषा के आधार पर राज्य बनाने की मांग उठने लगी। इसके चलते भारत सरकार को दिसंबर 1953 में एक तीन सदस्यीय राज्य पुनर्गठन आयोग, फज़ल अली की अध्यक्षता में गठित करने के लिए मजबूर होना पड़ा। इसके अन्य दो सदस्य थे- के एम. पणिक्कर और एच.एन. कुंजरू। इसने अपनी रिपोर्ट 1955 में पेश की और इस बात को व्यापक रूप से स्वीकार किया कि राज्यों के पुनर्गठन में भाषा आधार हो।

समिति ने किसी राज्य पुनर्गठन योजना के लिए चार बड़े तथ्यों की पहचान की-

- देश की एकता एवं सुरक्षा की व्यापकता एवं संरक्षण।
- भाषायी व सांस्कृतिक एकरूपता।
- वित्तीय, आर्थिक एव प्रशासनिक संबंध।
- प्रत्येक राज्य एवं पूरे देश में योजना एवं लोगों के कल्याण।

1950 के पश्चात् बनाए गए राज्य

- **आंध्र प्रदेश:** आन्ध्र राज्य अधिनियम 1953 द्वारा मद्रास राज्य के कुछ क्षेत्र निकालकर बनाया गया।
- **केरल:** राज्य पुनर्गठन अधिनियम 1956 द्वारा ट्रावनकोर-कोचीन की जगह बनाया गया।
- **कर्नाटक:** राज्य पुनर्गठन अधिनियम 1956 द्वारा तत्कालीन मैसूर राज्य से बनाया गया 1973 में इसे कर्नाटक नाम दिया गया।
- **गुजरात तथा महाराष्ट्र:** मुम्बई पुनर्गठन अधिनियम 1960 द्वारा मुम्बई राज्य को दो भागों गुजरात तथा महाराष्ट्र में विभाजित कर दिया गया।
- **नागालैंड:** नागालैंड राज्य अधिनियम 1962 द्वारा असम राज्य से कुछ क्षेत्र निकालकर बनाया गया।
- **हरियाणा:** पंजाब पुनर्गठन अधिनियम 1966 द्वारा पंजाब के कुछ क्षेत्र को निकालकर बनाया गया।
- **हिमाचल प्रदेश:** हिमाचल संघ राज्य क्षेत्र को हिमाचल प्रदेश राज्य अधिनियम, 1970 द्वारा राज्य का दर्जा प्रदान किया गया।
- **मेघालय:** संविधान के 23वें संशोधन अधिनियम 1969 द्वारा इसे मेघालय असम राज्य के भीतर एक उपराज्य बनाया गया। पूर्वोत्तर क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 द्वारा उसे पूर्ण राज्य का दर्जा दिया गया।
- **मणिपुर, त्रिपुरा:** पूर्वोत्तर क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 द्वारा संघ राज्य क्षेत्र से पूर्ण राज्य का दर्जा दिया गया।
- **सिक्किम:** संविधान के 35वें संशोधन अधिनियम 1974 द्वारा सहयुक्त राज्य का दर्जा दिया गया तथा 36वें संविधान संशोधन अधिनियम 1975 द्वारा इसे पूर्ण राज्य का दर्जा दिया गया।
- **मिजोरम:** मिजोरम राज्य अधिनियम 1986 द्वारा संघ राज्य क्षेत्र से पूर्ण राज्य का दर्जा दिया गया।
- **अरुणाचल प्रदेश:** अरुणाचल प्रदेश अधिनियम 1986 द्वारा संघ राज्य क्षेत्र से पूर्ण राज्य का दर्जा प्रदान किया गया।
- **गोआ:** गोआ, दमन और दीव पुनर्गठन अधिनियम 1987 द्वारा संघ राज्य क्षेत्र में से दमन और दीव को संघ राज्य क्षेत्र बना रहने दिया तथा गोआ को निकालकर राज्य का दर्जा प्रदान किया।
- **छत्तीसगढ़:** यह राज्य मध्य प्रदेश से अलग कर पृथ्क राज्य बनाया गया है, मध्य प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम 2000 द्वारा सृजित।
- **उत्तराखंड:** यह राज्य उत्तर प्रदेश से अलग कर पृथक् राज्य बनाया गया है, उत्तर प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम 2000 द्वारा सृजित।
- **झारखंड:** यह राज्य बिहार राज्य से अलग कर पृथक् राज्य बनाया गया है, बिहार पुनर्गठन अधिनियम 2000 द्वारा सृजित

5. नागरिकता

नागरिकता का अर्थ एवं महत्व

किसी अन्य आधुनिक राज्य की तरह भारत में दो तरह के लोग हैं, नागरिक और विदेशी। नागरिक भारतीय राज्य के पूर्ण सदस्य होते हैं और उनकी इस पर पूर्ण निष्ठा होती है। दूसरी ओर, विदेशी किसी अन्य राज्य के नागरिक होते हैं इसलिए उन्हें सभी नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं होते हैं।

संविधान भारतीय नागरिकों को निम्नलिखित सुविधाएं एवं अधिकार प्रदान करता है। विदेशियों को नहीं :

- धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग और जन्मस्थान के आधार पर (अनुच्छेद 15) भेदभाव के खिलाफ अधिकार।
- सार्वजनिक रोजगार के मामले में (अनुच्छेद 16) समान अवसरों का अधिकार।
- बोलने एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, सभा, संगठन, आंदोलन, निवास व व्यवसाय की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 19)।
- सार्वजनिक पदों जैसे- राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति उच्च एवं उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश, राज्यों के राज्यपाल, महान्यायवादी एवं महाधिवक्ता की योग्यता रखने का अधिकार।
- लोकसभा या राज्य विधानसभा चुनाव में मतदान का अधिकार।

भारत में नागरिक जन्म से या प्राकृतिक रूप से राष्ट्रपति बनने की योग्यता रखते हैं जबकि अमेरिका में केवल जन्म से नागरिक ही राष्ट्रपति बन सकता है।

संवैधानिक प्रावधान

संविधान में नागरिकता के बारे में भाग-II के तहत अनुच्छेद 5 से 11 में चर्चा की गई है। इस संबंध में स्थायी और विस्तृत व्यवस्था नहीं की गई, यह सिर्फ उन लोगों की पहचान करता है जो संविधान लागू होने के बाद भारत के नागरिक बने।

संविधान के अनुसार चार श्रेणियों के लोग संविधान निर्माण के उपरांत (26 जनवरी, 1950) भारत के नागरिक बन सकते हैं-

- एक व्यक्ति जो 1 मार्च, 1947 के बाद भारत से पाकिस्तान स्थानांतरित हो गया हो, लेकिन बाद में फिर भारत में पुनर्वास के लिए लौट आए तो वह भारत का नागरिक बन सकता है।
- एक व्यक्ति जो भारत का मूल निवासी है और तीन में से कोई एक शर्त पूरी करता है। ये शर्तें हैं- यदि उसका जन्म भारत में हुआ हो, या उसके माता-पिता का जन्म भारत में हुआ हो, या संविधान लागू होने के पांच साल पूर्व से भारत में रह रहा हों।
- एक व्यक्ति जो पाकिस्तान से भारत आया हो और यदि उसके माता-पिता या दादा-दादी अविभाजित भारत में पैदा हुए हों और निम्न दो में से कोई एक शर्त पूरी करता हो-भारत का नागरिक बन सकता है-19 जुलाई, 1948 से पूर्व स्थानांतरित हुआ हो भारत के नागरिक के रूप में पंजीकृत हो सकता हैं, लेकिन ऐसे व्यक्ति का पंजीकृत होने में छह माह तक भारत निवास आवश्यक है।
- एक व्यक्ति जिसके माता-पिता या पितामह भारत में पैदा हुए हों लेकिन वह भारत के बाहर रह रहा हो। फिर भी वह भारत का नागरिक बन सकता है, यदि उसने भारत के नागरिक के रूप में पंजीकरण कूटनीतिज्ञ तरीके या पार्षदीय प्रतिनिधि के रूप में आवेदन किया हो।

नागरिकता का अधिग्रहण

नागरिकता अधिनियम 1955 नागरिकता प्राप्त करने की पांच शर्तें बताता है- जैसे जन्म, वंशानुगत, पंजीकरण, प्राकृतिक एवं क्षेत्र में समाविष्टि पर।

- **जन्म से:** जैसा कि 1986 में अधिनियम को संशोधित किया गया, इसके तहत कोई व्यक्ति जन्म से भारत का नागरिक हो सकता है-
  - यदि उसका जन्म भारत में 26 जनवरी 1950 के बाद लेकिन 30 जून, 1987 से पूर्व हुआ हो।
  - यदि वह भारत में 1 जुलाई, 1987 को या उसके बाद हुआ है लेकिन उस समय उसके माता-पिता भारत के नागरिक हों।
- **वंश के आधार पर:** 1992 में संशोधित यह अधिनियम बताता है कि कोई व्यक्ति जिसका जन्म 26 जनवरी, 1950 को या उसके बाद भारत के बाहर हुआ हो वह वंश के आधार पर भारत का नागरिक बन सकता है, जब उसके माता-पिता भारतीय नागरिक हों।
- **पंजीकरण द्वारा:** निम्नलिखित लोगों की श्रेणी (यदि पहले से भारत के नागरिक न हों) संबंधित प्राधिकरण में भारतीय नागरिक बनने के लिए प्रार्थनापत्र दे सकते हैं-
  - भारतीय मूल का वह व्यक्ति जो भारत के बाहर अन्यत्र रह रहा हो।

- वह व्यक्ति जिसने भारतीय नागरिक से विवाह किया हो और वह पंजीकरण के लिए प्रार्थनापत्र देने से पूर्व पांच वर्ष से भारत में रह रहा हो।
- भारतीय मूल का व्यक्ति, जो नागरिकता प्राप्ति का आवेदन देने से ठीक पूर्व पांच वर्ष भारत में रह चुका हो।
- वे लोग जो राष्ट्रकुल देशों के नागरिक हों।
- भारत के नागरिक के नाबालिक बच्चे।

नागरिकता की समाप्ति

नागरिकता खोने के तीन करण बताए गए हैं- त्यागना, बर्खास्तगी, उपदस्य होना।

- **स्वैच्छिक त्याग:** एक भारतीय नागरिक जो अन्य देश का भी नागरिक है, अपनी नागरिकता को त्याग सकता है।
- **बर्खास्तगी के द्वारा:** यदि कोई भारतीय नागरिक स्वेच्छा से किस अन्य देश की नागरिकता ग्रहण कर ले तो उसकी भारतीय नागरिकता स्वयं बर्खास्त हो जाएगी।
- **अपदस्थता द्वारा:** केंद्र सरकार द्वारा भारतीय नागरिक को आवश्यक रूप से बर्खास्त करना होगा :
  - यदि नागरिकता को फर्जीवाड़े से ग्रहण कर लिया गया हो।
  - यदि नागरिक ने संविधान के प्रति अनादर जताया हो।
  - यदि नागरिक ने युद्ध के दौरान शत्रु के साथ गैर कानूनी रूप से संबंध स्थापित किया हो या उसे सूचना दी हो।
  - नागरिक सामान्य रूप से भारत के बाहर सात वर्षों से रह रहा हो।
- **प्राकृतिक रूप से :** कोई विदेशी प्राकृतिक रूप से भारतीय नागरिक बन सकता है यदि-
  - उसने अन्य देश की नागरिकता का त्याग कर दिया हो।
  - ऐसे देश से संबंधित नहीं हो जहां भारतीय नागरिक प्राकृतिक रूप से नागरिक नहीं बन सकते।
  - प्राकृतिक नागरिकता के बाद वह भारत में रहने एवं सरकार के तहत सेवा को उत्सुक हो।
  - वह चरित्रवान हो।
  - वह संविधान द्वारा संस्तुत भाषा का पर्याप्त ज्ञाता हो।
- **क्षेत्र समाविष्टि द्वारा:** किसी विदेशी क्षेत्र का भारत का हिस्सा बनने पर भारत सरकार उस क्षेत्र से संबंधित व्यक्तियों को भारत का नागरिक घोषित करती है।

राष्ट्रकुल नागरिकता

नागरिकता अधिनियम 1955, राष्ट्रकुल नागरिकता के सिद्धांत को स्वीकारता है। किसी भी राष्ट्रकुल देश के नागरिक को भारत के राष्ट्रकुल नागरिक की स्थिति प्राप्त होगी।

6. मूल अधिकार

- **मूल अधिकार वे प्राकृतिक अधिकार हैं जो मानव को अपनी क्षमताओं के विकास के लिए सर्वोत्तम दशाओं एवं दिशाओं को उपलब्ध कराते हैं; जिससे कोई भी व्यक्ति गरिमापूर्ण जीवन जी सके।**
- **मूल अधिकार तथा सामान्य अधिकार में अन्तर :**
- मूल अधिकार नकारात्मक और सकारात्मक दोनों हो सकते है।
- अधिकार देश के सामान्य विधि द्वारा संरक्षित होते है, जबकि मूल अधिकार देश के संविधान द्वारा संरक्षित होते है।
- मूल अधिकार विधायिका और कार्यपालिका दोनों के अधि कार सीमित करता है, जबकि अधिकार केवल कार्यपालिका के कार्य को सीमित करता है।
- संविधान में मूलअधिकार को लागू कराने के लिए न्यायालय में अपील करने का अधिकार है।
- सामान्य अधिकार व्यक्तियों के विरुद्ध उपलब्ध होता है तथा कुछ मामलों में राज्य के विरुद्ध। मूल अधिकार केवल राज्य के विरुद्ध प्रवर्तनीय है। यहां राज्य के विरुद्ध से तात्पर्य है कि राज्य कोई ऐसा कानून नहीं बना सकता है जिससे मूल अधिकार का हनन हो।
- सभी सांविधानिक अधिकार मूलअधिकार नही होते, जबकि सभी मूल अधिकार सांविधानिक अधिकार होते है।

भारत में मूल अधिकार का इतिहास

भारत में मूल अधिकार के मांग का दर्शन नेहरु प्रतिवेदन (1928) में स्पष्ट रूप से होता है। यद्यपि इसके पहले भी मांग की गई थी लेकिन साइमन कमीशन और संयुक्त संसदीय समिति ने इस आधार पर नामंजूर कर दिया कि अर्मूत घोषणायें व्यर्थ होती है। ब्रिटिश सलाह की ओर ध्यान न देते हुए संविधान निर्माताओं ने समाज के प्रत्येक सदस्य के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की प्राप्ति के लिए मूल अधिकार अंगीकार किए।

मूल अधिकारों की विशेषताएं

- सशस्त बलों, अर्द्धसैनिक बलों, पुलिस बलों, गुप्तचर संस्थाओं और ऐसी ही सेवाओं से सम्बन्धित सेवाओं के क्रियान्वयन पर संसद प्रतिबंध आरोपित कर सकती है।
- ये असीमित नहीं है राज्य उन पर जरुरी प्रतिबंध लगा सकता है।
- ये स्थायी नहीं है। संसद इसमें कटौती कर सकती है लेकिन संविधान के मूल ढांचे को प्रभावित किये बिना।
- मूलअधिकार न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय है।
- राष्ट्रीय आपात के दौरान अनुच्छेद 20 और 21 को छोड़कर शेष मूलअधिकार निलम्बित किया जा सकता है।
- कुछ मूल अधिकार सिर्फ नागरिकों को प्राप्त है जबकि कुछ नागरिकों और विदेशी लोगों दोनों को प्राप्त है।

मूल अधिकार के संशोधन संबंधी विवाद

- 1973 में केशवानंद भारती मामले में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि संसद मूल अधिकार वाले भाग में संशोधन करने में उतनी ही सक्षम है जितनी संविधान के अन्य भाग का। लेकिन संसद संविधान की आधारिक संरचना को न तो संक्षिप्त कर सकती है न ही समाप्त कर सकती है।
- सज्जन सिंह बनाम राजस्थान (1965) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने पूर्ववर्ती निर्णय पर अटल रहा।
- मूल अधिकार में संशोधन को लेकर पहला प्रश्न शंकरी प्रसाद बनाम भारत संघ (1951) मामले में किया गया। सर्वोच्च न्यायालय ने इस मामले में निर्णय दिया कि मूल अधिकार, अनुच्छेद 368 के तहत संसद की संशोधन शक्ति के अधीन है।
- गोलकनाथ निर्णय के प्रतिक्रिया स्वरूप संसद द्वारा 24वां संविधान संशोधन द्वारा घोषणा की गई कि अनुच्छेद 368 के अनुसार पारित संविधान का संशोधन अनुच्छेद 13 के अन्तर्गत विधि नहीं होगा।
- 1967 में न्यायालय ने गोलकनाथ मामले में पूर्ववर्ती निर्णय को पलट दिया तथा बहुमत से निर्णय दिया कि अनुच्छेद 368 के अधीन संसद या किसी प्राधिकारी को यह शक्ति नहीं है कि वह मूल अधिकारों को न्यून करे या छीन सके।

वर्तमान स्थिति

- नवीं अनुसूची में किसी अधिनियम के सम्मिलित किये जाने पर भी उस पर इस आधार पर हस्तक्षेप किया जा सकता है कि वह आधारिक संरचना का विनाश करता है।
- प्रत्येक मामले में न्यायालय यह विचार करेगा कि क्या मूल

अधिकार के संशोधन से संविधान के किसी आधारिक लक्षण का विनाश हो रहा है। यदि विनाश हो रहा है तो विनाश की मात्रा तक संशोधन शून्य होगा।

- मूल अधिकारों का संशोधन किया जा सकता है।
- आधारिक लक्षणों के आधार पर उन्हीं अधिनियमों को अविधिमान्य किया जा सकेगा जो 24-4-1973 के पश्चात् पारित किये गए है।

नागरिकों को उपलब्ध मूल अधिकार

- **अनुच्छेद 15:** धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव का प्रतिषेध।
- **अनुच्छेद 16:** लोकनियोजन के विषय में अवसर की समता।
- **अनुच्छेद 19:** वाक् स्वतंत्रता, सम्मेलन, संगम, संचरण, निवास और वृति की स्वतंत्रता।
- **अनुच्छेद 29-30:** अल्पसंख्यकों के संस्कृति और शिक्षा संबधी अधिकार।

सभी व्यक्तियों को उपलब्ध अधिकार

- यह ध्यान देने की बात है कि यह विदेशी शत्रु पर लागू नहीं होगा।
- **अनुच्छेद 14:** विधि के समक्ष समता।
- **अनुच्छेद 20:** अपराधों के लिए दोषसिद्धि के संबंध में संरक्षण।
- **अनुच्छेद 21:** प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण।
- **अनुच्छेद 21क:** शिक्षा का अधिकार।
- **अनुच्छेद 23-24:** शोषण के विरुद्ध अधिकार।
- **अनुच्छेद 25, 26, 27, 28:** धर्म की स्वतंत्रता।

मूल अधिकार एक नजर में

	श्रेणी		निहित है
1.	समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14-18)	(a)	विधि के समक्ष समानता एवं समान सुरक्षा (अनुच्छेद 14)।
		(b)	धर्म, जाति, लिंग और जन्म स्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध (अनुच्छेद 15)।
		(c)	सार्वजनिक रोजगार के मामले में समान अवसर (अनुच्छेद 16)।
		(d)	अस्पृश्यता का अंत (अनुच्छेद 17)।
		(e)	सैन्य एवं शैक्षिक पदों के अतिरिक्त उपाधियों पर रोक (अनुच्छेद 18)।
2.	स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19-22)	(a)	छह अधिकारों की सुरक्षा (I) विचार एवं अभिव्यक्ति (II) संगठन, (III) समिति, (IV) आंदोलन, (V) निवास, (VI) उद्यम (अनुच्छेद 19)।
		(b)	आपराधिक आरोप के मामले में सुरक्षा (अनुच्छेद 20)
		(c)	प्राण एवं दैहिक का अधिकार (अनुच्छेद 21)।
		(d)	प्राथमिक शिक्षा का अधिकार (अनुच्छेद 21क)।
		(e)	किसी मामले में हिरासत एवं गिरफ्तारी से सुरक्षा (अनुच्छेद 22)।
3.	शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23-24)	(a)	बलात श्रम का प्रतिषेध (अनुच्छेद 21)।
		(b)	बच्चों को कारखानों आदि में नियोजन का प्रतिषेध (अनुच्छेद 24)।
4.	धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25-28)	(a)	अंतः करण के विचारों एवं धर्म के प्रचार की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 25)।
		(b)	धार्मिक मामलों के प्रबंधन की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 26)।

		(c)	किसी धर्म की उन्नति के लिए करों के भुगतान की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 27)।
		(d)	कुछ धार्मिक संस्थाओं में पूजा या धार्मिक निर्देशों में उपस्थिति का अधिकार (अनुच्छेद 28)।
5.	सांस्कृतिक एवं शैक्षिक अधिकार	(a)	भाषा,लिपि और अल्पसंख्यकों की संस्कृति की सुरक्षा (अनुच्छेद 29-30 (अनुच्छेद 29)।
		(b)	अल्पसंख्यकों को धार्मिक संस्थाओं और प्रशासकों की नियुक्ति का अधिकार (अनुच्छेद 30)।

6. संवैधानिक उपचारो का अधिकार (अनुच्छेद 32) मूल अधिकारों की शक्ति के लिए उच्चतम न्यायालय जाने का अधिकार इसमें शामिल याचिकाएं है। (I) बंदी प्रत्यक्षीकरण, (II) परमादेश, (III) प्रत्यादेश, (IV) उत्प्रेषण, (V) अधिकार पृच्छा (अनुच्छेद 32)

समानता का अधिकार

विधि के समक्ष समानता और कानून की समान सुरक्षा : अनुच्छेद 14 में कहा गया है कि राज्य को पूरे भारत संघ में किसी व्यक्ति की समानता नकारनी नहीं चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह नागरिक हो या विदेशी सब पर यह अधिकार लागू होता है। 'कानून के समक्ष समानता' का विचार ब्रिटिश मूल का है। जबकि 'कानून की समान सुरक्षा' को अमेरिका के संविधान से लिया गया है। पहले संदर्भ में शामिल है- (अ) किसी व्यक्ति के पक्ष में कोई विशेष सुविधा की कमी। (ब) साधारण कानून या साधारण कानून न्यायालय के तहत सभी व्यक्तियों के लिए समान विषय। (स) कोई व्यक्ति (अमीर-गरीब, ऊंचा-नीचा, अधिकारी-गैर-अधिकारी) कानून के ऊपर नहीं है। दूसरे संदर्भ में निहित है-(अ) समान परिस्थितियों में समान व्यवहार (ब) समान कानून के अंतर्गत सभी व्यक्तियों के लिए समान नियम हैं, और (स) बिना भेदभाव के वैसा ही व्यवहार होना चाहिए। इस तरह पहला नकारात्मक संदर्भ है, जबकि दूसरा सकारात्मक। हालांकि दोनों का उद्देश्य कानून, अवसर और न्याय की समानता है।

ब्रिटिश न्यायवादी ए.वी. डिसे का मानना है कि 'कानून के समक्ष समानता' का विचार 'कानून का नियम' के दूसरे तत्व के समान है। ब्रिटेन की तरह भारत में भी समानता का नियम ही अनन्य नहीं है, वरन् इसके बहुत से विकल्प हैं।

कुछ मुद्दों पर विभेद का प्रतिषेध : अनुच्छेद 15 में यह व्यवस्था दी गई है कि राज्य किसी नागरिक के प्रति सिर्फ धर्म, जाति, लिंग या जन्मस्थान को लेकर मतभेद नहीं करेगा। इसमें दो कठोर शब्दों की व्यवस्था है- 'मतभेद' और 'सिर्फ'। 'मतभेद' का अभिप्राय किसी के खिलाफ विपरीत मामला या अन्य के प्रति उसके पक्ष में न रहना। 'सिर्फ' शब्द का मतलब है कि अन्य आधारों पर मतभेद किया जा सकता है।

अनुच्छेद 15 की दूसरी व्यवस्था में कहा गया है कि किसी भी नागरिक को जाति, धर्म, जन्मस्थान के आधार पर अयोग्य या प्रतिबंधित श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। मतभेद न किए जाने के सामान्य नियम में दो छूट शामिल हैं: (अ) राज्य को इस बात की अनुमति होती है कि वह बच्चों या महिलाओं के लिए विशेष व्यवस्था करे, (ब) इसी तरह राज्य को इसकी अनुमति होती है कि वह सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों या अनुसूचित जाति एवं जनजाति के विकास के लिए कोई विशेष व्यवस्था करे।

लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता : अनुच्छेद 16 में रोजगार के मामले या राज्य सरकार के कार्यालयों में नियुक्ति के लिए समान अवसर की व्यवस्था की गई है। किसी नागरिक के साथ भेदभाव नहीं किया जा सकता, और किसी को धर्म, जाति, लिंग, जन्मस्थान या निवास के आधार पर अयोग्य नहीं ठहराया जा सकता। सार्वजनिक रोजगार में अवसरों की समानता के साधारण नियम पर तीन छूट हैं-

- संसद किसी विशेष रोजगार के लिए निवास की शर्त आरोपित कर सकती है। जैसा कि सार्वजनिक रोजगार (जिसमें निवास की जरूरत हो) अधिनियम 1957 कुछ साल बाद 1974 में समाप्त हो गया। इस समय आंध्रप्रदेश के अतिरिक्त किसी अन्य राज्य में ऐसी व्यवस्था नहीं है।
- राज्य नियुक्तियों के आरक्षण की व्यवस्था कर सकता है या किसी पद को पिछड़े वर्ग के पक्ष में बना सकता है जिनका कि राज्य में समान प्रतिनिधित्व नहीं है।
- कानून के तहत किसी संस्था या इसके कार्यकारी परिषद के सदस्य या किसी की धार्मिक आधार पर व्यवस्था की जा सकती है।

- **मंडल आयोग और उसके परिणामः** वर्ष 1979 में मोरारजी देसाई सरकार ने द्वितीय पिछड़ा वर्ग आयोग का गठन संसद सदस्य बी.पी. मंडल की अध्यक्षता में किया। आयोग ने अपनी रिपोर्ट 1980 में प्रस्तुत की और 3743 जातियों की पहचान की जो सामाजिक एवं शैक्षणिक आधार पर पिछड़ी थीं। आयोग ने अन्य पिछड़े वर्गों के लोगों के लिए सरकारी नौकरियों में 27 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था की। इस तरह संपूर्ण आरक्षण (अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों का) 50 प्रतिशत हो गया।

अस्पृश्यता का अंत : अनुच्छेद 17 अस्पृश्यता को समाप्त करने की व्यवस्था और किसी भी रूप में इसके प्रयोग पर रोक लगाता है, 1976 में, अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम 1955 में मूलभूत संशोधन किया गया और इसको नया नाम 'नागरिक अधिकारों की रक्षा अधिनियम 1955' दिया गया। 'छुआछूत' शब्द को न तो संविधान में और न ही अधिनियम में परिभाषित किया गया।

यह अधिनियम अपराध के तहत निम्नलिखित घोषणा करता है–

- किसी व्यक्ति को सार्वजनिक पूजा स्थल में प्रवेश से रोकना या कहीं पर पूजा से रोकना।
- किसी दुकान, होटल या सार्वजनिक मनोरंजन स्थल के प्रयोग को प्रतिबंधित करना।
- अस्पतालों, शैक्षणिक संस्थानों या हॉस्टल में प्रवेश से रोकना।

उपाधियों का अंत : अनुच्छेद 18 उपाधियों का उन्मूलन करता है और इस संबंध में चार व्यवस्थाएं बनाता है–

- यह सुनिश्चित करता है कि कोई व्यक्ति चाहे वह नागरिक हो या विदेशी; राज्य के तहत कोई उपाधि (सैन्य या शैक्षणिक छोड़कर) नहीं लेगा।
- यह भारत के हर नागरिक को विदेशों से उपाधि लेने पर रोक लगाता है।
- कोई भी विदेशी लाभ के किसी पद का उपभोग करते हुए बिना राष्ट्रपति की अनुमति के विदेशी राज्य से कोई भी पदवी नहीं ले सकता।
- राज्य के तहत किसी लाभ के पद पर आसीन कोई नागरिक या विदेशी कोई अन्य देश से सुविधाएं, वेतन भत्ते तब तक स्वीकार नहीं कर सकता जब तक कि राष्ट्रपति की मंजूरी न हो।

स्वतंत्रता का अधिकार

छह अधिकारों की रक्षा

अनुच्छेद 19 सभी नागरिकों को छह अधिकारों की गारंटी देता है। ये हैं–

- विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता।
- बिना हथियारों के शांतिपूर्वक सम्मेलन।
- संगठन एवं समिति बनाने का अधिकार।
- भारत में कहीं भी निर्बाध रूप से घूमने का अधिकार।
- भारत में कही भी छोड़ने या बसने का अधिकार।
- किसी भी पेशे व्यापार एवं व्यवसाय करने का अधिकार।

विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्र

उच्चतम न्यायालय ने बोलने एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में निम्नलिखित व्यवस्था दी–

- किसी के विचारों को प्रसारित करने का अधिकार ।
- छापने की स्वतंत्रता
- फोन टैपिंग के खिलाफ अधिकार।
- प्रसारित करने का अधिकार इसीलिए सरकार का इलेक्ट्रॉनिक मीडिया पर एकाधिकार नहीं है।
- सरकारी गतिविधियों की जानकारी का अधिकार।
- किसी अखबार पर पूर्व प्रतिबंध के खिलाफ अधिकार।
- राज्य विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर उचित प्रतिबंध लगा सकता है। यह प्रतिबंध लगाने के आधार इस प्रकार है।– भारत की एकता एवं संप्रभुता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों से दोस्ताना संबंध, सार्वजनिक आदेश, न्यायालय की अवमानना, किसी अपराध में संलिप्तता आदि की परिस्थितियां।
- **संगठन की स्वतंत्रता:** किसी भी नागरिक को बिना हथियार के शांतिपूर्वक संगठित होने का अधिकार है। इस स्वतंत्रता का इस्तेमाल केवल सार्वजनिक भूमि पर बिना हथियार के किया जा सकता है। यह व्यवस्था हिंसा, अव्यवस्था, गलत संगठन एवं सार्वजनिक शांति भंग के लिए नहीं है। इस अधिकार में हड़ताल का अधिकार शामिल नहीं है।
- **समिति बनाने का अधिकारः** सभी नागरिकों को संगठन एवं समिति बनाने का अधिकार है। इसमें शामिल हैं– राजनीतिक दल बनाने का अधिकार, कंपनी, सांझा फर्म, समितियां, क्लब, संगठन, व्यापार संगठन या लोगों की अन्य इकाई बनाने का अधिकार।

- उच्च न्यायालय ने व्यवस्था दी कि श्रम संगठनों को मोलभाव करने, हड़ताल करने एवं तालांबदी करने का कोई अधिकार नहीं है। हड़ताल के अधिकार को औद्योगिक कानून के तहत नियंत्रित किया जा सकता है।
- **विचरण की स्वतंत्रता:** यह स्वतंत्रता प्रत्येक नागरिक को देश के किसी भी हिस्से में विचरण का अधिकार प्रदान करती है। वह स्वतंत्रापूर्वक एक राज्य से दूसरे राज्य में या एक राज्य में एक से दूसरे स्थान पर विचरण कर सकता है। इस स्वंतत्रता पर उचित प्रतिबंध लगाने के दो कारण हैं– आम लोगों का हित और किसी अनुसूचित जनजाति की सुरक्षा का हिता। उच्चतम न्यायालय ने इसमें व्यवस्था दी कि किसी अभियुक्त के विचरण के अधिकार को सार्वजनिक नैतिकता एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य के आधार पर प्रतिबंधित किया जा सकता है।
- **निवास का अधिकार:** हर नागरिक को देश के किसी भी हिस्से में बसने का अधिकार है। इस अधिकार के दो भाग है।-(अ) देश के किसी भी हिस्से में रहने का अधिकार इसका तात्पर्य है कि कहीं भी अस्थायी रूप से रहना एवं (ब) देश के किसी भी हिस्से में व्यवस्थित होने का अधिकार- इसका तात्पर्य है वहां घर बनाना एवं स्थायी रूप से बसना।
- **व्यवसाय आदि की स्वतंत्रता:** सभी नागरिकों को किसी भी व्यवसाय को करने, पेशा अपनाने एवं व्यापार शुरू करने का अधिकार दिया गया है। यह अधिकार बहुत विस्तृत है क्योंकि यह जीवन चलाने के लिए कमाई से संबंधित है। राज्य सार्वजनिक हित में इसके प्रभावी होने पर उचित प्रतिबंध लगा सकता है।

अपराध के लिए दोषी के मामले में सुरक्षा

- किसी भी अभियुक्त या दोषी करार व्यक्ति, चाहे वह नागरिक हो या विदेशी या कंपनी व परिषद का कानूनी व्यक्ति हो, अनुच्छेद 20 फैसले के खिलाफ सुरक्षा प्रदान करता है। इस दिशा में तीन व्यवस्थाएं हैं–
  - **कोई पूर्व प्रभाव कानून (Post-tado law) नहीं:** कोई भी व्यक्ति (I) किसी भी अपराध में दोषी नहीं होगा सिवाय अपराध के कार्य के समय कानून का उल्लंघन करने पर (II) दंड का विषय अपराध के कार्य के समय कानून के मामलें में अधिक प्रभावी है।
  - दोहरी क्षति नहीं: कोई भी व्यक्ति एक अपराध के लिए एक बार से अधिक दंडित नहीं हो सकता।
  - व्यक्तिगत अभियोग नहीं: किसी भी व्यक्ति को अपने ही खिलाफ आपराधिक मामले में गवाही का अधिकार नहीं है।

प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता

- अनुच्छेद 21 में घोषणा की गई हैं कि कोई भी व्यक्ति सिवा कानूनी प्रक्रिया के अपने जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता को नष्ट नहीं करेगा। अनुच्छेद 21 के तहत सुरक्षा केवल उचित कार्यकारी क्रिया पर ही उपलब्ध नहीं बल्कि विधानमंडलीय क्रिया पर भी उपलब्ध है। उच्चतम न्यायालय ने मेनका गांधी मामले में अपने फैसले को दोबारा स्थापित किया। इसमें अनुच्छेद 21 के तहत निम्नलिखित अधिकारों की घोषणा की–
  - मानवीय सम्मान के साथ जीने का अधिकार।
  - साफ पर्यावरण-प्रदूषण रहित पानी एवं हवा में जीने का अधिकार एवं हानिकारक उद्योगों के खिलाफ सुरक्षा।
  - निजता का अधिकार।
  - आश्रय का अधिकार।
  - 6 से 14 साल की उम्र तक नि:शुल्क शिक्षा की अधिकार।
  - नि:शुल्क कानूनी सहायता का अधिकार।
  - अमानवीय व्यवहार के विरुद्ध अधिकार।
  - देर से कार्य के विरुद्ध अधिकार।

शिक्षा का अधिकार

अनुच्छेद 21A में घोषणा की गई है कि राज्य 6 से 14 वर्ष तक की उम्र के बच्चों को नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराएगा। इसका निर्धारण राज्य करेगा। यह व्यवस्था 86वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम 2002 के तहत जोड़ी गई। यह संशोधन देश में 'सर्वशिक्षा' लक्ष्य में एक मील का पत्थर साबित हुआ।

हिरासत एवं गिरफ्तारी के विरुद्ध सुरक्षा

- अनुच्छेद 22 किसी व्यक्ति को गिरफ्तारी एवं हिरासत के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करता है। हिरासत दो तरह की होती है दंड विषयक (कठोर) और निवारक। दंड विषयक हिरासत ऐसे व्यक्ति को दंड देती है जिसने अपराध स्वीकार कर लिया और अदालत में उसे दोषी ठहराया गया। निवारक हिरासत वह है जिसमें किसी व्यक्ति को पिछले अपराध पर दंडित न कर भविष्य में ऐसे अपराध न करने की चेतावनी

देने जैसा है। इस तरह निवारक हिरासत केवल शक के आधार पर एहतियाती होती है।

शोषण के विरुद्ध अधिकार

मानव तस्करी एवं बलात श्रम का निषेध

- अनुच्छेद 23 मानव तस्करी पर प्रतिबंध लगाता है, बेगार (जबरन श्रम) और इसी प्रकार के अन्य समान जबरन श्रम के प्रकारों पर भी। इस व्यवस्था के तहत कोई भी अपराध कानून के मुताबिक दंडनीय होगा। 'मानव की तस्करी' शब्द में शामिल हैं-(i) पुरुष, महिला एवं बच्चों की वस्तु के समान खरीद-बिक्री। (ii) महिलाओं एवं बच्चों की अनैतिक तस्करी इसमें शोषण भी शामिल हैं। (iii) देवदासी और (iv) दास। बेगार का मतलब है बिना सुविधा के जरूरी काम कराना।
- बेगार के मामले में अनुच्छेद 23 में अन्य समान जबरन श्रम पर भी रोक लगाता है इनमें बंधुआ मजदूरी शामिल है। जबरन श्रम में न केवल शारीरिक या कानूनी बल है, बल्कि इसमें आर्थिक परिस्थितियों को बढ़ावा देना भी शामिल है जैसे न्यूनतम मजदूरी से कम पर काम कराना।

कारखानों आदि में बाल-श्रम पर निषेध

- अनुच्छेद-24 किसी फैक्ट्री, खान एवं समान निर्माण कार्य या रेलवे में 14 साल से कम उम्र के बच्चों के रोजगार पर प्रतिबंध लगाता है। 1996 में उच्चतम न्यायालय ने बाल श्रम पुनर्वास कल्याण फंड की स्थापना की। जिसमें बच्चों को रोजगार देने वाले पर प्रति बच्चा 20,000 का दंड जमा करने का प्रावधान बनाया गया।

धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार

धर्म की विवेचना, पेशा, कार्य एवं प्रसार की स्वतंत्रता

- अनुच्छेद 25 में कहा गया है कि सभी व्यक्तियों को धर्म की विवेचना का अधिकार, इसको स्वतंत्रापूर्वक अपनाने की स्वतंत्रता है। इसमें शामिल है-
  - **विवेचना का अधिकार:** किसी व्यक्ति को उसकी आंतरिक स्वतंत्रता और इस दिशा में उसे जो सही लगे, भगवान के साथ जुड़ाव का अधिकार है।
  - **स्वीकार करने का अधिकार:** किसी व्यक्ति को किसी धर्म के प्रति विश्वास एवं वफादारी का सार्वजनिक रूप से एवं स्वतंत्रता पूर्वक घोषणा करने का अधिकार है।
  - **कार्य का अधिकार:** धार्मिक पूजा, समारोह को अपने विश्वास और विचार के अनुरूप करने का अधिकार है।
  - **प्रसारण का अधिकार:** किसी के धर्म में उसका विस्तार एवं अन्य धर्म के बारे में विश्वास जगाना इसमें शामिल है।

धार्मिक मामलों के प्रबंधन की सुविधा

- अनुच्छेद 26 के अनुसार हर धार्मिक अनुयायी या इसके किसी वर्ग को निम्न अधिकार प्राप्त होंगे-
  - धार्मिक एवं कल्याणकारी उद्देश्य से धार्मिक संस्थानों की स्थापना एवं उनके रख-रखाव का अधिकार।
  - धर्म के मामले में अपने आधार पर प्रबंध करना।

धर्म की अभिवृद्धि को कर से स्वतंत्रता

- अनुच्छेद 27 में उल्लिखित है कि कोई व्यक्ति जो धार्मिक व्यवस्था को बनाए रखने, उसके उत्थान के लिए काम करता है, वह कर अदायगी से मुक्त होगा। दूसरे शब्दों में, राज्य उस धन को व्यय नहीं कर सकता जिसे किसी धार्मिक उत्थान एवं रखा-रखाव के लिए एकत्र किया गया।

धार्मिक निर्देशों की उपस्थिति से स्वतंत्रता

- अनुच्छेद 28 के तहत कोई भी धार्मिक निर्देश उन शिक्षण संस्थाओं में लागू नहीं किए जा सकते जो पूरी तरह राज्य खर्च पर चल रहे हों। हालांकि यह व्यवस्था उन संस्थानों में लागू नहीं होती जिनका प्रशासन तो राज्य देख रहा है लेकिन उसकी स्थापना किसी मठ या ट्रस्ट के अधीन हुई हो।

सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक अधिकार

अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा

- अनुच्छेद 29 व्यवस्था देता है कि भारत के किसी भी हिस्सें में रहने वाले नागरिकों के किसी भी वर्ग को अपनी बोली, भाषा, लिपि, संस्कृति को सुरक्षित रखने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त किसी भी नागरिक को राज्य के अंतर्गत आने वाले संस्थान या उससे सहायता प्राप्त संस्थान में धर्म, जाति या भाषा के अधार पर प्रवेश से रोक नहीं जा सकता।
- अनुच्छेद 29 धार्मिक अल्पसंख्यकों एवं भाषायी अल्पसंख्यकों को सुरक्षा प्रदान करता है। हालांकि उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि इस अनुच्छेद की व्यवस्था केवल अल्पसंख्यकों के मामले में ही नहीं, बल्कि सामान्य मामले में भी है, क्योंकि 'नागरिकों के वर्ग' शब्द का मतलब अल्पसंख्यक एवं बहुसंख्यक दोनों से है।

अल्पसंख्यकों को शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना एवं उनके प्रशासन का अधिकार

- अनुच्छेद 30 अल्पसंख्यकों को धर्म या भाषा के आधार पर निम्नलिखित अधिकार प्रदान करता है–
  - सभी अल्पसंख्यकों को अधिकार होगा कि वे अपनी पसंद के शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना करें और प्रशासन चलाएं।
  - अल्पसंख्यकों की संपत्ति के अधिग्रहण पर क्षतिपूर्ति निश्चित की गई। इस व्यवस्था में 44वें संशोधन अधिनियम 1978 में अल्पसंख्यक अधिकारों की रक्षा जोड़ा गया।
  - आर्थिक सहायता में राज्य अल्पंसख्यकों द्वारा प्रबंधित संस्थानों में विभेद नहीं करेगा।

संवैधानिक उपचार का अधिकार

मूल अधिकारों की संवैधानिक घोषणा तब तक अर्थहीन, तर्कहीन एवं शक्तिविहीन है जब तक कि कोई प्रभावी मशीनरी उसे लागू करने के लिए अस्तित्व में न हो विशेष रूप से तब जब उसका हनन हो रहा हो। इस तरह अनुच्छेद 32 संवैधानिक उपचार का अधिकार प्रदान करता है।

अनुच्छेद 32 का उद्देश्य मूल अधिकारों की गारंटी, प्रभावी, सुधार एवं संवैधानिक उपचारों की व्यवस्था है। संविधान द्वारा अनुच्छेद 32 के तहत केवल मूल अधिकारों की ही गारंटी दी गई है अन्य अधिकारों की नहीं; जैसे गैर मूल संवैधानिक अधिकार, असंवैधानिक अधिकार, लौकिक अधिकार आदि।

मूल अधिकारों के क्रियान्वयन के बारे में उच्चतम न्यायालय का न्यायिक क्षेत्र मूल (original) तो है पर अनोखा नहीं, उसका जुड़ाव अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय के न्यायिक क्षेत्र से भी है।

न्यायादेश-प्रकार एवं अवसर

उच्चतम न्यायालय (अनुच्छेद 32 के तहत) एवं उच्च न्यायालय (अनुच्छेद 226 के तहत) न्यायादेश जारी कर सकते हैं। ये हैं– बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, उत्प्रेषण, अधिकार पृच्छा, प्रतिषेध उच्चतम न्यायालय के न्यायादेश संबंधी न्यायिक क्षेत्र उच्च न्यायालय से तीन प्रकार से भिन्न हैं–

- उच्चतम न्यायालय केवल मूल अधिकारों के क्रियान्वयन को लेकर न्यायादेश जारी कर सकता है जबकि उच्च न्यायालय इनके अलावा किसी और उद्देश्य को लेकर भी इसे जारी कर सकते हैं।
- उच्चतम न्यायालय किसी एक व्यक्ति या सरकार के खिलाफ न्यायादेश जारी कर सकता है। जबकि उच्च न्यायालय सिर्फ संबंधित राज्य के व्यक्ति या अपने क्षेत्र के राज्य को या यदि मामला दूसरे राज्य से संबंधित हो तो वहां के खिलाफ ही जारी कर सकता है।
- अनुच्छेद 32 के तहत उपचार अपने-आपमें मूल अधिकार है। उच्चतम न्यायालय अपने न्यायादेश मामले को नकार नहीं सकता। दूसरी तरफ अनुच्छेद 226 के तहत उपचार के संबंध में उच्च न्यायालय अपने न्यायादेश संबंधी न्याय क्षेत्र के क्रियान्वयन को नकार सकता है।

बंदी प्रत्यक्षीकरण

इसे लैटिन भाषा से लिया गया है, जिसका शब्दिक अर्थ होता है 'इकाई का होना'। यह उस व्यक्ति के संबंध में न्यायालय द्वारा जारी आदेश है जिसे दूसरे द्वारा हिरासत में रखा गया है, उसे इसके सामने प्रस्तुत किया जाए। तब न्यायालय मामले की जांच करता है, यदि हिरासत में लिए गए व्यक्ति का मामला अवैध है तो उसे स्वतंत्र किया जा सकता है। इस तरह यह किसी व्यक्ति को जबरन हिरासत में रखने के खिलाफ है। बंदी प्रत्यक्षीकरण का न्यायादेश दोनों के खिलाफ जारी किया जा सकता है चाहे वह सार्वजनिक प्राधिकरण हो या व्यक्तिगत। यह न्यायादेश तब जारी नहीं किया जा सकता जब यदि (i) हिरासत कानून सम्मत है। (ii) कार्यवाही किसी विधानमंडल या न्यायालय की अवमानना के तहत हुई हो (iii) न्यायालय के द्वारा हिरासत एवं (iv) हिरासत न्यायालय के न्यायक्षेत्र से बाहर हुई हो।

परमादेश

इसका शाब्दिक अर्थ है 'हम नियंत्रण करते है'। यह एक नियंत्रण है, जिसे न्यायालय द्वारा सार्वजनिक अधिकारियों को जारी किया जाता है ताकि उनसे उनके कार्यों और उसे नकारने के संबंध में पूछा जा सके। इसे किसी भी सार्वजनिक इकाई, परिषद, अधीनस्थ न्यायालयों, पंचाटों या सरकार के खिलाफ समान उद्देश्य के लिए जारी किया जा सकता है।

परमादेश न्यायादेश जारी नहीं किया जा सकता :

- निजी व्यक्तियों या इकाई के खिलाफ।
- ऐसे विभाग जो गैर-संवैधानिक हैं।
- जब कर्त्तव्य स्वैच्छिक हो, जरूरी नहीं।
- ठेकेदारी उत्थान।
- भारत के राष्ट्रपति या राज्यों के राज्यपालों के खिलाफ।

प्रतिषेध

इसका शाब्दिक अर्थ 'रोकना'। यह उच्चतम या उच्च न्यायालय द्वारा अवर न्यायालय को संबोधित रिट है, जिसमें उस न्यायालय के अधिकार से बाहर कार्यवाही करने से रोका जाता है।

प्रतिषेध संबंधी न्यायादेश सिर्फ न्यायिक एवं अल्प न्यायिक प्राधिकरणों के विरुद्ध ही जारी किए जा सकते हैं। यह प्रशासनिक प्राधिकरणों, विधायी इकाइयों एवं निजी व्यक्तिगत या इकाईयों के लिए उपलब्ध नहीं है।

उत्प्रेषण

इसका शाब्दिक अर्थ 'प्रमाणित होना या 'सूचना देना' है। इसे एक उच्चतम या उच्च न्यायालय द्वारा अधीनस्थ न्यायालयों के या पंचाटों के विनिश्चय को विखण्डित करने के लिए जारी किया जाता हैं।

अभी हाल तक उत्प्रेषण का न्यायादेश सिर्फ न्यायिक या अल्प न्यायिक प्राधिकरणों के खिलाफ ही जारी किया जा सकता था, प्रशासनिक इकाइयों के खिलाफ नहीं, हालांकि 1991 में उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि उत्प्रेषण व्यक्तियों के अधिकारों को प्रभावित करने वाले प्रशासनिक प्राधिकरणों के खिलाफ भी जारी किया जा सकता है।

प्रतिषेध की तरह उत्प्रेषण भी विधानमंडलीय इकाइयों, एवं निजी वैयक्तिक या इकाइयों के विरुद्ध उपलब्ध नहीं है।

अधिकार पृच्छा

शाब्दिक सदर्भ में इसका अर्थ किसी 'प्राधिकृत या वारंट के द्वारा' है। इसके द्वारा न्यायालय लोकपद पर किसी व्यक्ति के दावे की वैधता की जांच करता है। न्यायादेश को पूरक सार्वजनिक कार्यालयों के मामले में तब जारी किया जा सकता है जब उसका निर्माण संवैधानिक हो। इसे मंत्रित्व कार्यालय या निजी कार्यालय के लिए जारी नहीं किया जा सकता। अन्य चार न्यायादेशों से हटकर इसे किसी भी रुचिकर व्यक्ति द्वारा जारी किया सा सकता है न कि पीड़ित व्यक्ति द्वारा।

संपत्ति के अधिकार की वर्तमान स्थिति

असल में संविधान के भाग 3 में उल्लिखित 7 मूल अधिकारों में से संपत्ति का अधिकार एक है।

44वें संशोधन अधिनियम 1978 द्वारा मूल अधिकारों में से संपत्ति के अधिकार को समाप्त कर इसके स्थान पर भाग 3 में अनुच्छेद 19(1) (F) और 31 को जोड़ा गया। 'सपत्ति का अधिकार' शीर्षक के तहत भाग 12 में नए अनुच्छेद 300 (A) को जोड़ा गया। इसमें व्यवस्था दी गई कि कोई भी व्यक्ति कानून के बिना संपत्ति से वंचित नहीं किया जाएगा। इस तरह संपत्ति का अधिकार अब भी एक कानूनी या संवैधानिक अधिकार है। यद्यपि यह कोई मूल अधिकार नहीं है।

संपत्ति का अधिकार एक कानूनी अधिकार की तरह (जैसा कि मूल अधिकारों से अलग) निम्नलिखित तरीकों से लागू होता है-

- इसे बिना संविधान संशोधन के संसद के साधारण कानून के तहत नियमित, कटौती या पुनर्निर्धारित किया जा सकता है।
- यह कार्यकारी कार्य के खिलाफ निजी संपत्ति की रक्षा करता है लेकिन विधान मंडलीय कार्य के खिलाफ नहीं।
- संघर्ष के मामले में पीड़ित व्यक्ति अनुच्छेद 32 (संवैधानिक उपचार के अधिकार जिसमें न्यायादेश शामिल है) के तहत सीधे उच्चतम न्यायालय नहीं जा सकता। वह अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय जा सकता है। भाग 3 में अब भी यह व्यवस्था है कि संपत्ति के अधिग्रहण पर हरजाने का अधिकार होगा। इन दो मामलों में भुगतान होगा-
  - जब राज्य द्वारा किसी अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थान (अनुच्छेद 30) की संपत्ति का अधिग्रहण किया जाए और।
  - जब राज्य उस संपत्ति का अधिग्रहण करे, जिस पर व्यक्ति अपनी फसल उगा रहा है, निर्धारित सीमा के अंदर (अनुच्छेद 31A)।

आरक्षण से संबंधित महत्वपूर्ण तथ्य

- संविधान में अध्याय 16 में कुछ वर्गो के लिए विशेष व्यवस्थायें की गई और इन्हें संविधान लागू होने के बाद 10 वर्ष बनाये रखने की व्यवस्था की गई थी। लेकिन बाद में संवैधानिक संशोधनों द्वारा इस विशेष व्यवस्था की अवधि बढ़ायी जाती रही।
- अनुसूचित जाति तथा जनजाति के अतिरिक्त समाज में 'अन्य पिछड़े वर्ग' की अनेक ऐसी जातियां है जिनके पिछड़ेपन को दूर करने के लिए उन्हें आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक क्षेत्र में विशेष सुविधायें दी जानी चाहिए।
- पिछड़ों वर्गो की दशाओं में सुधार हेतु राष्ट्रपति ने अब तक दो आयोग गठित किये हैं- काका कालेलकर और मंडल आयोग।
- काका कालेलकर आयोग का गठन 1950 ई. में हुआ था। 1955 मे दी गई इस अयोग की सिफारिश में सामाजिक तथा शैक्षणिक मानदंड को स्पष्टतया परिभाषित नहीं किया गया था। अत: उस पर विवाद हो जाने के कारण आरक्षण की सिफारिश को कार्यान्वित नहीं किया जा सका है।

- पिछड़े वर्ग के आरक्षण के संदर्भ में दूसरा आयोग मंडल आयोग गठित किया गया। 1990 में वी.पी. सिह सरकार ने इसके आधार पर भारत सरकार की सेवाओं और सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में पिछड़े हुए वर्गो को 27% आरक्षण की घोषणा की।
- 2006 में तिरानवेवाँ संविधान संशोधन द्वारा निजी एवं बिना सरकारी अनुदान प्राप्त शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश में सामाजिक व शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गो को आरक्षण की व्यवस्था की गई।

निवारक निरोध अधिनियम

- 1950 में सर्वप्रथम निवारक निरोध अधिनियम बनाया गया इस अधिनियम की प्रवर्तन की अवधि बढ़ाई जाती रही है। यह 31 दिसम्बर 1969 ई. तक प्रभावी रहा।
- आंतरिक सुरक्षा अधिनियम 1971 (Maintenace of internal security act-1971 MISA) बनाया गया। 1978 में 44वें संविधान संशोधन द्वारा 1971 के मीसा को समाप्त करने का प्रयास किया गया।
- 1974 में तस्करी, विदेशी मुद्रा में छल आदि कार्य रोकने के लिए विदेशी मुद्रा संरक्षण और तस्करी निवारण अधिनियम (COFEPOSA) बनाया गया।
- आतंकवादी एवं विध्वंसक गतिविधियां निवारण अधिनियम (TADA) 1985
- आंतकवाद निवारण अधिनियम (POTA) 2002 !

7. राज्य का नीति के निदेशक तत्व

निदेशक तत्वों का स्रोत मूलअधिकार की तरह 1928 के नेहरू प्रतिवेदन में खोज सकते है। 1945 के तेज बहादुर सप्रू प्रतिवेदन में मूल अधिकारों को स्पष्ट रूप से दो भागों में बाटा गया था – न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय तथा अप्रवर्तनीय। संविधान सभा के संवैधानिक सलाहकार बी.एम. राव ने भी सलाह दिया था कि व्यक्तियों के अधिकार को दो वर्गो में विभाजित किया जाय। वे जिन्हें न्यायालय द्वारा प्रवृत कराया जा सके और वे जो न्यायालय द्वारा प्रवृत न कराये जा सके। उनके विचार में दूसरा वर्ग राज्य के प्राधिकारियों के लिए नैतिक उपदेश के रूप में था। उनका सुझाव प्रारुप समिति ने भी स्वीकार किया। इसके परिणामस्वरुप निदेशक तत्व अस्तित्व में आया। निदेशक तत्व का उद्देश्य सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय तथा व्यक्ति की गरिमा और कल्याण की प्राप्ति है।

निदेशक तत्व तथा मूल अधिकार के संबंध को लेकर न्यायालय का कुछ महत्वपूर्ण निर्णय

- मिनर्वा मिल्स (1980) मामले में न्यायालय ने कहा कि मूल अधिकार और निदेशक तत्व के बीच सन्तुलन संविधान की आधारिक संरचना का आवश्यक लक्षण है। मिनर्वा मिल्स के परिणाम स्वरूप अनुच्छेद 31 ग को जोड़ने के बाद भी निदेशक तत्व को मूल अधिकार पर प्राथमिकता नहीं दी जा सकती है। वर्तमान में केवल अनुच्छेद 39 (ख) और 39(ग) को मूलअधिकार पर प्राथमिकता दी गयी है।
- केरल शिक्षा विधेयक (1959) मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि मूलअधिकार और निदेशक तत्व के बीच समन्वयकारी सिद्धान्त स्वीकार किया जाना चाहिए। दोनों को प्रभावी किये जाने का प्रयास किया जाना चाहिए।

निदेशक सिद्धान्त की विशेषताएं

- यद्यपि निदेशक सिद्धान्त न्यायालय द्वारा अप्रवर्तनीय है फिर भी संवैधानिक मान्यता के विवरण में अदालत इसे देखता है।
- निदेशक सिद्धान्त का उद्देश्य 'लोक कल्याणकारी' राज्य की स्थापना करना है न कि पुलिस राज्य की।
- निदेशक सिद्धान्त अप्रवर्तनीय है अर्थात न्यायालय द्वारा लागू नही कराया जा सकता है।
- राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त का वर्णन संविधान के भाग-4 में (अनुच्छेद 36 से 51 तक) किया गया है। हमारे संविधान निर्माताओं ने राज्य के मार्गदर्शन के लिए नीति निदेशक सिद्धान्त को संविधान में शामिल किया है। निदेशक सिद्धान्त बताता है कि राज्य नीतियों एवं कानूनों को बनाते समय इन्हें ध्यान में रखेगा।
- आधुनिक लोकतान्त्रिक राज्य में आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विषयों में निदेशक सिद्धान्त अति महत्वपूर्ण है। दशा और दिशा के आधार पर इन्हें तीन व्यापक श्रेणियों में वर्गीकरण किया गया है।

समाजवादी सिद्धांत

- ये सिद्धांत समाजवाद के आलोक में हैं। ये लोकतांत्रिक समाजवादी राज्य का खाका खीचते हैं, जिनका लक्ष्य सामाजिक एवं आर्थिक न्याय प्रदान कराना है और जो लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना का मार्ग प्रशस्त करते हैं। ये राज्य को निर्देश देता हैं कि-
  - जन स्वास्थ्य और लोगों के रहन-सहन स्तर को उन्नत करना (अनुच्छेद 47)।
  - सुरक्षित करना– (अ) सभी नागरिकों के जीवनयापन का अधिकार (ब) आम वस्तुओं का पदार्थ स्रोतों के तहत समान वितरण (स) धन एवं उत्पादनो के साध नो में एकरूपता (द) समान काम के लिए पुरुष व महिला को समान वेतन (ई) कर्मचारियों को स्वास्थ्य एवं उपलब्धता उपलब्ध कराकर बच्चों से बलात श्रम कराने का विरोध (फ) बच्चों के विकास के अवसर (अनुच्छेद 39)।
  - बेरोजगारों, वृद्धों, विकलांगों को उचित शिक्षा अधिकार एवं जनसहयोग उपलब्ध कराना (अनुच्छेद 41)।
  - लोगों के कल्याण को सामाजिक और आर्थिक न्याय के साथ असमानता को कम करते हुए प्रोत्साहित करना और अवसर उपलब्ध कराना (अनुच्छेद 38)।

गांधीवादी सिद्धांत

- ये सिद्धांत गांधीवादी विचारधारा पर आधारित हैं। ये राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान गांधी द्वारा पुनर्स्थापित योजनाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये राज्य से अपेक्षा करते हैं-
  - स्वास्थ्य के लिए नुकसानदायक नशीली दवाओं, मदिरा, ड्रग के उपभोग पर प्रतिबंध (अनुच्छेद 47)।

- ग्रामीण क्षेत्रों में व्यक्तिगत या सहकारिता के आधार पर कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन (अनुच्छेद 43)।
- ग्राम पंचायतों का गठन और उन्हें आवश्यक शक्तियां प्रदान कर स्व-सरकार की इकाई के रूप मे कार्य करने की शक्ति प्रदान करना (अनुच्छेद 40)।

नए निदेशक सिद्धांत

42वें संशोधन अधिनियम 1976 में निदेशक सिद्धांतों की मूल सूची में 4 सिद्धांत और जोड़े गए। उनकी भी राज्य से अपेक्षा रहती है-

- पर्यावरण संरक्षण और वनों एवं वन्य जीवों को सुरक्षा कवच (अनुच्छेद 48A)।
- गरीबों को नि:शुल्क कानूनी सहायता उपलब्ध कराना एवं समान न्याय को प्रोत्साहन (अनुच्छेद 39A)
- उद्योग प्रबंधन में कर्मचारियों के बंटवारें को बढ़ावा एवं सुरक्षा (अनुच्छेद 43A)।
- बच्चों के स्वस्थ विकास के लिए अवसरों को सुरक्षित करना (अनुच्छेद 39)।

उदार बौद्धिक सिद्धांत

- इस श्रेणी में उन सिद्धांतों को शामिल किया है जो स्वतंत्रता की विचारधारा से संबंधित है। ये राज्य को निर्देश देते हैं-
    - राज्य लोकसेवा कार्यकारिणी से न्यायापालिका को विभक्त करना (अनुच्छेद 50)।
    - राष्ट्रीय महत्व की घोषित धरोहरों एवं ऐतिहासिक महत्व और कलात्मक स्थानों की सुरक्षा (अनुच्छेद 49)।
    - पशु-चिकित्सा एवं कृषि का आधुनिक एवं वैज्ञानिक रूप से संगठन (अनुच्छेद 48)।
    - सभी नागरिकों को समान सिविल संहिता के तहत पूरे देश में सुरक्षा दें (अनुच्छेद 44)।

मूल अधिकारों एवं निति निदेशक सिद्धांतों के मध्य अन्तर

मूल अधिकार	निदेशक सिद्धांत
• ये नकारात्मक हैं जैसा कि ये राज्य को कुछ मसलों पर करने को प्रतिबंधित करते हैं।	• ये सकारात्मक हैं, राज्य को कुछ मसलों पर इनकी आवश्यकता होती है।
• ये न्यायोचित होते हैं, इनके हनन पर न्यायालय द्वारा इन्हें लागू कराया जा सकता है।	• ये गैर-न्यायोचित होते हैं। इन्हें कानूनी रूप से न्यायालय द्वारा लागू नहीं कराया जा सकता।
• इनका उद्देश्य देश में लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था स्थापित करना है।	• इनका उद्देश्य देश में सामाजिक एवं आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना करना है।
• ये कानूनी रूप से मान्य हैं।	• इन्हें नैतिक एवं राजनीतिक मान्यता प्राप्त है।
• ये व्यक्तिगत कल्याण को प्रोत्साहन देते हैं, इस प्रकार वैयाक्तिक हैं।	• ये समुदाय के कल्याण को प्रोत्साहित करते हैं, इस तरह ये सामाजिक हैं।
• इनको लागू करने के लिए विधान की आवश्यकता नहीं, ये स्वत: लागू हैं।	• इन्हें लागू रखने में एक विधान की आवश्यकता होती है, ये स्वत: लागू नहीं होते।
• न्यायालय इस बात के लिए बाध्य है कि किसी भी अधिकार के हनन को वह गैर-संवैधानिक एवं अवैध घोषित करे।	• किसी निदेशक सिद्धांत के हनन पर न्यायालय कोई मूल कानून की घोषणा नहीं कर सकता। हालांकि इनको प्रभावी बनाने के आधार पर इन्हें कानूनी मान्यता दिलाई जा सकती है।

8. मूल कर्तव्य

मूल कर्तव्य (अनुच्छेद 51 क) मूलतः संविधान का अंगीकृत भाग नहीं है। 1976 ई. में मूल कर्तव्य के विषय पर सरदार स्वर्ण सिंह समिति का गठन किया गया। समिति ने सिफारिश की कि संविधान में मूल कर्तव्य का अलग अध्याय होना चाहिए। इसमें बताया गया कि नागरिकों को अधिकारों के साथ कर्तव्यों को भी निभाना आना चाहिए। सरकार ने समिति की सिफारिशों को स्वीकार करते हुए 42वें संविधान संशोधन अधिनियम 1976 को लागू किया। इसके माध्यम से संविधान में एक नया भाग IVA को जोड़ा गया। इस नये भाग में केवल एक अनुच्छेद 51A था, जिसमें 10 मौलिक कर्तव्यो का वर्णन किया गया। भारतीय संविधान में मूल कर्तव्य को पूर्व रुसी संविधान से प्रभावित होकर लिया गया। वर्तमान में 11 मौलिक कर्त्तव्य है।

मूल कर्तव्यों की सूची

भारत के प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य होगा कि वह-

- जो माता-पिता या संरक्षक हो वह छः से चौदह वर्ष के बीच की आयु के यथास्थिति, अपने बच्चे अथवा प्रतिपाल्य को शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्रदान करे। यह कर्तव्य 86वें संविधान संशोधन अधिनियम 2002 के तहत जोड़ा गया।
- स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे।
- भारत की प्रभुता, एकता और अखण्डता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे।
- व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरन्तर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू ले।
- देश की रक्षा करे और आह्वान किये जाने पर राष्ट्र की सेवा करे।
- हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का महत्व समझे और उसका परिरक्षण करे।
- प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव है रक्षा करे और उसका संवर्द्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे।
- भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करें जो स्त्रियों की भावनाओ के विरुद्ध हो।
- सभी वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे।
- सार्वजनिक सम्पति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे।
- संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रगान का आदर करे।

मूल कर्तव्य की विशेषताएं

- मूल कर्तव्य के उल्लंघन करने के खिलाफ कोई दाण्डिक विधान नहीं है। यद्यपि संसद उनके समुचित क्रियांवयन के लिए स्वतंत्र है।

ये मूल्य भारतीय परम्परा, पौराणिक कथाओं धर्म एवं क्रियाओं से संबन्धित है।

- मूल कर्तव्य केवल नागरिकों के लिए है न कि विदेशियों के लिए।
- कुछ कर्तव्य नैतिक है तो कुछ नागरिक है। स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों का सम्मान एक नैतिक कर्तव्य है, जबकि राष्ट्रीय ध्वज और गान का सम्मान नागरिक कर्तव्य है।

मूल कर्तव्य की आलोचना

- न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय न होने के कारण नैतिक उपदेश मात्र साबित हुआ।
- कुछ कर्तव्य अस्पष्ट तथा वहुअर्थी है एवं आम लोगों के समझने में कठिन है।
- कर्तव्यों की सूची पूर्ण नहीं क्योंकि इसमें कुछ अन्य कर्तव्य जैसे-मतदान, कर अदायगी, परिवार नियोजन आदि शामिल नहीं।

9. संविधान का संशोधन

हम भारतीय संविधान में अमेरिकी संविधान के उलट लचीलापन एवं कठोरपन दोनों का दर्शन करते है। संविधान का वह भाग जो संघीय ढांचे को प्रभावित नहीं करता उसका संशोधन साधारण बहुमत से किया जा सकता है तथा जो भाग संघीय ढांचे को प्रभावित करता है उसका संशोधन विशेष बहुमत तथा राज्यों की स्वीकृति से किया जाता है। कुछ संशोधन केवल विशेष बहुमत से किये जा सकते है। संविधान के भाग 20 में अनुच्छेद 368 के तहत संविधान का संशोधन करने की संसद की शक्ति तथा प्रक्रिया का वर्णन किया गया है।

संशोधन की प्रक्रिया

- राष्ट्रपति संशोधन विधेयक पर मंजूरी देने के लिए बाध्य है।
- विधेयक को मंत्री या निजी सदस्य द्वारा पेश किया जा सकता है।
- संविधान संशोधन विधेयक राष्ट्रपति द्वारा मंजूरी मिलने के बाद अधिनियम बन जायेगा।
- संशोधन विधेयक को विशेष बहुमत से पारित कराना अनिवार्य है।
- प्रत्येक सदन में विधेयक को अलग-अलग पारित कराना अनिवार्य है।
- यदि विधेयक संघीय ढांचे को प्रभावित करने वाला है तो उसे संसद के विशेष बहुमत के साथ-साथ आधे राज्यों के विधानमंडलों द्वारा सामान्य बहुमत से पारित होना चाहिए।
- संविधान संशोधन विधेयक संसद के किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है।
- संविधान संशोधन विधेयक में संयुक्त बैठक की व्यवस्था नहीं है।

संविधान संशोधन के प्रकार

- संसद के विशेष बहुमत एवं आधे राज्यों के विधानमंडलों द्वारा अनुमोदन।
- संसद के साधारण बहुमत द्वारा संशोधन।
- संसद के विशेष बहुमत द्वारा संशोधन।

संसद के साधारण बहुमत द्वारा संशोधन

संविधान में काफी संख्या में साधारण बहुमत से संशोधन की व्यवस्थाएं हैं। ये व्यवस्थाएं अनुच्छेद 368 की सीमा से बाहर हैं। इन व्यवस्थाओं में शामिल हैं-

- नए राज्यों का प्रवेश या गठन।
- नए राज्यों का निर्माण और क्षेत्र, सीमाओं या संबंधित राज्यों के नामों का परिवर्तन।
- राज्य विधानपरिषद का निर्माण या उसकी समाप्ति।
- दूसरी अनुसूची—सुविधाएं, भत्ते आदि जो राष्ट्रपति, राज्यपाल, लोकसभा अध्यक्ष, न्यायाधीश आदि के लिए हैं।
- संसद में गणपूर्ति।
- नागरिकता की प्राप्ति एवं समाप्ति।
- निर्वाचन क्षेत्रों का पुनर्निर्धारण।
- संसद सदस्यों के वेतन एवं भत्ते।
- संसद, इसके सदस्यों और समितियों को सुविधाएं।
- उच्चतम न्यायालयों में सहायक न्यायाधीशों की संख्या।

संसद के विशेष बहुमत द्वारा संशोधन

संविधान में बहुमत की व्यवस्था जिसमें संसद में विशेष बहुमत की बात हो, का अभिप्राय है वह बहुमत (50 प्रतिशत से अधिक) जिसमें उपस्थिति एवं मतदान के आधार पर प्रत्येक सदन के दो तिहाई सदस्यों का समर्थन हो। 'कुल सदस्यों' का मतलब है सदन की सदस्य संख्या जिसमें रिक्त एवं अनुपस्थित भी शामिल है। इस तरह से संशोधन व्यवस्था में शामिल है-

- राज्य नीति के निदेशक सिद्धांत।
- मूल अधिकार।
- वह सभी व्यवस्थाएं जो प्रथम एवं तृतीय श्रेणियों से संबद्ध नहीं हैं।

संसद के विशेष बहुमत एवं राज्यों की स्वीकृति द्वारा संशोधन

नीति के संघीय ढांचे से संबंधित संविधान की विशेषताओं को संसद के विशेष बहुमत द्वारा संशोधित किया जा सकता है और इसके लिए यह भी आवश्यक है कि आधे राज्यों के विधानमंडलों में साधारण बहुमत के माध्यम से उनको मंजूरी मिली हो।

इस तरह से निम्नलिखित व्यवस्थाओं को संशोधित किया जा सकता है।

- संसद में राज्यों का प्रतिनिधित्व।
- केंद्र एवं राज्य कार्यकारिणी की शक्तियों का विस्तार।
- उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय।
- सातवीं अनुसूची से संबद्ध कोई विषय।
- केंद्र एवं राज्य के बीच विधायी शक्तियों का विभाजन।
- राष्ट्रपति का निर्वाचन एवं इसकी प्रक्रिया।

10. राष्ट्रपति व उपराष्ट्रपति

संघ की कार्यपालिका के शीर्ष पर राष्ट्रपति पदासीन है। अनुच्छेद 53में कहा गया कि संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में नीहित होगी। राष्ट्रपति का निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत के माध्यम से एक निर्वाचकगण द्वारा होगा।

निर्वाचकगण में होंगे

- दिल्ली और पांडिचेरी संघ राज्यक्षेत्र की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य
- राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य
- संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य।

राष्ट्रपति के रूप में निर्वाचन के लिए योग्यता

- भारत सरकार या किसी राज्य सरकार के अधीन या उक्त सरकारों में से किसी के नियन्त्रण में किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन कोई लाभ का पद धारण नहीं करता हो।
- लोक सभा का सदस्य निर्वाचित होने योग्य हो।
- पैंतीस वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो।
- भारत का नागरिक हो।

निर्वाचन की रीति

राष्ट्रपति का निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा होगा। मतदान गुप्त होगा। इस पद्धति में जो प्रत्याशी 50% से अधिक मत प्राप्त करेगा, वह विजयी घोषित किया जायेगा।

मतदाता अपना अधिमान इंगित करता है अर्थात वह मतदान पत्र में प्रत्याशियों के नाम के आगे 1, 2, 3, 4 आदि लिखकर अपना अधिमान प्रकट करता है।

जब कोई प्रत्याशी कोटा प्राप्त कर लेता है तो उसके अतिरिक्त मत अन्य प्रत्यशियों को अंतरित हो जाते है। इस प्रक्रिया के कारण ही इसे एकल संक्रमणीय मत कहते है।

राष्ट्रपति द्वारा शपथ

राष्ट्रपति पद ग्रहण करने से पूर्व शपथ लेता है। अपनी शपथ में राष्ट्रपति वचन देता है-

- उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और उसकी अनुपस्थिति में वरिष्ठतम न्यायाधीश द्वारा राष्ट्रपति को पद की शपथ दिलाई जाती है।
- संविधान व कानून का पालन सुरक्षा व रक्षा करेगा।
- वह अपने पद के प्रति वफादार रहेगा।
- स्वयं को भारत के लोगों की सेवा व कल्याण करने में समर्पित करेगा।

राष्ट्रपति के पद की शर्तें

संविधान द्वारा राष्ट्रपति के पद के लिए निम्नलिखित शर्तें रखी हैं-

- वह संसद के किसी भी सदन अथवा राज्य विधायिका का सदस्य नहीं होना चाहिए। यदि कोई ऐसा व्यक्ति राष्ट्रपति निर्वाचित होता है तो उसे पद ग्रहण करने से पूर्व उस सदन से त्यागपत्र देना होगा।
- उसके वेतन व भत्तों को उसके कार्यकाल में घटाया नहीं जा सकता।
- उसे बिना कोई किराया चुकाए आधिकारिक निवास (राष्ट्रपति भवन) आबंटित होगा।
- वह किसी लाभ के पद पर न हो।
- उसे संसद द्वारा निर्धारित लाभ, भत्ते व विशेषाधिकार प्राप्त होंगे।

2008 में संसद ने राष्ट्रपति का वेतन 50000 से 150,000 रुपए प्रतिमाह तथा पेंशन 3 लाख प्रतिवर्ष से बढ़ाकर 9 लाख रु. प्रतिवर्ष कर दी है। राष्ट्रपति को अनके विशेषाधिकार प्राप्त हैं। वह अपने आधिकारिक कार्यों में किसी भी कानूनी जिम्मेदारियों से मुक्त होता है। अपने कार्यकाल के दौरान वह किसी भी आपराधिक कार्यवाही से मुक्त होता है यहां तक कि व्यक्तिगत क्रिया से भी। वह गिरफ्तार नहीं किया जा सकता, न ही जेल भेजा जा सकता है, हालांकि दो महीने के नोटिस देने के बाद उसके कार्यकाल में उस पर उसके कार्यों के लिए अभियोग चलाया जा सकता है।

कार्यकाल, महाभियोग व पद-रिक्तता

राष्ट्रपति का कार्यकाल

राष्ट्रपति का कार्यकाल पांच वर्ष का होता है हालांकि वह अपने कार्यकाल की अवधि में किसी भी समय अपना त्यागपत्र उपराष्ट्रपति को दे सकता है। इसके अतिरिक्त उसे कार्यकाल पूरा होने के पूर्व महाभियोग चलाकर भी उसके पद से हटाया जा सकता है।

जब तक उसका उत्तराधिकारी पद ग्रहण न कर ले राष्ट्रपति अपने पांच वर्ष के कार्यकाल के उपरांत भी पद पर बना रह सकता है।

राष्ट्रपति पर महाभियोग

राष्ट्रपति पर 'संविधान का उल्लंघन' करने पर महाभियोग चलाकर उसे पद से हटाया जा सकता है। हालांकि संविधान ने 'संविधान का उल्लंघन' वाक्य को परिभाषित नहीं किया है। महाभियोग के आरोप संसद के किसी भी सदन में प्रारंभ किए जा सकते हैं। इन आरोपों पर सदन के एक चौथई सदस्यों (जिस सदन में आरोप लगाए गए हैं) के हस्ताक्षर होने चाहियें और राष्ट्रपति को 14 दिन पूर्व का नोटिस देना चाहिए। महाभियोग का प्रस्ताव दो-तिहाई बहुमत से पारित होने के पश्चात यह दूसरे सदन में भेजा जाता है, जो इन आरोपों की जांच करता है। राष्ट्रपति को अधिकार है कि वह इस जांच में उपस्थित होकर अपना पक्ष रखे। यदि दूसरा सदन इन आरोपों को सही पाता है और महाभियोग प्रस्ताव को दो-तिहाई बहुमत से पारित करता है तो राष्ट्रपति को प्रस्ताव पारित होने की तिथि से उसके पद से हटा दिया जाता है।

इस प्रकार महाभियोग संसद की एक अर्द्ध न्यायिक प्रक्रिया है। इस संदर्भ में ध्यान देने योग्य हैं–

- संसद के दोनों सदनों के नामांकित सदस्य जिन्होंने राष्ट्रपति के चुनाव में भाग नहीं लिया था, इस प्रस्ताव में भाग ले सकते हैं। अभी तक किसी भी राष्ट्रपति पर महाभियोग नहीं चलाया गया है।

राष्ट्रपति के पद की रिक्तता

राष्ट्रपति का पद निम्न प्रकार से रिक्त हो सकता है-

- उसके त्यागपत्र देने पर,
- उसकी मृत्यु पर,
- महाभियोग प्रस्ताव द्वारा उसे पद से हटाने पर,
- पांच वर्षीय कार्यकाल समाप्त होने पर,
- अन्यथा, जैसे यदि वह पद ग्रहण करने के आयोग्य हो अथवा निर्वाचन अवैध घोषित हो।

यदि पद रिक्त होने का कारण उसके कार्यकाल का समाप्त होना हो तो उस पद को भरने हेतु उसके कार्यकाल पूर्ण होने से पूर्व नया चुनाव कराना चाहिए।

यदि उसका पद उसकी मृत्यु, त्यागपत्र, निष्कासन अन्यथा किसी अन्य कारण से रिक्त होता है तो नए राष्ट्रपति का चुनाव पद रिक्त होने की तिथि से छह महीने के भीतर कराना चाहिए। नया निर्वाचित राष्ट्रपति पद ग्रहण करने से पांच वर्ष तक अपने पद पर बना रहेगा। यदि राष्ट्रपति का पद उसकी मृत्यु, त्यागपत्र, निष्कासन अथवा अन्य किन्हीं कारणों से रिक्त हो तो उपराष्ट्रपति, नए राष्ट्रपति के निर्वाचित होने तक कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करेगा। यदि उपराष्ट्रपति का पद भी रिक्त हो, तो भारत का मुख्य न्यायाधीश (अथवा उसके भी पद रिक्त होने पर उच्चतम न्यायालय का वरिष्ठतम न्यायाधीश) कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करेगा तथा उसके कर्तव्यों का निर्वाह करेगा। जब कोई व्यक्ति, जैसे-उपराष्ट्रपति, भारत का मुख्य न्यायाधीश अथवा उच्चतम न्यायालय का वरिष्ठतम कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करता है अथवा उसके कर्तव्यों का निर्वाह करता है तो उसे राष्ट्रपति की समस्त शक्तियों व विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं तथा वह संसद द्वारा निर्धारित सभी वेतन, भत्ते व विशेषाधिकार भी प्राप्त करता है।

राष्ट्रपति की शक्तियां व कर्त्तव्य

राष्ट्रपति द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्तियां व कर्त्तव्य निम्नलिखित हैं–

- आपातकालीन शक्तियां
- विधायी शक्तियां
- न्यायिक शक्तियां।
- कूटनीतिक शक्तियां
- वित्तीय शक्तियां
- सैन्य शक्तियां।
- कार्यकारी शक्तियां।

कार्यकारी शक्तियां

राष्ट्रपति की कार्यकारी शक्तियां व कार्य हैं–

- वह किसी भी क्षेत्र को अनुसूचित क्षेत्र घोषित कर सकता है।

  वह महान्यायवादी की नियुक्ति करता है तथा उसके वेतन आदि निर्धारित करता है। महान्यायवादी, राष्ट्रपति के प्रसादपर्यत अपने पद पर कार्य करता है।
- वह भारत के महानियंत्रक व लेखा परीक्षक, मुख्य चुनाव आयुक्त तथा अन्य चुनाव आयुक्तों, संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष व सदस्यों, राज्य के राज्यपालों, वित्त आयोग के अध्यक्ष व सदस्यों आदि की नियुक्ति करता है।
- भारत सरकार के सभी शासन संबंधी कार्य उसके नाम पर किए जाते हैं।
- वह प्रधानमंत्री तथा अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है, तथा वे उसके प्रसाद पर्यंत कार्य करते हैं।
- वह स्वयं द्वारा नियुक्त प्रशासकों के द्वारा केंद्रशासित राज्यों का प्रशासन कर सकता है।
- वह अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़े

वर्गों के लिए एक आयोग की नियुक्ति कर सकता है।

विधायी शक्तियां

राष्ट्रपति संसद का एक अभिन्न अंग है तथा उसे निम्नलिखित विधायी शक्तियां प्राप्त हैं-

- यंदि लोकसभा के अध्यक्ष व उपाध्यक्ष दोनों के पद रिक्त हों तो वह लोकसभा के किसी भी सदस्य को सदन की अध्यक्षता सौंप सकता है। इसी प्रकार यदि राज्यसभा के सभापति व उपसभापति दोनों का पद रिक्त हों तो वह राज्यसभा के किसी भी सदस्य को सदन की अध्यक्षता सौंप सकता है।
- वह संसद की बैठक बुला सकता है अथवा कुछ समय के लिए स्थगित कर सकता है और लोकसभा को भंग कर सकता है। वह संसद के संयुक्त अधिवेशन का आह्वान कर सकता है जिसकी अध्यक्षता लोकसभा अध्यक्ष करता है।
- वह प्रत्येक नए चुनाव के बाद तथा प्रत्येक वर्ष संसद के प्रथम अधिवेशन को संबोधित करता है।
- वह साहित्य, विज्ञान, कला व समाज सेवा विषयों के संबंध में विशेष ज्ञान प्राप्त व्यक्तियों में से 12 सदस्यों को राज्यसभा के लिए मनोनीत करता है।
- जब एक विधेयक संसद द्वारा पारित होकर राष्ट्रपति के पास भेजा जाता है तो वह-
  - विधेयक को अपनी स्वीकृति देता है; अथवा
  - विधेयक पर अपनी स्वीकृति सुरक्षित रखता है; अथवा।
  - विधेयक को (यदि वह धन विधेयक नहीं है तो) संसद के पुनर्विचार के लिए लौटा देता है।

  हालांकि यदि संसद विधेयक को बिना किसी संशोधन के पुन:पारित करती है तो राष्ट्रपति की अपनी सहमति देनी ही होती है।
- वह लोकसभा में दो आंग्ल-भारतीय समुदाय के व्यक्तियों को मनोनीत करता है।
- राज्य विधायिका द्वारा पारित किसी विधेयक को राज्यपाल जब राष्ट्रपति के विचार के लिए सुरक्षित रखता है तब राष्ट्रपति
  - विधेयक को अपनी स्वीकृति देता है; अथवा
  - विधेयक पर अपनी स्वीकृति सुरक्षित रखता है; अथवा
  - राज्यापाल को निर्देश देता है कि विधेयक (यदि वह धन विधेयक नहीं है तो) को राज्य विधायिका को पुनर्विचार हेतु लौटा दे। यह ध्यान देने की बात है कि यदि राज्यपाल विधेयक को पुन: राष्ट्रपति की सहमति के लिए भेजता है तो राष्ट्रपति स्वीकृति देने के लिए बाध्य नहीं है।
- वह महानियंत्रक व लेख परीक्षक, संघ लोक सेवा आयोग, वित्त आयोग व अन्य की रिपोर्ट संसद के समक्ष रखत है।
- वह संसद के सत्रावसान की अवधि में अध्यादेश जारी कर सकता है।

वित्तीय शक्तियां

राष्ट्रपति की वित्तीय शक्तियां व कार्य निम्नलिखित हैं-

- वह राज्य व केंद्र के मध्य राजस्व के बंटवारे के लिए प्रत्येक पांच वर्ष में एक वित्त आयोग का गठन करता है।
- वह वार्षिक वित्तीय विवरण (केंद्रीय बजट) को संसद के समक्ष रखता है।
- वह आकस्मिक निधि से, किसी अदृश्य व्यय हेतु अग्रिम भुगतान की व्यवस्था कर सकता है।
- धन विधेयक राष्ट्रपति की पूर्वानुमति से ही संसद में प्रस्तुत किया जा सकता है।

न्यायिक शक्तियां

राष्ट्रपति की न्यायकि शक्तियां व कार्य निम्नलिखित हैं-

- वह क्षमादान कर सकता है, प्राणदंड को रोक सकता है अथवा और किसी दंड को क्षमा अथवा स्थगित कर सकता है अथवा निम्नलिखित अपराधों के अंतर्गत दोषी व्यक्ति की सजा को निलंबित कर सकता है अथवा सजा में बदलाव कर सकता है-
  - उन मामलों में, जिनमें सजा सैन्य न्यायालय में दी गई हो।
  - उन मामलों में, जिनमें दंड का स्वरूप प्राणदंड हो।
- वह उच्चतम न्यायालय से किसी कानून या तथ्य पर सलाह ले सकता है परंतु उच्चतम न्यायालय की यह सलाह राष्ट्रपति पर बाध्यकारी नहीं है।
- वह उच्चतम न्यायालय व उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीशों व अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है।

कूटनीतिक शक्तियां

अंतर्राष्ट्रीय संधियां व समझौते राष्ट्रपति के नाम पर किए जाते हैं हालांकि इनके लिए संसद की अनुमति अनिवार्य है। वह अंतर्राष्ट्रीय मंचों व मामलों में भारत का प्रतिनिधित्व करता है और कूटनीतिज्ञों जैसे-राजदूतों व उच्चायुक्तों को भेजता है एवं उनका स्वागत करता है।

सैन्य शक्तियां

वह भारत के सैन्य बलों का सर्वोच्च सेनापति होता है। इस

संदर्भ में वह थल सेना, जल व वायु सेना के प्रमुखों की नियुक्ति करता है। वह युद्ध अथवा शांति की घोषणा करता है किंतु यह संसद की अनुमति के अनुसार होता है।

आपातकालीन शक्तियां

उपरोक्त साधारण शक्तियों के अतिरिक्त संविधान ने राष्ट्रपति को निम्नलिखित तीन परिस्थितियों में आपातकालीन शक्तियां भी प्रदान की है-

- राष्ट्रीय आपात (अनुच्छेद 352);
- राष्ट्रपति शासन (अनुच्छेद 356 तथा 365) एवं
- वित्तीय आपात (अनुच्छेद 360)।

राष्ट्रपति की वीटो शक्ति

संसद द्वारा पारित कोई विधेयक तभी कानून बनता है जब राष्ट्रपति उसे अपनी सहमति देता है। जब ऐसा विधेयक राष्ट्रपति की सहमति के लिए प्रस्तुत होता है तो उसके पास तीन विकल्प होते हैं (अनुच्छेद 111 के अंतर्गत)-

- वह विधेयक (यदि विधेयक धन विधेयक नहीं है) को संसद के पुर्नविचार हेतु लौटा सकता है। हालांकि यदि संसद इस विधेयक को पुन: बिना किसी संशोधन के अथवा संशोधन करके, राष्ट्रपति के सामने प्रस्तुत करे तो राष्ट्रपति को अपनी स्वीकृति देनी ही होती है।
- वह विधेयक पर अपनी स्वीकृति दे सकता है; अथवा
- विधेयक पर अपनी स्वीकृति को सुरक्षित रख सकता है; अथवा।

वर्तमान राज्यों के कार्यकारी प्रमुखों की वीटो शक्तियों को चार प्रकार से वर्गीकृत किया गया है-

- पॉकेट वीटो, विधायिका द्वारा पारित विधेयक पर कोई निर्णय नहीं करना।
- विशेषित वीटो, जो विधायिका द्वारा उच्च बहुमत द्वारा निरस्त किया जा सके।
- निलंबनकारी वीटो, जो विधायिका द्वारा साधारण बहुमत द्वारा निरस्त किया जा सके।
- अत्यांतिक वीटो, अर्थात विधायिका द्वारा पारित विधेयक पर अपनी राय सुरक्षित रखना।

उपरोक्त चार में, भारत के राष्ट्रपति में तीन शक्तियां अत्यांतिक वीटो, निलंबनकारी वीटो और पाकेट वीटो निहित हैं।

अत्यांतिक वीटो

सामान्यत: यह वीटो निम्न दो मामलों में प्रयोग किया जाता है-

- व्यक्तिगत सदस्यों के संबंध में (अर्थात संसद का वह सदस्य जो मंत्री न हो, द्वारा प्रस्तुत विधेयक); और
- सरकारी विधेयक के संबंध में जब मंत्रिमंडल त्यागपत्र दे दे (जब विधेयक पारित हो गया हो तथा राष्ट्रपति की अनुमति शेष हो) और नया मंत्रिमंडल राष्ट्रपति को ऐसे विधेयक पर अपनी सहमति न देने की सलाह दे। 1954 में, राष्ट्रपति डॉ, राजेंद्र प्रसार ने पीईपीएसयू विधेयक पर अपना निर्णय रोककर रखा।

पुन: 1991 में, राष्ट्रपति डॉ. आर. वेंकटरमण द्वारा संसद सदस्यों के वेतन, भत्ते व पेंशन (संशोधन) विधेयक को रोक कर रखा गया।

निलंबनकारी वीटो

राष्ट्रपति इस वीटो का प्रयोग तब करता है जब वह किसी विधेयक को संसद के पुनर्विचार हेतु लौटाता है। हालांकि यदि संसद उस विधेयक को पुन: किसी संशोधन के बिना अथवा संशोधन के साथ पारित कर राष्ट्रपति के पास भेजती है तो उस पर राष्ट्रपति को अपनी स्वीकृति देना बाध्यकारी है। जैसा कि पूर्व में बताया गया है कि राष्ट्रपति धन विधेयकों के मामले में इस वीटो का प्रयोग नहीं कर सकता है।

पॉकेट वीटो

इस मामले में राष्ट्रपति विधेयक पर न तो कोई सहमति देता है, न तिरस्कृत करता है, और न ही लौटाता है पंरतु एक अनिश्चित काल के लिए विधेयक को लंबित कर देता है। राष्ट्रपति की यह किसी भी प्रकार का निर्णय न देने की शक्ति पॉकेट वीटो के नाम से जानी जाती है।

सन् 1986 में राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह द्वारा भारतीय डाक (संशोधन) अधिनियम के सदंर्भ में इस वीटो का प्रयोग किया गया। राजीव गांधी सरकार द्वारा पारित अधिनियम प्रेस की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगा रहा था और इसकी अत्यधिक आलोचना हुई।

राज्य विधायिका पर राष्ट्रपति का वीटो

जब कोई विधेयक राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित किया जाता है तो राष्ट्रपति के पास तीन विकल्प (अनुच्छेद 201) होते हैं-

- वह विधेयक पर अपनी स्वीकृति दे सकता है, अथवा
- वह विधेयक पर अपनी स्वीकृति सुरक्षित रख सकता है, अथवा
- वह राज्यपाल को निर्देश दे सकता है कि वह विधेयक (यदि धन विधेयक नहीं है) को राज्य विधायिका के पास पुनर्विचर हेतु लौटा दे। यदि राज्य विधायिका किसी संशोध

न के बिना अथवा संशोधन करके पुन: विधेयक को पारित कर राष्ट्रपति के पास भेजती है तो राष्ट्रपति इस पर अपनी सहमति देने के लिए बाध्य नहीं है। इसका अर्थ है कि राज्य विधायिका राष्ट्रपति के वीटो को निरस्त नहीं कर सकती है।

अध्यादेश जारी करने की राष्ट्रपति की शक्ति

संविधान के अनुच्छेद 123 के तहत राष्ट्रपति को संसद के सत्रावसान की अवधि में अध्यादेश जारी करने की शक्तियां प्रदान की गई हैं। इन अध्यादेशों का प्रभाव व शक्तियां, संसद द्वारा बनाए गए कानून की तरह ही होती हैं परंतु ये स्वभाव से अल्पकालीन होते हैं।

यह शक्ति उसे अदृश्य व आकस्मिक स्थितियों से निपटने हेतु दी गई है परंतु इस शक्ति के प्रयोग में निम्नलिखित चार बाध्यताएं हैं-

- वह अध्यादेश तभी जारी कर सकता है जब संसद के दोनों अथवा दो में से किसी भी एक सदन का सत्र न चल रहा हो।
- वह तभी कोई अध्यादेश बना सकता है जब वह इस बात से संतुष्ट हो कि कोई ऐसी परिस्थिति है जो तुरंत कोई कार्य करने के लिए प्रेरित करती हो। कपूर केस (1970) में सुप्रीम कोर्ट ने कहा- "राष्ट्रपति की संतुष्टि पर बुरे बर्ताव के आधार पर प्रश्नचिह्न लगाया जा सकता है।
- अध्यादेश जारी करने की उसकी शक्ति, केवल समयावधि को छोड़कर संसद की कानून बानने की शक्तियों के समान ही है।
- अध्यादेश केवल उन्हीं मुद्दों पर जारी किया जा सकता है जिन पर संसद कानून बना सकती है।
- अध्यादेश को वहीं संवैधानिक बाध्यताएं होती हैं जो संसद द्वारा बनाए गए किसी कानून की होती हैं। अत: एक अध्यादेश मौलिक अधिकारों पर किसी प्रकार का कोई प्रतिबंध नहीं लगा सकता।
- संसद सत्रावसान की अवधि में जारी किया गया प्रत्येक अध्यादेश संसद की पुन: बैठक होने पर दोनों सदनों के पटल पर रखा जाना चाहिए। यदि संसद उस अध्यादेश को पारित कर देती है तो वह कानून का रूप धारण कर लेता है। यदि इस पर संसद कोई निर्णय नहीं लेती है तो संसद की दुबारा बैठक के छह हफ्ते पश्चात यह अध्यादेश मृतप्राय हो जाता है। यह अध्यादेश छह हफ्ते पूर्व भी समाप्त हो जाता है यदि संसद इसे अस्वीकार कर दे।

किसी अध्यादेश को संसद की मंजूरी न मिलने की स्थिति में, अधिकतम अवधि छह महीने और न्यूनतम अवधि छह हफ्ते की होती है। राष्ट्रपति किसी भी समय अध्यादेश को वापस ले सकता है। एक विधेयक की भांति एक अध्यादेश भी पश्चातदर्शी हो सकता है अर्थात इसे पिछली तिथि से प्रभावी किया जा सकता है। भारत के राष्ट्रपति को अध्यादेश जारी करने की शक्ति अनोखी है तथा अधिकांश लोकतांत्रिक राज्यों जैसे अमेरिका व ब्रिटेन में प्रयोग नहीं की जाती है।

राष्ट्रपति की क्षमादान करने की शक्ति

संविधान के अनुच्छेद 72 में राष्ट्रपति को उन व्यक्तियों को क्षमा करने की शक्ति प्रदान की गई है जो निम्नलिखित मामलों में किसी अपराध के लिए दोषी करार दिये गए हैं-

- केंद्रीय कानून के विरुद्ध किसी अपराध में दिए गए दंड में;
- सैन्य न्यायालय द्वारा दिए गए दंड में; और
- यदि दंड का स्वरूप मृत्युदंड हो।

राष्ट्रपति की इस शक्ति के दो रूप है- (अ) कानून के प्रयोग में होने वाली न्यायिक गलती को सुधारने के लिए, (ब) यदि राष्ट्रपति दंड का स्वरूप अधिक कड़ा समझता है तो उसका बचाव पाने के लिए।

क्षमा

इसमें सजा व दोष दोनों को हटा दिया जाता है तथा दोषी की सभी सजा, अयोग्यता व दंड को क्षमा कर दिया जाता है।

लघुकरण

इसका अर्थ है कि दंड के स्वरूप को बदलकर कम करना। उदाहरणार्थ मृत्युदंड को कठोर कारावास में परिवर्तित करना।

परिहार

इसका अर्थ है, दंड के स्वभाव में परिवर्तन किए बिना उसकी अवधि कम करना। उदाहरण के लिए दो वर्ष के कठोर कारावास को एक वर्ष के कठोर कारावास में परिवर्तित करना।

विराम

इसका अर्थ है किसी दोषी को मूलरूप में दी गई सजा को किसी विशेष परिस्थिति में कम करना जैसे शारीरिक अपंगता अथवा महिलाओं को गर्भावस्था की अवधि के कारण।

प्रविलंबन

इसका अर्थ है किसी दंड (विशेषकर मृत्युदंड) पर अस्थाई रोक लगाना। इसका उद्देश्य है कि दोषी व्यक्ति का क्षमा याचना अथवा दंड के स्वरूप परिवर्तन की याचना के लिए समय देना। संविधान के अनुच्छेद 161 के अंतर्गत 161 के अंतर्गत राज्य का राज्यपाल भी क्षमादान की शक्तियां रखता है। परंतु निम्नलिखित दो परिस्थितियों में राज्यपाल की क्षमादान शक्तियां, राष्ट्रपति से भिन्न हैं-

- जब क्षमादान की पूर्व याचिका राष्ट्रपति ने रद्द कर दी हो, तो दूसरी याचिका नहीं दी जा सकती।
- राष्ट्रपति मृत्युदंड को क्षमा कर सकता है परंतु राज्यपाल नहीं कर सकता।
- राष्ट्रपति किसी दंड पर न सिर्फ इसलिए राहत दे सकता है कि वह अत्यधिक कठोर है बल्कि इसलिए भी कि प्रमाण में गलती है।

  उच्चतम न्यायालय ने राष्ट्रपति की क्षमादान शक्ति का विभिन्न मामलों में अध्ययन कर निम्नलिखित सिद्धांत बनाए हैं-

- दया की याचना करने वाले व्यक्ति को राष्ट्रपति से मौखिक सुनवाई का अधिकार नहीं है।
- राष्ट्रपति इस शक्ति का प्रयोग केंद्रीय मंत्रिमंडल के परामर्श पर करेगा।
- राष्ट्रपति अपने आदेश के कारण बताने के लिए बाध्य नहीं है।
- राष्ट्रपति सैन्य न्यायालय द्वारा दी गई सजा को क्षमा कर सकता है परंतु राज्यपाल नहीं।

राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति

संविधान में सरकार का स्वरूप संसदीय है मुख्य शक्तियां प्रधानमंत्री के नेतृत्व वाले मंत्रिमंडल में निहित होती हैं। अन्य शब्दों में, राष्ट्रपति अपनी कार्यकारी शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री के नेतृत्व वाले मंत्रिमंडल की सहायता व सलाह से करता है। भारतीय संविधान के अंतर्गत राष्ट्रपति की स्थिति वही है जो ब्रिटिश संविधान के अंतर्गत राजा की स्थिति है। वह राष्ट्र का प्रमुख होता है, पर कार्यकारी नहीं होता। वह राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है, उस पर शासन नहीं करता है।

राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति की गणना करने पर, विशेष रूप से अनुच्छेद 53, 74 और 75 के प्रावधानों का संदर्भ लिया गया-

- मंत्रिपरिषद लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होगी (अनुच्छेद 75)। यह प्रावधान संसदीय व्यवस्था की नींव है।
- राष्ट्रपति की सहायता तथा परामर्श के लिए प्रधानमंत्री के नेतृत्व में एक मंत्रीपरिषद होगी वह संविधान के अनुसार अपने कार्य व कर्त्तव्य का उनकी सलाह पर निर्वहन करेगा (अनुच्छेद 74)।
- संघ की कार्यकारी शक्तियां राष्ट्रपति में निहित होंगी तथा उसके द्वारा प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से उसके अधीन अधिकारियों द्वारा संविधान के अनुसार प्रयोग की जाएगीं। (अनुच्छेद 53)-

यद्यपि राष्ट्रपति के पास कोई संवैधानिक कार्य स्वतंत्रता नहीं है परंतु उसके पास कुछ परिस्थितीय कार्य स्वतंत्रता है। राष्ट्रपति निम्नलिखित परिस्थितियों में अपनी कार्य स्वतंत्रता का प्रयोग (बिना मंत्रिमंडल की सलाह पर) कर सकता है-

- वह मंत्रिमंडल को भंग कर सकता है, यदि वह सदन में विश्वास मत सिद्ध न कर सके।
- वह प्रधानमंत्री की नियुक्ति करता है जब लोकसभा में किसी भी दल के पास स्पष्ट बहुमत नहीं होता अथवा जब प्रधानमंत्री की अचानक मृत्यु हो जाए तथा उसका कोई स्पष्ट उत्तराधिकारी न हो।
- वह लोकसभा को भंग कर सकता है यदि मंत्रिमंडल ने अपना बहुमत खो दिया हो।

उपराष्ट्रपति

उपराष्ट्रपति का पद देश का दूसरा सर्वोच्च पद होता है। आधिकारिक क्रम में उसका पद राष्ट्रपति के बाद आता है। उपराष्ट्रपति का पद अमेरिका के उपराष्ट्रपति की तर्ज पर बनाया गया है।

निर्वाचन

राष्ट्रपति की तरह उपराष्ट्रपति को भी परोक्ष रूप से चुना जाता है। वह संसद के दोनों सदनों के सदस्यों के निर्वाचक मंडल द्वारा चुना जाता है। अतः यह निर्वाचक मंडल, राष्ट्रपति के निर्वाचक मंडल से दो बातों में भिन्न है-

- इसमें राज्य विधानसभाओं के सदस्य शामिल नहीं होते हैं (राष्ट्रपति के चुनाव में राज्य विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य शामिल होते हैं)
- इसमें संसद के निर्वाचित और मनोनीत दोनों सदस्य होते हैं (राष्ट्रपति के चुनाव में केवल निर्वाचित सदस्य होते हैं)।

  राष्ट्रपति के चुनाव की तरह उपराष्ट्रपति का चुनाव भी आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर एकल संक्रमणीय मत द्वारा होता है और मतदान गुप्त होता है।

योग्यताएं

उपराष्ट्रपति के चुनाव हेतु किसी व्यक्ति को निम्नलिखित योग्यताएं पूर्ण करनी चाहिएं-

- वह केंद्र सरकार अथवा राज्य सरकार अथवा किसी स्थानीय प्राधिकरण या अन्य किसी सार्वजनिक प्राधिकरण के अंतर्गत किसी लाभ के पद पर न हो।
- वह 35 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका हो।
- वह राज्यसभा का चुनाव लड़ने के लिए योग्य हो।

EduBull.com

- वह भारत का नागरिक हो।

शपथ अथवा वचन

उपराष्ट्रपति को पद ग्रहण करने से पूर्व शपथ लेनी अथवा वचना देना होता है। अपनी शपथ में उपराष्ट्रपति वचन देता है कि-

- उपराष्ट्रपति को उसके पद की शपथ राष्ट्रपति अथवा उसके द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति द्वारा दिलवाई जाती है।
- वह अपने पद और कर्त्तव्यों का निर्वाह पूर्ण ईमानदारी से करेगा।
- वह भारत के संविधान के प्रति पूर्ण वफादार और निष्ठावान रहेगा।

उपराष्ट्रपति के पद की शर्तें

संविधान द्वारा उपराष्ट्रपति पद हेतु निम्नलिखित शर्तें निर्धारित की गई हैं-

- वह किसी लाभ के पद पर न हो।
- वह संसद के किसी भी सदन अथवा राज्य विधायिका के किसी भी सदन का सदस्य न हो। यदि ऐसा कोई व्यक्ति उपराष्ट्रपति निर्वाचित होता है तो उसे पद ग्रहण करने से पूर्व उस सदन की सदस्यता से त्यागपत्र देना होगा।

कार्यकाल

उपराष्ट्रपति का कार्यकाल उसके पद ग्रहण करने से लेकर 5 वर्ष तक होता है। हालांकि वह अपने कार्यकाल की अवधि में किसी भी समय अपना त्यागपत्र राष्ट्रपति को दे सकता है। उसे अपने पद से कार्यकाल पूर्ण होने से पूर्व भी हटाया जा सकता है। उसे हटाने के लिए औपचारिक महाभियोग की आवश्यकता नहीं है। उसे राज्यसभा द्वारा प्रस्ताव पारित कर पूर्ण बहुमत द्वारा हटाया जा सकता है। (अर्थात सदन के कुल सदस्यों का बहुमत) और इसे लोकसभा की सहमति आवश्यक है। परंतु ऐसा कोई प्रस्ताव तब तक पेश नहीं किया जा सकता जब तक 14 दिन का अग्रिम नोटिस न दिया गया हो। **ध्यान देने योग्य बात यह है कि संविधान में उसे हटाने हेतु कोई आधार नहीं है।**

पद रिक्तता

उपराष्ट्रपति का पद निम्नलिखित कारणों से रिक्त हो सकता हैं-

- उसकी मृत्यु पर।
- उसके द्वारा त्यागपत्र देने पर।
- उसे बर्खास्त करने पर।
- उसके 5 वर्षीय कार्यकाल की समाप्ति होने पर।
- अन्यथा, उदाहरण के लिए, यदि वह पद ग्रहण करने के अयोग्य हो अथवा उसका निर्वाचन अवैध घोषित हो।

चुनाव विवाद

उपराष्ट्रपति के चुनाव से संबंधित सभी शंकाएं व विवादों की जांच और निर्णय उच्चतम न्यायालय द्वारा किए जाएंगे जिसका निर्णय अंतिम होगा। उपराष्ट्रपति के चुनाव को निर्वाचक मंडल के अपूर्ण होने के आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती (अर्थात जब निर्वाचक मंडल में किसी सदस्य का पद रिक्त हो)।

शक्तियां व कार्य

उपराष्ट्रपति के कार्य दोहरे होते हैं-

- जब राष्ट्रपति का पद उसके त्यागपत्र, निष्कासन, मृत्यु तथा अन्य कारणों से रिक्त होता है तो वह कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में भी कार्य करता है। वह कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में अधिकतम छह महीने की अवधि तक कार्य करता है। कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करने के दौरान उपराष्ट्रपति राज्यसभा के सभापति के रूप में कार्य नहीं करता है।
- वह राज्यसभा के सभापति के रूप में कार्य करता है। इस संदर्भ में उसकी शक्तियां व कार्य लोकसभा अध्यक्ष की भांति ही होते हैं। इस संबंध में वह अमेरिका के उपराष्ट्रपति के समान ही कार्य करता है, वह भी सीनेट (अमेरिका के उच्च सदन) का सभापति होता है।

पारिश्रमिक

संविधान में उपराष्ट्रपति के लिए कोई पारितोषिक आदि की व्यवस्था नहीं है। वह राज्यसभा के सभापति के रूप में वेतन पाता है। सन् 2006 में राज्यसभा के सभापति का वेतन बढ़ाकर 1,25000 कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त, वह दैनिक भत्ते, मुफ्त आवास, स्वास्थ्य व यात्रा आदि की सुविधाएं प्राप्त करता है।

उपराष्ट्रपति जब किसी अवधि में कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करता है तो वह राज्यसभा के सभापति को मिलने वाला वेतन नहीं पाता है, अपितु उसे राष्ट्रपति को प्राप्त होने वाले वेतन व भत्ते आदि मिलते हैं।

Elections of the Presidents (1952-2012)

Sl. No.	*Election Year*	*Victorious Candidate*
1.	1952	Dr. Rajendra Prasad
2.	1957	Dr. Rajendra Prasad
3.	1962	Dr. S. Radhakrishnan
4.	1967	Dr. Zakir Hussain
5.	1969	V.V. Giri

6.	1974	Fakhruddin Ali Ahmed
7.	1977	N. Sanjeeva Reddy
8.	1982	Giani Zail Singh
9.	1987	R. Venkataraman
10.	1992	Dr. Shankar Dayal Sharma
11.	1997	K.R. Narayanan
12.	2002	Dr. A.P.J. Abdul Kalam
13.	2007	Ms. Pratibha Patil
14.	2012	Pranav Mukherjee

Elections of the Vice-Presidents (1952-2012)

Sl. No.	*Election Year*	*Victorious Candidate*
1.	1952	Dr. Radhakrishnan
2.	1957	Dr. S. Radhakrishnan
3.	1962	Dr. Zakir Hussain
4.	1967	V.V. Giri
5.	1969	G.S. Pathak
6.	1974	B.D. Jatti
7.	1979	M. Hidaytullah
8.	1984	R. Venkataraman
9.	1987	Dr. Shankar Dayal Sharma
10.	1992	K.R. Narayanan
11.	1997	Krishna Kant
12.	2002	B.S. Shekhawat
13.	2007	Mohd. Hamid Ansari
14.	2012	Mohd. Hamid Ansari

EduBull.com

Add. 41-42A, Ashok Park Main, New Rohtak Road, New Delhi-110035
+91-9350679141

11. प्रधानमंत्री व केन्द्रीय मंत्री-परिषद

संविधान द्वारा प्रदत्त सरकार की संसदीय व्यवस्था में राष्ट्रपति केवल नाममात्र का कार्यकारी प्रमुख होता है (De Jure Executive) तथा वास्तविक कार्यकारी शक्तियां प्रधानमंत्री में (De Facto executive) निहित होती हैं

प्रधानमंत्री की नियुक्ति

संविधान में प्रधानमंत्री के निर्वाचन और नियुक्ति के लिए कोई विशेष प्रक्रिया नहीं दी गई है। अनुच्छेद 75 केवल इनता कहता है कि राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री की नियुक्ति करेगा। सरकार की संसदीय व्यवस्था के अनुसार, राष्ट्रपति लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल के नेता को प्रधानमंत्री नियुक्त करता है परंतु यदि लोकसभा में कोई भी दल स्पष्ट बहुमत में न हो तो राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की नियुक्ति में अपनी वैयक्तिक कार्य स्वतंत्रता का प्रयोग कर सकता है।

1997 में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि एक व्यक्ति को जो किसी भी सदन का सदस्य न हो, 6 महीने के लिए प्रधानमंत्री नियुक्त किया जा सकता है। इस समयावधि में उसे संसद के किसी भी सदन का सदस्य बनना पड़ेगा; अन्यथा वह प्रधानमंत्री के पद पर नहीं बना रहेगा।

प्रधानमंत्री संसद के दोनों सदनों में से किसी का भी सदस्य हो सकता है। उदाहरण के लिए इंदिरा गांधी (1966) और देवगौड़ा (1996) में राज्यसभा के सदस्य थे। प्रधानमंत्री का पद ग्रहण करने से पूर्व राष्ट्रपति उसे पद एवं गोपनीयता की शपथ दिलवाता है। प्रधानमंत्री को जब तक लोकसभा में बहुमत हासिल है, राष्ट्रपति उसे बर्खास्त नहीं कर सकता है। लोकसभा में अपना विश्वास मत खो देने पर उसे अपने पद से त्यागपत्र देना होगा अथवा त्यागपत्र न देने पर राष्ट्रपति उसे बर्खास्त कर सकता है।

प्रधानमंत्री के वेतन व भत्ते संसद द्वारा समय-समय पर निर्धारित किए जाते हैं। वह संसद सदस्य को प्राप्त होने वाले वेतन एवं भत्ते प्राप्त करता है।

प्रधानमंत्री के कार्य व शक्तियां

प्रधानमंत्री की कार्य व शक्तियां निम्नलिखित हैं-

मंत्रिपरिषद के संबंध में

केंद्रीय मंत्रिपरिषद् के प्रमुख के रूप में प्रधानमंत्री की शक्तियां निम्न हैं-

- वह मंत्री नियुक्त करने हेतु अपने दल के व्यक्तियों की सिफारिश करता है। राष्ट्रपति उन्हीं व्यक्तियों को मंत्री नियुक्त करता है जिनकी सिफारिश प्रधानमंत्री द्वारा की जाती है।
- चूंकि प्रधानमंत्री मंत्रिपरिषद का प्रमुख होता है, अत: जब प्रधानमंत्री त्यागपत्र देता है अथवा उसकी मृत्यु हो जाती है तो अन्य मंत्री कोई भी कार्य नहीं कर सकते।
- वह मंत्रिपरिषद की बैठक की अध्यक्षता करता है तथा उसके निर्णयों को प्रभावित करता है।
- वह पद से त्यागपत्र देकर मंत्रिमंडल को बर्खास्त कर सकता है।
- वह मंत्रियों को विभिन्न मंत्रालय आबंटित करता है और उनमें फेरबदल करता है।

राष्ट्रपति के संबंध में

राट्रपति के संबंध में प्रधानमंत्री निम्न शक्तियों का प्रयोग करता है-

- वह राष्ट्रपति को विभिन्न अधिकारियों; जैसे- भारत का महान्यायवादी, भारत का महानियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक, संघ लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष एवं उसके सदस्यों, चुनाव आयुक्तों, वित्त आयोग का अध्यक्ष एवं उसके सदस्यों एवं अन्य की नियुक्ति के संबंध में परामर्श देता है।
- वह राष्ट्रपति एवं मंत्रिपरिषद के बीच संवाद की मुख्य कड़ी है।

संसद के संबंध में

प्रधानमंत्री निचले सदन का नेता होता है। इस संबंध में वह निम्नलिखित शक्तियों का प्रयोग करता है।

- वह सदन के पटल पर सरकार की नीतियों की घोषणा करता है।
- वह किसी भी समय लोकसभा भंग करने की सिफारिश राष्ट्रपति से कर सकता है।
- वह राष्ट्रपति को संसद का सत्र आहूत करने एवं सत्रावधान करने संबंधी परामर्श देता है।

अन्य शक्तियां व कार्य

उपरोक्त तीन मुख्य भूमिकाओं के अतिरिक्त प्रधानमंत्री की अन्य विभिन्न भूमिकाएं भी हैं-

- वह योजना आयोग, राष्ट्रीय विकास परिषद्, राष्ट्रीय परिषद और अंतर्राज्यीय परिषद का अध्यक्ष होता है।

- वह राष्ट्र की विदेश नीति को मूर्त रूप देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
- वह केंद्र सरकार का मुख्य प्रवक्ता है।
- वह सत्ताधारी दल का नेता होता है।

डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने कहा, "हमारे संविधान के अंतर्गत किसी कार्यकारी की यदि अमेरिका के राष्ट्रपति से तुलना की जाए तो वह प्रधानमंत्री है, न कि राष्ट्रपति।"

राष्ट्रपति के साथ संबंध

संविधान में राष्ट्रपति-प्रधानमंत्री के संबंध में निम्नलिखित प्रावधान हैं-

अनुच्छेद 74

- राष्ट्रपति की सहायता एवं सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद होगी जिसका प्रमुख प्रधानमंत्री होगा। राष्ट्रपति इसकी सलाह के अनुसार कार्य करेगा। हालांकि राष्ट्रपति मंत्रिमंडल से उसकी सलाह पर पुनर्विचार करने के लिए कह सकता है।

अनुच्छेद 75

- राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की नियुक्ति करेगा और प्रधानमंत्री की सलाह पर अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करेगा, (ब) मंत्री राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यंत अपने पद पर बने रहेंगे, और (स) मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तदायी होती है।

अनुच्छेद 78

प्रधानमंत्री के कर्त्तव्य हैं :-

- किसी मंत्री द्वारा लिए गए निर्णय पर यदि मंत्रिपरिषद ने विचार न किया हो तो यदि राष्ट्रपति चाहे तो मंत्रिमंडल को सलाह के लिए भेज सकता है।
- राष्ट्रपति के कहने पर संघ के प्रशासन और विधायिका द्वारा लिए गये प्रस्ताव से संबंधित निर्णयों को राष्ट्रपति तक पहुंचाना।
- मंत्रिपरिषद के संघ के प्रशासन और विधायिका द्वारा लिए गये प्रस्ताव से संबंधित निर्णयों को राष्ट्रपति तक पहुंचाना।

प्रधानमंत्री कार्यालय

पी.एम.ओ. एक स्टाफ एजेंसी है, जो प्रधानमंत्री को सचिव स्तरीय सहायता और महत्वपूर्ण सलाह भी देती है। यह भारत सरकार में उच्च स्तर की निर्णय प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है हालांकि यह एक संविधानेत्तर निकाय है। प्रधानमंत्री कार्यालय को, कार्य वितरण नियम 1961 के अंतर्गत भारत सरकार के एक विभाग का दर्जा हासिल है।

प्रधानमंत्री कार्यालय 1947 में गवर्नर जनरल के सचिव के स्थान पर अस्तित्व में आया। जून 1977 तक इसे प्रधानमंत्री सचिवालय कहा जाता था।

कार्य

प्रधानमंत्री कार्यालय के निम्नलिखित कार्य हैं-

- प्रधानमंत्री के 'विचार स्रोत' के रूप में कार्य करना।
- प्रधानमंत्री की योजना आयोग एवं राष्ट्रीय विकास परिषद के अध्यक्ष के रूप में सहायता करना।
- प्रधानमंत्री के जन संपर्को जैसे प्रेस और आम जनता के साथ संबंधों की देखभाल करना।
- राष्ट्रपति, राज्यपालों व विदेशी प्रतिनिधियों के साथ समन्वय स्थापित करना।
- प्रधानमंत्री के सरकार के प्रमुख के रूप में उसकी समस्त जिम्मेदारियों में सहायता करना, केंद्रीय मंत्रालयों/विभागों और राज्य सरकारों के बीच समन्वय रखने में सहायता करना।

यह उन सभी ऐसे मामलों को देखता है जो किसी मंत्रालय या विभागों को नहीं दिए गए हैं। आलोचकों द्वारा प्रधानमंत्री कार्यालय अपने विभिन्न तरीकों जैसे 'सुपर कैबिनेट', 'माइक्रो कैबिनेट', सुपर मिनिस्टरी', 'सुपर अथारिटी', 'भारत सरकार', 'भारत सरकार की सरकार' आदि द्वारा उल्लिखित है।

केंद्रीय मंत्रिपरिषद

हमारी राजनैतिक और प्रशासनिक व्यवस्था की मुख्य कार्यकारी अधिकारी मंत्रिपरिषद होती है जिसका नेतृत्व प्रधानमंत्री करता है। अनुच्छेद 74 में प्रधानमंत्री के नेतृत्व वाली मंत्रिपरिषद का प्रावधान है। यह राष्ट्रपति को उसके कार्य करने हेतु सलाह देती है। 1971 में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि लोकसभा के भंग होने के पश्चात मंत्रिपरिषद कार्यशील नहीं होगी। अनुच्छेद 74 आवश्यक है अत: राष्ट्रपति अपनी कार्यकारी शक्ति का प्रयोग बिना मंत्रिमंडल की सहायता एवं परामर्श के नहीं कर सकता।

मंत्रियों की नियुक्ति

राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की नियुक्ति करता है तथा प्रधानमंत्री की सलाह पर अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है। सामान्यत: लोकसभा/राज्यसभा से ही संसद सदस्यों की मंत्रिपद पर नियुक्ति होती है। अत: यदि कोई व्यक्ति संसद की सदस्यता के बिना मंत्रिपद पर सुशोभित होता है तो उसे छह माह के भीतर संसद के किसी भी सदन की सदस्यता लेनी होगी। (निर्वाचन से अथवा नामांकन से) नहीं तो उसका मंत्रिपद रद्द कर दिया जाता है।

एक मंत्री को जो संसद के किसी एक सदन का सदस्य है, दूसरे सदन की कार्यवाही में भाग लेने और बोलने का अधिकार है परंतु वह उसी सदन में मत दे सकता है जिसका कि वह सदस्य है। मंत्रिपद ग्रहण करने से पूर्व राष्ट्रपति उसे पद एवं गोपनीयता की शपथ दिलाता है। मंत्रियों के वेतन व भत्ते संसद समय-समय पर निर्धारित करती है।

मंत्रियों के उत्तरदायित्व

सामूहिक उत्तरदायित्व

अनुच्छेद 75 स्पष्ट रूप से कहता है कि मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायित्व होगी। इसका अर्थ है कि सभी मंत्रियों की उनके सभी कार्यों के लिए लोकसभा के प्रति संयुक्त जिम्मेदारी होगी। जब लोकसभा मंत्रिपरिषद के विरुद्ध एक अविश्वास प्रस्ताव पारित करती है तो सभी मंत्रियों को जिसमें कि राज्यसभा के मंत्री भी शामिल हों त्यागपत्र देना पड़ता है।

व्यक्तिगत उत्तरदायित्व

अनुच्छेद 75 में व्यक्तिगत उत्तरदायित्व के सिद्धांत भी वर्णित हैं। यह कहता है कि मंत्री राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत अपने पद पर बने रहेंगे जिसका अर्थ है कि राष्ट्रपति किसी मंत्री को उस समय भी हटा सकता है जब मंत्रिपरिषद को लोकसभा में विश्वास मत प्राप्त है। हालांकि राष्ट्रपति किसी मंत्री को केवल प्रधानमंत्री की सलाह पर ही हटा सकता है।

कोई विधिक उत्तदायित्व नहीं

संविधान में, किसी भी मंत्री के लिए, किसी भी प्रकार की कानूनी जिम्मेदारी का कोई प्रावधान नहीं है। यह आवश्यक नहीं है कि राष्ट्रपति द्वारा जनहित में जारी किसी आदेश पर कोई मंत्री प्रति हस्ताक्षर करे। यहां तक कि मंत्री द्वारा राष्ट्रपति को दी गई किसी सलाह की जांच भी न्यायालय के क्षेत्र से बाहर है।

मंत्रिपरिषद का संगठन

मंत्रिपरिषद की तीन श्रेणियां होती हैं– कैबिनेट मंत्री, राज्य मंत्री व उपमंत्री। कैबिनेट मंत्रियों के पास केंद्र सरकार के महत्वपूर्ण मंत्रालय जैसे, गृह, रक्षा, वित्त, विदेश व अन्य मंत्रालय होते हैं। वे कैबिनेट के सदस्य होते हैं और इसकी बैठकों में भाग लेते हैं तथा नीति निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

राज्य मंत्रियों को मंत्रालय/विभागों का स्वतंत्र प्रभार दिया जा सकता है अथवा उन्हें कैबिनेट मंत्री के साथ सहयोगी बनाया जा सकता है। हालांकि वे कैबिनेट के सदस्य नहीं होते है तथा उनकी बैठकों में भाग नहीं लेते। वे तब तक बैठक में भाग नहीं लेते जब तथा उन्हें मंत्रालय से संबंधित किसी कार्य हेतु विशेष रूप से आमंत्रित नहीं किया जाए।

इस क्रम में अगला क्रम उपमंत्रियों का है। उन्हें मंत्रालयों का स्वतंत्र प्रभार नहीं दिया जाता है। वे कैबिनेट के सदस्य नहीं होते तथा कैबिनेट की बैठक में भाग नहीं लेते हैं।

मंत्रिमंडल की भूमिका

- यह हमारी राजनैतिक-प्रशासनिक व्यवस्था में उच्च निर्णय लेने वाली संस्था है।
- यह केंद्र सरकार की मुख्य नीति निर्धारक अंग है।
- यह राष्ट्रपति की सलाहकारी संस्था है तथा इसका परामर्श उस पर बाध्यकारी है।
- यह सभी बड़े विधायी और वित्तीय मामलों से निपटती है।
- यह विदेश नीतियों और विदेश मामलों को देखती हैं।

मंत्रिपरिषद	मंत्रिमंडल
यह लघु निकाय है जिसमें 15 से 20 मंत्री होते हैं।	यह एक बड़ा निकाय है जिसमें 60 से 70 मंत्री होते है।
इसमें मंत्रियों की तीन श्रेणियां-कैबिनेट मंत्री, राज्य मंत्री व उपमंत्री होते हैं।	इसमें केवल कैबिनेट मंत्री शामिल होते हैं। अत: यह मंत्री मंत्रिपरिषद का एक भाग है।
यह सरकारी कार्यों हेतु एक साथ बैठक नहीं करती है। इसका कोई समूहिक कार्य नहीं है।	यह एक निकाय की तरह है। यह सामान्यत: हफ्ते में एक बार बैठक करती है और सरकारी कार्यों के संबंध में निर्णय करती है। इसके कार्यकलाप सामूहिक होते हैं।
इसे सभी शक्तियां प्राप्त है परंतु कागजों में।	ये वास्तविक रूप में मंत्रिपरिषद की शक्तियों का प्रयोग करती है और उसके लिए कार्य करती है।
इसके कार्यों का निर्धारण मंत्रिमंडल करती है।	यह मंत्रिपरिषद को राजनैतिक निर्णय लेकर निर्देश देती है तथा ये निर्देश सभी मंत्रियों पर बाध्यकारी हैं।
यह मंत्रिमंडल के निर्णयो का अनुपालन करती है।	यह मंत्रिपरिषद द्वारा अपने निर्णयों के अनुपालन की देखरेख करती है।

मंत्रिमंडलीय समितियां

कैबिनेट विभिन्न समितियों के माध्यम से कार्य करती है। कैबिनेट समितियों के संबंध में निम्न बिंदु दृष्टव्य हैं-

- ये संविधानेत्तर होती हैं क्योंकि संविधान में इनका उल्लेख नहीं है हालांकि उनके गठन हेतु कार्य नियम का प्रावधान किया गया है।
- **ये दो प्रकार की होती:** स्थायी व तदर्थ। स्थायी समिति स्वभाव से स्थायी तथा तदर्थ समिति अस्थायी होती है। तदर्थ समितियां समय-समय पर विशेष मामलों के लिए गठित की जाती हैं।
- ये प्रधानमंत्री द्वारा समय की मांग व स्थिति के अनुसार गठित की जाती हैं। अत: इनकी संख्या, नाम तथा बनावट समय-समय पर भिन्न होती है।
- अधिकांशत: इसका नेतृत्व प्रधानमंत्री करता है।
- इनकी सदस्य संख्या 3 से लेकर 8 होती है।
- इनमें न केवल संबंधित मामलों के मंत्री ही शामिल होते हैं अपितु अन्य वरिष्ठ मंत्री भी शामिल होते हैं।

  ये कार्य विभाजन और प्रभावी प्रतिनिधिमंडल के सिद्धांत पर आधरित हैं।
- **चार महत्वपूर्ण स्थायी समितियां हैं:** राजनीतिक मामलों की समिति, आर्थिक मामलों की समिति, नियुक्ति समिति और संसदीय मामलों की समिति। प्रथम तीन समितियों के प्रमुख प्रधानमंत्री और अंतिम के गृह मंत्री हैं।

केंद्रीय सचिवालय

केंद्रीय सविवालय एक संघीय कैबिनेट के लिए स्टाफ एजेंसी है। यह भारत के प्रधानमंत्री के नेतृत्व व निर्देशन मे कार्य करता है। इसकी भूमिका केंद्र सरकार में उच्च स्तर पर नीति-निर्धारण की प्रक्रिया में समन्वय स्थापित करना है। इसका नेतृत्त्व राजनीतिक रूप से प्रधानमंत्री तथा प्रशासनिक रूप से कैबिनेट सचिव करता है।

यह कैबिनेट सचिवालय 1947 में गवर्नर-जनरल की कार्यकारी परिषद के स्थान पर अस्तित्व में आई।

भूमिका व कार्य

केंद्रीय सचिवालय के कार्य निम्नलिखित हैं-

- यह संबंधित मंत्रालयों/विभागों व अन्य एजेंसियों द्वारा कैबिनेट के निर्णयों को लागू करता है।
- यह कैबिनेट समितियों को सचिवालयी सहायता प्रदान करता है।
- यह राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति तथा सभी केंद्रीय मंत्रियों को केंद्र सरकार की गतिविधियों की जानकारी देता है।
- यह केंद्र सरकार में मुख्य समन्वय समिति का कार्य करता है। इस संबंध में, यह मंत्रालयों के बीच विवादों को सुलझाता है।
- यह कैबिनेट की बैठकों के लिए कार्यसूची तैयार करता है और इसके विचार-विमर्श के लिए आवश्यक जानकारी व सामान का प्रबंध करता है।

मंत्रिमंडलीय सचिव

कैबिनेट सचिव केंद्रीय सचिवालय में प्रशासनिक प्रमुख होता है। निम्नलिखित बिंदु कैबिनेट सचिव के कार्यों, भूमिका व शक्तियों के प्रमुख आकर्षण हैं-

- यह प्रधानमंत्री कार्यालय व विभिन्न प्रशासनिक एजेंसियों तथा प्रशासन व राजनीति के बीच की कड़ी हैं।
- यह वरिष्ठ चयन परिषद का अध्यक्ष है जो केंद्रीय सचिवालय में संयुक्त सचिव के लिए अधिकारियों का चयन करता है।
- यह मुख्य सचिवों के वार्षिक सम्मेलन की अध्यक्षता करता है।
- किसी मंत्री को अपनी छवि धूमिल करने के मामले में किसी समाचार पत्र के प्रकाशक अथवा संपादक के विरुद्ध कोई मुकदमा दायर करने से पूर्व कैबिनेट सचिव की अनुमति लेना आवश्यक है।
- यह प्रशासन के लिए सचिवो की समिति का अध्यक्ष है जो अंतर-मंत्रालयों विवादों को हल करने के लिए गठित होती है।
- यह केंद्रीय प्रशासन में मुख्य समन्वयक है। परंतु इसके पास मंत्रालयों/विभागों के ऊपर पर्यवेक्षण का कार्य नहीं है।

12. संसद

संसदीय प्रणाली अपनाने के कारण भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में संसद एक विशिष्ट व केंद्रीय स्थान रखती है। संविधान के पांचवें भाग के अंतर्गत अनुच्छेद 79 से 122 में संसद के गठन, संरचना, अवधि, अधिकारियों, प्रक्रिया, विशेषाधिकार व शक्ति आदि के बारे में वर्णन किया गया है।

संसद का गठन

संविधान के अनुसार भारत की संसद के तीन अंग है- राष्ट्रपति, लोकसभा व राज्यसभा। 1954 में लोकसभा व राज्यसभा शब्द को अपनाया गया। राज्यसभा, उच्च सदन कहलाता है (दूसरा चैंबर या बड़ों की सभा) जबकि लोकसभा निचला सदन (पहला चैंबर या चर्चित सभा) कहलाता है। राज्यसभा में राज्य व संघ राज्य क्षेत्रों के प्रतिनिधि होते हैं, जबकि लोकसभा संपूर्ण भारत के लोगों का प्रतिनिधित्व करती है।

हालांकि राष्ट्रपति संसद के किसी भी सदन का सदस्य नहीं होता है और न ही वह संसद में बैठता है लेकिन राष्ट्रपति संसद का अभिन्न अंग है।

दोनों सदनों की संरचना

राज्यसभा की संरचना

राज्यसभा में अधिकतम सदस्य 250 निर्धारित है। इनमें से 238 सदस्य राज्यों व संघ राज्य क्षेत्रों के प्रतिनिधि (अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित) होंगे, जबकि, 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किए जाएंगे। वर्तमान में राज्यसभा में 245 सदस्य हैं। संविधान की चौथी अनुसूची में राज्यसभा के लिए राज्यों व संघ राज्य क्षेत्रों में सीटों के आवंटन का वर्णन किया गया है।

- **मनोनीत या नाम निर्देशित सदस्य:** राष्ट्रपति, राज्यसभा में 12 ऐसे सदस्यों को नामांकित या नाम निर्देशित करता है जिन्हें कला, साहित्य, विज्ञान और समाज सेवा विषयों के संबंध में विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव हो।
- **संघ राज्य क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व:** राज्यसभा में संघ राज्य क्षेत्रों के प्रतिनिधि को एक निर्वाचक मंडल द्वारा चुना जाता है। यह चुनाव भी आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा होता है।
- **राज्यों का प्रतिनिधत्व:** राज्यसभा में राज्यों के प्रतिनिधि का निर्वाचन राज्य विधानसभा के निर्वाचित सदस्य करते हैं। चुनाव आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा होता है। राज्यसभा में राज्यों के लिए सीटों का बंटवारा उनकी जनसंख्या के आधार पर किया जाता है।

लोकसभा की संरचना

लोकसभा की अधिकतम क्षमता 552 निर्धारित की गई है। इनमें से 530 राज्यों के प्रतिनिधि, 20 संघ राज्य क्षेत्रों के प्रतिनिधि होते हैं। एंग्लो-इंडियन समुदाय के दो सदस्यों का राष्ट्रपति मनोनीत या नाम निर्देशत करता है। वर्तमान में लोकसभा में 545 सदस्य हैं।

- **मनोनीत या नाम निर्देशित सदस्य:** अगर एंग्लो-इंडियन समुदाय का लोकसभा में पर्याप्त प्रतिनिधित्व न हो, तो राष्ट्रपति इस समुदाय के दो लोगो को नामांकित या उनका नाम निर्देशित कर सकता है।
- **संघ राज्यक्षेत्रों का प्रतिनिधित्व:** संविधान ने संसद को संघ राज्यक्षेत्रों के प्रतिनिधियों को चुनने के लिए विधि बनाने का अधिकार दिया है। इसी के तहत संसद ने संघ राज्य क्षेत्र अधिनियम 1965 बनाया, जिसके तहत संघ राज्य क्षेत्रों से प्रत्यक्ष निर्वाचन के तहत लोकसभा के सदस्य चुने जाने लगे।
- **राज्यों का प्रतिनिधित्व:** लोकसभा में राज्यों के प्रतिनिधि राज्यों के विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों के लोगों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होते हैं। भारत के हर नागरिक को जिसकी उम्र 18 वर्ष से अधिक है और जिसे संविधान या कानून के प्रावधानों के मुताबिक अयोग्य नहीं ठहराया गया हो, मत देने का अधिकार है। 61वें संविधान संशोधन विधेयक, 1988 में मत देने की उम्र सीमा 21 से घटाकर 18 कर दी गई।

लोकसभा की चुनाव प्रणाली

लोकसभा चुनाव प्रणाली के निम्नलिखित पहलू हैं-

प्रादेशिक निर्वाचक क्षेत्र

लोकसभा के लिए प्रत्यक्ष निर्वाचन कराने के लिए सभी राज्यों को प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित किया गया है। इस संबंध में संविधान ने दो प्रावधान बनाए हैं-

- प्रत्येक राज्य को प्रादेशिक क्षेत्रों में ऐसी रीति से विभाजित किया जाएगा कि प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्रों की जनसंख्या और उसको आवंटित स्थानों की संख्या का अनुपात समस्त राज्य में एक ही हो।

- लोकसभा में सीटों का आवंटन प्रत्येक राज्य को ऐसी रीति से किया जाएगा कि स्थानों की संख्या से उस राज्य की जनसंख्या का अनुपात सभी राज्यों के एक समान हो। यह प्रावधान उन राज्यों पर लागू नहीं होता जिसकी जनसंख्या 60 लाख से कम है।

प्रत्येक जनगणना के पश्चात पुनः समायोजन

प्रत्येक जनगणना की समाप्ति पर लोकसभा में स्थानों का आबंटन और प्रत्येक राज्य के प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजन का समायोजन किया जाता है। संसद को यह अधिकार है कि वह किस प्राधिकारी द्वारा किस रीति से इनका पुनः समायोजन करे। इसी के तहत, संसद ने 1952, 1962, 1972 व 2002 में परिसीमन आयोग अधिनियम लागू किए।

अनुसूचित जाति व जनजातियों के लिए सीटों का आरक्षण

हालांकि संविधान में किसी धर्म विशेष के प्रतिनिधत्व पद्धति का त्याग किया गया है, लेकिन जनसंख्या अनुपात के आधार पर अनुसूचित जातियों व जनजातियों के लिए लोकसभा में सीटें आरक्षित की गई हैं। हालांकि अनुसूचित जातियों व जनजातियों के लिए सीटें आरक्षित की गई हैं लेकिन उनका निर्वाचन, निर्वाचन क्षेत्र के सभी मतदाताओं द्वारा किया जाता है। अनुसूचित जाति व जनजाति के सदस्यों को सामान्य निर्वाचन क्षेत्र से भी चुनाव लड़ने का अधिकार है।

दोनों सदनों की अवधि

राज्यसभा की अवधि

राज्यसभा (पहली बार 1952 में स्थापित) निरंतर चलने वाली संस्था है। यानी, यह एक स्थायी संस्था है और इसका विघटन नहीं होता किंतु इसके एक-तिहाई सदस्य हर दूसरे वर्ष सेवानिवृत्त होते हैं। ये सीटें चुनाव के द्वारा फिर भरी जाती हैं और राष्ट्रपति द्वारा हर तीसरे वर्ष के शुरुआत में मनोनयन होता है। सेवा निवृत्त होने वाले सदस्य कितनी बार भी चुनाव लड़ सकते हैं और मनोनीत हो सकते हैं।

लोकसभा की अवधि

राज्यसभा से अलग, लोकसभा जारी रहने वाली संस्था नहीं है। सामान्य तौर पर इसकी अवधि आम चुनाव के बाद हुई पहली बैठक से पांच वर्ष के लिए होती हैं, इसके बाद यह खुद विघटित हो जाती है। हालांकि राष्ट्रपति के पास पांच साल से पहले किसी भी समय इसे विघटित करने का अधिकार है।

इसके अलावा लोकसभा की अवधि आपात की स्थिति में एक बार में एक वर्ष तक बढ़ाई जा सकती है।

संसद की सदस्यता

योग्यताएं

संविधान ने संसद में चुने जाने के लिए निम्नलिखित अर्हता निर्धारित की हैं–

- उसे राज्यसभा में स्थान के लिए कम से कम 30 वर्ष आयु का और लोकसभा में स्थान के लिए कम से कम 25 वर्ष की आयु का होना चाहिए।
- उसे भारत का नागरिक होना चाहिए।
- उसे निर्वाचन आयोग द्वारा प्राधिकृत किसी व्यक्ति के समक्ष तीसरी अनुसूची मे दिए प्रारूप के अनुसार शपथ या प्रतिज्ञा लेना चाहिए।

जनप्रतिनिधित्व अधिनियम (1951) में संसद ने निम्नलिखित अन्य अर्हतायें निर्धारित की है।

- लोकसभा के लिए भारत के किसी भी निर्वाचन क्षेत्र का पंजीकृत मतदाता होना चाहिए।
- राज्यसभा के लिए उस व्यक्ति को, राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के उस निर्वाचन क्षेत्र का पंजीकृत मतदाता होना चाहिए।

अयोग्यतायें

संविधान के अनुसार कोई व्यक्ति संसद सदस्य नहीं बन सकता–

- यदि वह संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा अयोग्य कर दिया जाता है।
- यदि वह भारत सरकार या किसी राज्य सरकार के अधीन कोई लाभ का पद धारण करता है (संसद द्वारा तय कोई पद या मंत्री पद को छोड़कर)।
- यदि वह दिवालिया है।
- यदि वह भारत का नागरिक नहीं है या उसने किसी विदेशी राज्य की नागरिकता स्वेच्छा से अर्जित कर ली है।
- यदि वह विकृत चित्त है और न्यायालय ने ऐसी घोषणा की है।

संसद ने रिप्रजेंटेशन ऑफ पीपुल अधिनियम (1951) में निम्नलिखित अन्य अयोग्यताएं निर्धारित की हैं–

- यदि वह निर्धारित समय के अंदर चुनावी खर्च का ब्यौरा देने में असफल रहा हो।
- उसे किसी अपराध में दो वर्ष या उससे अधिक की सजा हुई हो।
- यदि वह चुनावी अपराध या चुनाव में भ्रष्ट आचरण के

तहत दोषी करार दिया गया हो।

दल-बदल के आधार पर अयोग्यता

संविधान के अनुसार किसी व्यक्ति को संसद की सदस्यता के अयोग्य ठहराया जा सकता है, अगर उसे दसवीं अनुसूची के प्रावधनों के अनुसार दल-बदल का दोषी पाया गया हो। सदस्यों को दल बदल कानून के निम्नलिखित प्रावधानों के तहत अयोग्य करार दिया जा सकता हैं-

- अगर निर्दलीय चुना गया सदस्य किसी राजनीतिक दल में शामिल हो जाता है।
- अगर वह स्वेच्छा से उस राजनीतिक दल का त्याग करता है, जिस दल के टिकट पर उसे चुना गया हो।
- अगर वह अपने राजनीतिक दल द्वारा दिए गये निर्देशों के विरुद्ध सदन में मतदान करता है या नहीं करता है।

स्थानों का रिक्त होना

निम्नलिखित स्थिति मे संसद सदस्य स्थान रिक्त करता है-

- **दोहरी सदस्यता:** कोई भी व्यक्ति एक समय में संसद के दोनों सदनों का सदस्य नहीं हो सकता।
  - अगर कोई व्यक्ति दो सीटों पर चुना जाता है, तो उसे स्वेच्छा से किसी एक सीट खाली करने का अधिकार है। अन्यथा, दोनों सीटें खाली हो जाती हैं।
  - यदि कोई व्यक्ति संसद के दोनों सदनों में चुन लिया जाता है तो उसे 10 दिनों के भीतर यह बताना होगा कि उसे किस सदन में रहना है। सूचना न देने पर, राज्यसभा में उसकी सीट खाली हो जाएगी।
  - अगर किसी सदन का सदस्य, दूसरे सदन का भी सदस्य चुन लिया जाता है तो पहले वाले सदन में उसका पद रिक्त हो जाता है।

  इसी प्रकार, कोई व्यक्ति एक ही समय संसद या राज्य के विधानमंडल के किसी सदन का सदस्य नहीं हो सकता।
- **अयोग्यता:** यदि कोई व्यक्ति संविधान में दिए किसी विनिर्दिष्ट अयोग्यता से ग्रस्त पाया जाता है, तो उसका स्थान रिक्त हो जाता है।
- **पदत्याग:** कोई सदस्य, यथा स्थिति, राज्यसभा के सभापति या लोकसभा के अध्यक्ष को संबोधित त्यागपत्र द्वारा अपना स्थान त्याग सकता है। त्यागपत्र स्वीकार होने पर उसका स्थान रिक्त हो जाता है।
- **अनुपस्थिति:** यदि कोई सदस्य सदन की अनुमति के बिना 60 दिन की अवधि से अधिक समय के लिए सदन के सभी अधिवेशनों में अनुपस्थित रहता है तो सदन उसका पद रिक्त घोषित कर सकता है।

शपथ या प्रतिज्ञान

संसद के प्रत्येक सदन का प्रत्येक सदस्य अपना स्थान ग्रहण करने से पूर्व राष्ट्रपति या उसके द्वारा इस कार्य के लिए नियुक्त व्यक्ति के समक्ष शपथ या प्रतिज्ञान लेता है और उस पर हस्ताक्षर करता है। शपथ या प्रतिज्ञान में संसद सदस्य प्रतिज्ञा करता है-

- वफादारी से कर्तव्य का पालन करेगा।
- भारत के संविधान में सच्ची आस्था व निष्ठा वहन करेगा।
- भारत की प्रभुता व अखंडता को बनाए रखेगा।

वेतन और भत्ते

संसद के दोनों सदनों के सदस्यों को संसद द्वारा निर्धारित वेतन व भत्ते लेने का अधिकार है। संविधान में इनके लिए पेंशन का कोई प्रावधान नहीं है लेकिन संसद अपने सदस्यों को पेंशन देती है।

संसद के पीठासीन अधिकारी

संसद के प्रत्येक सदन का अपना सभापति होता है। लोकसभा में अध्यक्ष व उपाध्यक्ष व राज्सभा में सभापति व उपसभापित होते हैं।

लोकसभा अध्यक्ष

पहली बैठक के पश्चात उपस्थित सदस्यों के मध्य से अध्यक्ष का चुनाव किया जाता है। जब अध्यक्ष का स्थान रिक्त होता है तो लोकसभा इस रिक्त स्थान के लिए किसी अन्य सदस्य को चुनती है। आमतौर पर अध्यक्ष लोकसभा के जीवनकाल पर्यत पद धारण करता है। हालांकि उसका पद निम्नलिखित रूप से इससे पहले भी समाप्त हो सकता है-

- यदि वह उपाध्यक्ष को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा पद त्याग करे।
- यदि वह सदन का सदस्य नहीं रहता।
- यदि लोकसभा के तत्कालीन समस्त सदस्य बहुमत से पारित संकल्प द्वारा उसे उसके पद से हटाएं। जब अध्यक्ष को हटाने के लिए संकल्प विचाराधीन है तो अध्यक्ष पीठासीन नहीं होगा किंतु उसे लोकसभा में बोलने और उसकी कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार होगा। यहां यह ध्यान देने योग्य बात है कि जब लोकसभा भंग होती है, अध्यक्ष अपना पद नहीं छोड़ता वह नई लोकसभा की बैठक तक पद धारण करता है।

अध्यक्ष की शक्तियां व कर्त्तव्य निम्नलिखित हैं-

- वह लोकसभा की सभी संसदीय समितियों के चेयरमैन की नियुक्ति करता है और उनके कार्यों का पर्यवेक्षण करता है।
- अध्यक्ष का यह कर्तव्य है कि गणपूर्ति (कोरम) के अभाव में सदन को स्थगित कर दे।
- सामान्य स्थिति में मत देने का अधिकार नहीं है परंतु बराबरी की स्थिति में वह मत दे सकता है।
- दसवीं अनुसूची के तहत दल-बदल विरोधी कानून के आधार पर अध्यक्ष लोकसभा के किसी सदस्य की अयोग्यता के प्रश्न का निपटारा करता है।
- अध्यक्ष, संसद के दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन में पीठासीन होगा।
- अध्यक्ष यह तय करता है कि विधेयक, धन विधेयक है या नहीं और उसका निर्णय अंतिम होता है।
- सदन के कामकाज व कार्यवाही के लिए वह नियम व कानून का निर्वहन करता है। यह उसका प्राथमिक कर्तव्य है। उसका निर्णय अंतिम होता है।

लोकसभा का उपाध्यक्ष

अध्यक्ष की तरह, उपाध्यक्ष भी लोकसभा द्वारा अपने सदस्यों द्वारा चुना जाता है। अध्यक्ष के चुने जाने के बाद उपाध्यक्ष को चुना जाता है।

अध्यक्ष की ही तरह, उपाध्यक्ष सदन के जीवनकाल पर्यंत अपना पद धारणा करता है। परंतु उसका पद निम्नलिखित रूप से इसके पहले भी समाप्त किया जा सकता है–

- अध्यक्ष को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा पद त्याग करने पर,
- लोकसभा के तत्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत से पारित संकल्प द्वारा उसे अपने पद से हटाए जाने पर।
- उसके सदन के सदस्य न रहने पर,

लोकसभा में उपसभासदों का पैनल

लोकसभा के नियमों के मुतबिक, अध्यक्ष पैनल के सदस्यों में से 10 उपसभासद चेयरपर्सन को नामांकित करता है। इनमें से कोई भी अध्यक्ष या उपाध्यक्ष की अनुपस्थिति में संसद का पीठासीन अधिकारी हो सकता है।

प्रो टेम अध्यक्ष

संविधान में व्यवस्था है कि पिछले लोकसभा के अध्यक्ष नई लोकसभा की पहली बैठक के ठीक पहले तक अपने पद पर रहता है। इसलिए राष्ट्रपति लोकसभा के एक सदस्य को प्रो टेम अध्यक्ष नियुक्त करता है। राष्ट्रपति खुद प्रो टेम अध्यक्ष को शपथ दिलाता है।

प्रो टेम अध्यक्ष को स्थायी अध्यक्ष के समान ही शक्तियां प्राप्त होती हैं। वह नई लोकसभा की पहली बैठक में पीठासीन अधिकारी होता है। उसका मुख्य कर्तव्य नए सदस्यों को शपथ दिलवाना है।

राज्यसभा का सभापति

राज्यसभा का पीठासीन अधिकारी सभापति कहलाता है। देश का उपराष्ट्रपति स्वाभाविक रूप में इसका सभापति होता है। राज्यसभा के सभापति को तब ही पद से हटाया जा सकता है जब उसे उपराष्ट्रपति पद से हटा दिया जाए। अध्यक्ष के विपरीत सभापति सदन का सदस्य नहीं होता है।

राज्यसभा का उपसभापति

राज्यसभा अपने सदस्यों के बीच से स्वयं अपना उपाध्यक्ष चुनती है। उपसभापति अपना पद निम्नलिखित में से किसी भी कारण से छोड़ता है-

- इस बात पर बल दिया जाना चाहिए कि उपसभापति सभापति के अधीन नहीं होता। यह राज्यसभा के प्रति सीधे उत्तरदायी होता है।
- यदि वह सभापति को अपना लिखित इस्तीफा सौंप दे।
- यदि राज्यसभा से उसकी सदस्यता समाप्त हो जाए।
- यदि राज्यसभा में बहुमत द्वारा उसको हटाने का प्रस्ताव पास हो जाए।

संसदीय सचिवालय

संसद के दोनों सदनों का पृथक सचिवालय स्टाफ होता है यद्यपि इनमें से कुछ पद दोनों सदनों के लिए समान हैं। उनकी भर्ती एवं सेवा शर्तें संसद द्वारा निर्धारित की जाती हैं। दोनों सदनों के सचिवालय का मुखिया महासचिव होता है।

संसद में नेता

सदन का नेता

लोकसभा के नियमों के तहत 'सदन का नेता' का अभिप्राय है प्रधानमंत्री। वह लोकसभा सदस्य है या मंत्री। जो लोकसभा सदस्य है, प्रधानमंत्री द्वारा 'सदन का नेता' के रूप में मनोनीत होता है। राज्य सभा में भी एक 'सदन का नेता' होता है। वह मंत्री होता है और राज्यसभा का सदस्य भी जिसे प्रधानमंत्री द्वारा मनोनीत किया जाता है।

विपक्ष का नेता

संसद के दोनों सदनों में एक-एक 'विपक्ष का नेता' होता

है। विपक्ष में सबसे बड़ी पार्टी के सदस्य कुल सदस्यों के दसवें हिस्से के करीब होने चाहिये। लोकसभा एवं राज्यसभा में विपक्ष के नेता को 1977 में महत्ता मिली। उसे वेतन, भत्ते तथा सुविधाएं कैबिनेट मंत्री की तरह मिलती हैं।

ब्रिटिश राजनीतिक व्यवस्था में एक अनोखी संस्था है जिसे 'शैडो कैबिनेट' (छाया मंत्रिमंडल) कहा जाता है। इसे विपक्षी दलों द्वारा सरकार के साथ तुलना के लिए बनाया जाता है और अपने सदस्यों को भविष्य के मंत्रियों के तौर पर तैयार किया जाता है।

व्हिप

हर राजनीतिक पार्टी का, चहे वह सत्ता में हो या विपक्ष में, संसद में अपना व्हिप होता है। उसे राजनीतिक दल द्वारा सदन के सहायक नेता के रूप में नियुक्त किया जाता है। उसकी जिम्मेदारी होती है कि वह अपने पार्टी के नेताओं को बड़ी संख्या में सदन में उपस्थित रखे और संबंधित मुद्दे के खिलाफ पार्टी का सहयोग करे।

संसद के सत्र

सम्मनिंग (सभा में उपस्थित होने का आदेश)

संसद के प्रत्येक सदन को राष्ट्रपति समय-समय पर समन जारी करता है, लेकिन संसद के दोनों सत्रों के बीच अधिकतम अंतराल 6 माह से ज्यादा नहीं होना चाहिए। सामान्यत: वर्ष में तीन सत्र होते हैं-

- बजट सत्र (फरवरी से मई)।
- मानसून सत्र (जुलाई से सितंबर)।
- शीतकालीन सत्र (नवंबर से दिसंबर)।

स्थगन

संसद के एक सत्र मे काफी बैठकें होती है। कार्यवाही अधिकारी संसद की एक बैठक को भंग या स्थगित कर सकता है। एक सत्र के अवसान एवं दूसरे सत्र के प्रारंभ होने के मध्य की समयावधि को 'अवकाश' कहते हैं।

भंग

कार्यवाही अधिकारी (अध्यक्ष या सभापति) सदन के कार्य समाप्त होने के बाद सदन को भंग कर सकता है।

एक स्थायी सदन होने के कारण राज्यसभा भंग नहीं की जा सकती। सिर्फ लोकसभा भंग होती है, भंग की प्रक्रिया सदन को समाप्त कर देती है और इसका पुनर्गठन एक चुनाव के बाद ही होता है।

जब लोकसभा भंग की जाती है तो इसके सारे कार्य जैसे- अध्यादेश, प्रस्ताव, नोटिस, याचिका आदि समाप्त हो जाते हैं। उन्हें नवगठित लोकसभा में दोबारा लाना जरूरी है। कुछ अध्यादेश समाप्त नहीं भी होते हैं।

गणपूर्ति (कोरम)

'कोरम' या गणपूर्ति सदस्यों की न्यूनतम संख्या है जिनकी उपस्थिति से सदन का कार्य संपादित होता है। यह प्रत्येक सदन में कार्यवाही अधिकारी समेत कुल सदस्यों का दसवां हिस्सा है।

सदन में मतदान

सभी मामलों पर सदन में या दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में उपस्थित सदस्यों के बहुमत से मामला पारित होता है। कुछ मामलों जैसे-राष्ट्रपति के खिलाफ महाभियोग, संविधान संशोधन कार्यवाही, अधिकारी को हटाना आदि में विशेष बहुमत की जरूरत होती है।

संसद में भाषा

संविधान ने हिंदी और अंग्रेजी भाषा को सदन की कार्यवाही की भाषा घोषित की है।

लेम-डक सत्र

यह नयी लोकसभा के गठन से पूर्व वर्तमान लोकसभा का अंतिम सत्र होता है। अर्थात् वर्तमान लोकसभा के अन्तिम सत्र तथा नयी लोक सभा के प्रथम सत्र के बीच का समय लेम-डक सत्र कहलाता है।

संसदीय कार्य की योजना

प्रश्नकाल

संसद का पहला घंटा प्रश्नकाल के लिए होता है। इस दौरान सदस्य प्रश्न पूछते हैं और सामान्यत: मंत्री जवाब देते हैं। प्रश्न तीन तरह के होते हैं- मौखिक, लिखित एवं अल्पसूचना वाले।

- मौखिक प्रश्न का मौखिक जवाब जरूरी होता है और एक पूरक प्रश्न इसका अनुसरण करता है। दूसरी तरह के प्रश्न पर लिखित उत्तर जरूरी होता है और अल्प सूचना प्रश्नों के लिए आवश्यक है कि दस दिन से कम दिन की सूचना न दी जाए।

शून्यकाल

प्रश्नकाल की तरह कार्यवाही के नियमों में शून्यकाल का उल्लेख नहीं है। इस तरह यह अनौपचारिक योजना है जो संसद सदस्यों को बिना पूर्व सूचना के उपलब्ध है। शून्यकाल प्रश्नकाल के तुरंत बाद शुरू होता है।

अविश्वास प्रस्ताव

संविधान का अनुच्छेद 75 में कहा गया है कि मंत्रिपरिषद लोकसभा के प्रति सामूहिक रूप से जिम्मेदार होंगी। इसका मतलब है कि मंत्रिपरिषद तभी तक है जब तक कि उसे सदन में बहुमत प्राप्त है। दूसरे शब्दों में, लोकसभा मंत्रिमंडल को अविश्वास प्रस्ताव पारित कर हटा सकती है। प्रस्ताव लाने के समर्थन में 50 सदस्यों की सहमति आवश्यक है।

धन्यवाद प्रस्ताव

प्रत्येक आम चुनाव के पहले सत्र एवं मौद्रिक वर्ष के पहले सत्र में राष्ट्रपति सदन को संबोधित करता है। अपने संबोधन में राष्ट्रपति सरकार की नीतियों एवं योजनाओं का खाका खींचता है। इस प्रस्ताव का सदन में पारित होना आवश्यक है। नहीं तो इसका तात्पर्य सरकार का पराजित होना है।

प्वाइंट ऑफ आर्डर

जब सदन संचालन के सामान्य नियमों का पालन नहीं करता तो एक सदस्य प्वाइंट आफ आर्डर के माध्यम से सदन का ध्यान आकर्षित कर सकता है। इसे सदन के विनियम से संबंधित होना चाहिये। यह ऑर्डर सामान्यता विपक्षी सदस्य द्वारा सरकार पर नियन्त्रण के लिए उठाया जाता है।

निंदा प्रस्ताव बनाम अविश्वास प्रस्ताव

निंदा प्रस्ताव	अविश्वास प्रस्ताव
• लोकसभा में इसे स्वीकारने का कारण बताना अनिवार्य है।	• लोकसभा में इसे स्वीकार करने का कारण बताना आवश्यक नहीं है।
• यह किसी एक मंत्री या मंत्रियों के समूह या पूरे	• यह सिर्फ पूरे मंत्रिपरिषद के विरुद्ध ही लाया जा मंत्रिपरिषद के विरुद्ध लाया जा सकता है। सकता है।
• यह मंत्रिपरिषद की कुछ नीतियों या कार्य के खिलाफ लाया जाता है।	• यह लोकसभा में मंत्रिपरिषद के प्रति विश्वास का पता लगाता है।
• यदि यह लोकसभा में पारित हो जाए तो मंत्रिपरिषद का आवश्यक नहीं है।	• यदि यह लोकसभा में पारित हो जाए तो मंत्रिपरिषद त्यागपत्र देना को त्यागपत्र देना ही पड़ता है।

आधे घंटे की बहस

इसका मतलब है कि पर्याप्त सार्वजनिक महत्व के मामलों आदि पर बहस हो। अध्यक्ष ऐसी बहस के लिए सप्ताह में तीन दिन निर्धारित करता है। इसके लिए सदन के बाहर कोई औपचारिक प्रस्ताव के लिए मतदान नहीं होता।

अल्पकालिक बहस

इसे दो घंटे का बहस भी कहते हैं क्योंकि इस तरह की बहस के लिए दो घंटे से अधिक का समय नहीं लगता। संसद सदस्य किसी जरूरी सार्वजनिक महत्व के मामले को बहस के लिए रख सकते हैं।

संसद में विधायी प्रक्रिया

विधायी प्रक्रिया संसद के दोनों सदनों में संपन्न होती है। प्रत्येक सदन में हर विधेयक समान स्तर पर पारित होता है। संसद में पेश होने वाले विधेयक दो तरह के होते हैं– सार्वजनिक विधेयक एवं निजी विधेयक। संसद में प्रस्तुत विधेयकों को निम्न चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

- **साधारण विधेयक :** वित्तीय विषयों के अलावा अन्य सभी विषयों से संबद्ध विधेयक साधारण विधेयक कहलाते हैं।
- **धन विधेयक :** ये विधेयक वित्तीय विषयों यथा–करारोपण, लोक व्यय इत्यादि से संबंधित होते हैं।
- **वित्त विधेयक :** ये विधेयक भी वित्तीय विषयों से ही संबंधित होते हैं।
- **संविधान संशोधन विधेयक :** ये विधेयक संविधान के प्रावधानों में संशोधन से संबंधित होते हैं।

साधारण विधेयक

- **प्रथम वाचनः** साधारण विधेयक संसद के किसी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है। यह विधेयक मंत्री या सदस्य किसी के द्वारा भी प्रस्तुत किया जा सकता है। जब कोई सदस्य सदन में यह विधेयक प्रस्तुत करना चाहता है तो पहले सदन को इसकी अग्रिम सूचना देनी पड़ती है। विधेयक का प्रस्तुतीकरण एवं उसका राजपत्र में प्रकाशित होना ही प्रथम वाचन कहलाते हैं।
- **द्वितीय वाचनः** इस चरण में प्रवर समिति द्वारा विधेयक की समीक्षा की जाती है। इस चरण में विधेयक को अंतिम रूप प्रदान किया जाता है। विधेयक के प्रस्तुतिकरण की दृष्टि से यह सबसे महत्वपूर्ण चरण है। वास्तव में इस चरण के तीन उप-चरण होते हैं, जिनके नाम हैं– साधारण बहस की अवस्था, प्रवर समिति द्वारा जांच एवं विचारणीय अवस्था।
  - **साधारण बहस की अवस्थाः** विधेयक की प्रिंटेड

प्रतियां सभी सदस्यों के बीच वितरित कर दी जाती हैं। सामान्यता: विधेयक के सिद्धांत एवं प्रावधानों पर चर्चा होती है। लेकिन विधेयक पर विस्तार से विचार-विमर्श नहीं किया जाता है।

- **समिति की अवस्था:** सामान्यता: विधेयक को सदन की एक समिति को सौंप दिया जाता है। यह समिति विस्तारपूर्वक विधेयक के समस्त प्रावधानों पर विचार करती है लेकिन वह इसके मूल विषय में परिवर्तन नहीं करती। समीक्षा एवं परिचर्चा के उपरांत समिति विधेयक को वापस सदन को सौंप देती है।
- **विचार-विमर्श की अवस्था:** समिति से विधेयक प्राप्त होने के उपरांत सदन द्वारा भी विधेयक के समस्त प्रावधानों की समीक्षा की जाती है। विधेयक के प्रत्येक प्रावधान पर पृथक-पृथक रूप से चर्चा एवं मतदान होता है। इस अवस्था में सदस्य संशोधन भी प्रस्तुत कर सकते हैं, और यदि संशोधन स्वीकार हो जाते हैं तो वे विधेयक का हिस्सा बन जाते हैं।

- **तृतीय वाचन:** इस चरण में केवल विधेयक को स्वीकार या अस्वीकार करने के संबंध में चर्चा होती है तथा विधेयक में कोई संशोधन नहीं किया जा सकता है। यदि सदन का बहुमत इसे पारित कर देता है तो विधेयक पारित हो जाता है।
- **दूसरे सदन में विधेयक:** एक सदन से पारित होने के उपरांत दूसरे सदन में भी विधेयक का प्रथम-द्वितीय एवं तृतीय वाचन होता है। इस संबंध में दूसरे सदन के समक्ष निम्न चार विकल्प होते हैं–
  - यह विधेयक पर किसी भी प्रकार की कार्यवाही न करके उसे लंबित रख सकता है।
  - यह विधेयक को बिना संशोधन किये पारित करके प्रथम सदन को विचारार्थ भेज सकता है।
  - यह विधेयक को पारित कर प्रथम सदन को भेज सकता है।
  - यह विधेयक को अस्वीकार कर सकता है।
- **राष्ट्रपति की स्वीकृति:** संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिये भेजा जाता है। इस समय राष्ट्रपति के समक्ष तीन प्रकार के विकल्प होते हैं–
  - वह पुनर्विचार हेतु विधेयक को सदन को वापस लौटा सकता है।
  - वह विधेयक को स्वीकृति दे सकता है,
  - वह विधेयक को रोक सकता है, या
- यदि राष्ट्रपति विधेयक को स्वीकृति दे देता है तो यह कानून बन जाता है किंतु यदि राष्ट्रपति इसे अस्वीकार कर देता है तो यह निरस्त या समाप्त हो जाता है। यदि राष्ट्रपति विधेयक को पुनर्विचार हेतु सदन को वापस भेजता है और सदन संशोधन करके या बिना संशोधन किये उसे राष्ट्रपति के पास दोबारा भेजता है तो राष्ट्रपति इस पर सहमति देने हेतु बाध्य होता है।

धन विधेयक

संविधान के अनुच्छेद 110 में धन विधेयक की चर्चा की गयी है। इसके अनुसार कोई विधेयक तब धन विधेयक माना जायेगा, जब उसमें निम्न वर्णित में से एक या अधिक या समस्त प्रावधान होंगे–

- इनमें से संबंधित किसी विषय पर आकस्मिक विचार।
- केन्द्रीय सरकार द्वारा उधार लिये गये धन का विनियमन।
- भारत की संचित निधि या आकस्मिकता निधि का अधीक्षण, इन निधियों से किसी प्रकार के धन का आहरण या निकासी।
- भारत की संचित निधि पर भारित किसी व्यय की उद्घोषणा या इस प्रकार के किसी व्यय की राशि में वृद्धि।
- भारत की संचित निधि से धन का विनियमन।
- भारत की संचित निधि या सार्वजनिक लेखों में किसी प्रकार के धन की प्राप्ति या अधीक्षण या इनसे व्यय या इनका केन्द्र या राज्य की निधियों का लेखा परीक्षण, या
- किसी कर का आरोपण, संग्रहण, परिवर्तन या समाप्ति।

यद्यपि कोई विधेयक निम्न कारणों से धन विधेयक नहीं माना जायेगा–

- किसी स्थानीय निकास द्वारा स्थानीय प्रायोजनों हेतु किसी कर का आरोपण, संग्रहण, परिवर्तन या निरस्तीकरण। धन विधेयक के संबंध में लोकसभा के अध्यक्ष का निर्णय अंतिम निर्णय होता है।
- अनुज्ञप्ति (लाइसेंस) के शुल्क हेतु अनुदान।
- किसी प्रकार का अर्थदंड या जुर्माना।

साधारण विधेयक बनाम धन विधेयक

साधारण विधेयक	धन विधेयक
• इसे लोकसभा या राज्यसभा में कहीं भी पेश किया जा सकता है।	• इसे सिर्फ लोकसभा में पेश किया जा सकता है।
• इसे या तो मंत्री द्वारा या निजी सदस्य द्वारा पेश किया जा सकता है	• इसे सिर्फ मंत्री द्वारा पेश किया जा सकता सकता है।
• यह बिना राष्ट्रपति की संस्तुति के पेश होता है।	• इसे सिर्फ राष्ट्रपति की संस्तुति से ही पेश किया जा सकता है।
• इसे राज्यसभा द्वारा संशोधित या अस्वीकृत किया जा सकता है।	• इसमें राज्यसभा कोई संशोधन या अस्वीकृति नहीं कर सकती है।
• इसे राज्यसभा अधिकतम छह माह के लिए रोक सकती है।	• इसे राज्यसभा अधिकतम 14 दिन के लिए नहीं कर सकती है।
• इसे राज्यसभा में भेजने के लिए अध्यक्ष की अनुमति की जरूरत नहीं होती।	• इसे अनुमति की जरूरत होती है।
• इसे दोनों सदनों से पारित होने के बाद राष्ट्रपति की मंजूरी जाता है। असहमति की अवस्था में राष्ट्रपति बुला सकता है।	• इसे सिर्फ लोकसभा से पारित होने के बाद के लिए भेजा राष्ट्रपति की मंजूरी के लिए भेजा जाता है। संयुक्त बैठक इसमें दोनों सदनों के बीच अहसमति का कोई अवसर ही नहीं होता।
• इसके लोकसभा में अस्वीकृत होने पर सरकार को त्यागपत्र सकता है। (यदि इसे मंत्री ने पेश किया हो)।	• इसके लोकसभा में अस्वीकृत होने पर सरकार देना पड़ को त्यागपत्र देना पड़ता है।
• इसे अस्वीकृत, पारित या राष्ट्रपति द्वारा पुनर्विचार के लिए भेजा सकता है।	• इसे अस्वीकृत या पारित तो किया जा सकता जा है, लेकिन राष्ट्रपति द्वारा लौटाया नहीं जा सकता है।

वित्त विधेयक

साधारणतया वित्त विधेयक, उस विधेयक को कहते हैं, जो आय-व्यय से संबंधित होता है। इसमें आगामी वित्तीय वर्ष में किसी नये प्रकार के कर लगाने या कर में संशोधन आदि से संबंधित विषय शामिल होते हैं। वित्त विधेयक निम्न तीन प्रकार के होते हैं-

- धन विधेयक - अनुच्छेद 110
- वित्त विधेयक (I) - अनुच्छेद 117(1)
- वित्त विधेयक (II) - अनुच्छेद 117 (3)

इस वर्गीकरण के अनुसार, सभी धन विधेयक, वित्त विधेयकों की श्रेणी में आते हैं। यद्यपि सभी धन विधेयक, वित्त विधेयक होते हैं। किंतु सभी वित्त विधेयक धन विधेयक नहीं होते हैं। केवल वे वित्त विधेयक ही धन विधेयक होते हैं, जिनका उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 110 में किया गया है। धन विधेयक को लोकसभाध्यक्ष द्वारा ही परिभाषित किया जाता है। वित्त विधेयक-I तथा II की चर्चा संविधान के अनुच्छेद 117 में की गयी है।

दोनों सदनों की संयुक्त बैठक

किसी विधेयक पर अवरोध की स्थिति में संविधान द्वारा संयुक्त बैठक की एक असाधारण व्यवस्था की गई हैं। यह निम्नलिखित तीन में से किसी एक परिस्थिति के समय बुलाई जाती हैं-

- यदि विधेयक को दूसरे सदन द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया।
- यदि सदन विधेयक में किए गए संशोधनों को मानने से असहमत हो।
- दूसरे सदन द्वारा बिना विधेयक को पास किए 6 महीने से ज्यादा समय हो जाए।

उपरोक्त तीन परिस्थितियों में विधेयक को निपटाने और इस पर मत देने के लिए राष्ट्रपति दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलाता है। उल्लेखनीय है कि संयुक्त बैठक साधारण विधेयक या वित्त विधेयक पर ही लागू है।

संसद में बजट

संविधान में बजट को 'वार्षिक वित्तीय विवरण' कहा गया है। दूसरे शब्दों में, 'बजट' शब्द का संविधान में कही उल्लेख नहीं है। 'वार्षिक वित्तीय विवरण' का उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 112 में किया गया है। भारत सरकार के दो बजट होते हैं, रेल बजट और आम बजट। रेल बजट को आम बजट से एकवोर्थ कमेटी की सिफारिश पर 1921 में अलग किया गया।

संवैधानिक व्यवस्था

बजट के क्रियान्वयन को लेकर निम्नलिखित व्यवस्थाएं संविधान में उल्लिखित हैं-

- राजस्व पर बजट का खर्च अन्य खर्चों के मामले में अलग होगा।
- बिना राष्ट्रपति की संस्तुति के कोई अनुदान की मांग नहीं की जाएगी।
- उचित विधि के बिना निश्चित निधि से कोई धन नहीं निकाला जाएगा।
- राष्ट्रपति इसे हर वित्त वर्ष में संसद के दोनों सदनों में पेश करेगा।
- संसद किसी कर को कम या समाप्त कर सकती है लेकिन इसे बढ़ा नहीं सकती।
- बिना राष्ट्रपति के संस्तुति के कर निर्धारण वाला कोई विधेयक संसद में पेश नहीं होगा। इस तरह के किसी विधेयक को राज्यसभा में पेश नहीं किया जाएगा।
- खर्च के अनुमान को संचित निधि के संदर्भ में स्पष्ट किया जाना चाहिए।

पारित होने की प्रक्रिया

बजट संसद में निम्नलिखित 6 स्तरों से गुजरता है-

- संबंधित विधेयक का पारित होना।
- वित्त विधेयक का पारित होना।
- बजट का प्रस्तुतिकरण।
- आम बहस।
- विभागीय समितियों द्वारा जांच।
- अनुदान की जांच पर मतदान।

निधियां (फंड्स)

भारत का संविधान केंद्र सरकार के लिए निम्नलिखित तीन प्रकार की निधियों की व्यवस्था करता है-

- **भारत की संचित निधि:** यह एक ऐसी निधि है जिसमें सभी प्रकार के भुगतान की पावती एवं धनराशि जमा होती है। (अ) सभी राजस्व भारत सरकार द्वारा स्वीकारे जाते हैं, (ब) सभी प्रकार के लोन सरकार द्वारा जारी किए जाते है, (स) लोन के भुगतान के संबंध में सभी धन संचित निधि से सरकार द्वारा लिया जाता है। सभी विधि सम्मत भुगतान भारत सरकार द्वारा संचित निधि से किया जाता है।
- **भारत का सार्वजनिक लेखा:** सभी अन्य सार्वजनिक धन (भारत की संचित निधि में जमा के अलावा) भारत सरकार या उसके लिए भारत के सार्वजनिक लेखा में जमा होता है। इसमें भविष्य निधि जमा, न्यायिक जमा, बचत बैंक जमा, विभागीय जमा आदि शामिल हैं। इस खाते को कार्यकारी क्रिया द्वारा नियंत्रित किया जाता है।
- **भारत की आकस्मिकता निधि:** संविधान संसद को 'भारत की आकस्मिक निधि' के गठन की अनुमति देता है। संसद द्वारा 'भारत की आकस्मिक निधि' अधिनियम 1950 से शुरू हुआ। निधि को वित्त सचिव की ओर से राष्ट्रपति द्वारा रखा जाता है। भारत के सार्वजनिक लेखा की तरह इसे विशेष क्रिया से संचालित किया जाता है।

राज्यसभा की स्थिति

राज्यसभा की स्थिति का तीन कोणों से अध्ययन किया जा सकता है-

लोकसभा के साथ समान स्थिति

निम्नलिखित मामलों में राज्यसभा की शक्तियां एवं स्थिति लोकसभा के समान होती है।

- संवैधानिक इकाईयों जैसे- वित्त आयोग, संघ लोक सेवा आयोग, लेखा महानियंत्रक आदि की रिपोर्ट को स्वीकारना।
- उच्चतम न्यायालय एवं संघ लोक सेवा आयोग के न्याय क्षेत्र में विस्तार।
- राष्ट्रपति का निर्वाचन एवं महाभियोग।
- राज्यसभा उपराष्ट्रपति को अकेले हटाने की पहल कर सकती है।
- राष्ट्रपति से उच्चतम एवं उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों, मुख्य निर्वाचन आयुक्त एवं लेखा महानियंत्रक को हटाने की सिफारिश।

- राष्ट्रपति द्वारा जारी विधेयकों की संस्तुति।
- राष्ट्रपति द्वारा घोषित तीनों प्रकार के आपातकाल की संस्तुति।
- प्रधानमंत्री सहित मंत्रियों का चयन। संविधान के मुताबिक प्रधानमंत्री सहित सभी मंत्री दोनों से किसी एक के सदस्य होने चाहिए हालांकि वे लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं।
- सामान्य विधेयकों की प्रस्तुति एवं उसका अंश।
- संवैधानिक संशोधन विधेयकों की प्रस्तुति एवं उसका अंश।
- वित्तीय विधेयकों की प्रस्तुति जिनमें शामिल हैं संचित निधि से खर्च।

लोकसभा के साथ असमान स्थिति

निम्नलिखित मामलों में राज्यसभा की शक्तियां एवं स्थिति लोकसभा से असमान हैं-

- राष्ट्रीय आपातकाल समाप्त करने का प्रस्ताव लोकसभा द्वारा ही पारित कराया जा सकता है।
- राज्यसभा अविश्वास प्रस्ताव पारित कर मंत्रिपरिषद को नही हटा सकती। ऐसा इसलिए क्योंकि मंत्रिपरिषद की सामूहिक जिम्मेदारी लोकसभा के प्रति है। लेकिन राज्यसभा सरकार की नीतियों एवं कार्यों की आलोचना कर सकती है।
- लोकसभा, राज्यसभा की सिफारिशें को स्वीकार या अस्वीकार कर सकती है। दोनों मामलों में इसे दोनों सदनों द्वारा स्वीकृत माना जाएगा।
- वित्त विधेयक अकेले अनुच्छेद 110 का मामला नहीं है। इसे सिर्फ लोकसभा में पेश किया जा सकता है लेकिन इसके संदर्भो के मामलों में दोनों की शक्तियां समान हैं।
- कोई विधेयक धन विधेयक है या नहीं, इसे बताने की अंतिम शक्ति लोकसभा अध्यक्ष के पास है।
- दोनों सदनों की संयुक्त बैठक की कमान लोकसभा अध्यक्ष के पास होती है।
- संयुक्त बैठक में लोकसभा ज्यादा संख्या से जीतती है सिवा इसके कि सत्तारूढ़ पार्टी के सदस्यों की संख्या दोनों सदनों में विपक्ष से कम हो।
- राज्यसभा सिर्फ बजट पर बहस कर सकती है, उसके अनुदानों पर वोट नहीं।
- धन विधेयक को सिर्फ लोकसभा में पेश किया जा सकता है राज्यसभा में नहीं।
- राज्यसभा धन विधेयक को अस्वीकृत या संशोधित नहीं कर सकती। उसे इस विधेयक को संस्तुति या बिना संस्तुति के 14 दिन के भीतर लोकसभा को लौटाना होता है।

राज्यसभा की विशेष शक्तियां

संघीय चरित्र होने के कारण राज्यसभा को दो विशेष शक्तियां प्रदान की गई हैं जो लोकसभा के पास नहीं है।

यद्यपि राज्यसभा को लोकसभा की तुलना में कम शक्तियां दी गई हैं लेकिन इसकी उपयोगिता निम्नलिखित आधारों पर हैं-

- यह उन अनुभवी एवं पेशेगत लोगों को प्रतिनिधित्व देती है जो सीधे चुनाव का सामना नहीं कर सकते। राष्ट्रपति 12 ऐसे लोागों को राज्यसभा के लिए मनोनीत करता है।
- यह राज्यों के खिलाफ केंद्र के अनावश्यक हस्तक्षेप पर राज्यहित में विरोध कर संघीय व्यवस्था को बरकरार रखती है।
- यह लोकसभा द्वारा बनाई गई अप्रभावी, लापरवाह एवं कमजोर वैधानिक प्रक्रिया की जांच दोहराने एवं उस पर गहन विचार कर उसमें संशोधन करती है या फिर सिफारिश करती है।
- यह संसद को राज्यसूची (अनुच्छेद 249) में से कानून बनाने को अधिकृत कर सकती है।
- यह संसद को केंद्र एवं राज्य दोनों के लिए अखिल भारतीय सेवा आयोग बनाने को अधिकृत कर सकती है (अनुच्छेद 312)।

संसद की समितियां

व्यापक रूप से संसदीय समितियां दो प्रकार की होती हैं। स्थायी समिति एवं अस्थायी समिति।

सार्वजनिक लेखा समिति

इस समिति को सबसे पहले 1921 में भारत सरकार अधिनियम 1919 के तहत स्थापित किया गया और तब से यह जारी है। इस समय इसमें 22 सदस्य (15 लोकसभा से एवं 7 राज्यसभा से) किसी मंत्री को इसका सदस्य नहीं चुना जा सकता। समिति के अध्यक्ष का चुनाव लोकसभा अध्यक्ष करता है। 1966-67 तक समिति का अध्यक्ष सत्तारूढ़ दल से होता था। 1967 से विपक्षी दल से इसका अध्यक्ष चुना जाता है। समिति का कार्य नियंत्रक एवं महालेख परीक्षक (CAG) की वार्षिक रिपोर्ट की जांच करना है। विस्तार रूप से कमेटी के कार्य निम्नलिखित हैं-

- संघ सरकार के मुख्य खातों एवं वित्त खातों का परीक्षण। मुख्य खातों में संसद के खर्चों का भी परीक्षण किया जाता है।
- राज्य परिषदों, व्यापार एवं निर्माण परियोजना के लेखों की जांच।
- स्वायत्त एवं अल्प स्वायत्त इकाइयों के लेखों की जांच।

- प्रत्येक वित्त वर्ष में खर्च धन का परीक्षण।

आंकलन समिति

इस समिति का उद्‌भव 1921 में हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पहली अनुमानित समिति तत्कालीन वित्त मंत्री जॉन मथाई की सिफारिश पर 1950 में गठित की गई। 1956 में सदस्य संख्या 30 कर दी गई। सभी सदस्य लोकसभा से होते है। समिति का कार्य बजट सहित सार्वजनिक खर्चो का अनुमान लगाना है। समिति के कार्य विस्तार से इस प्रकार हैं-

- संसद में पेश किए जाने वाले अनुमानों का प्रारूप सुझाना।
- आर्थिक, संगठनों में सुधार और प्रशासिनक सुधार का प्रभाव आदि पर रिपोर्ट करना।
- नीति संबंधी सुझाए गए मामलों का परीक्षण करना।
- अर्थव्यवस्था में प्रशासनिक महत्ता के संबंध में वैकल्पिक नीतियों का सुझाना।

सार्वजनिक उपक्रमों पर समिति

यह समितिः कृष्ण मेनन समिति के सुझाव पर 1964 में बनाई गई। मूलतः इसमें 15 सदस्य (10 लोकसभा से और 5 राज्यसभा से) थे। 1974 में इनकी संख्या 22 (15 लोकसभा से और 7 राज्यसभा से) कर दी गई।

- सार्वजनिक लेखा समिति से संबंधित अन्य कार्य जिसे लोकसभा अध्यक्ष द्वारा समय-समय पर उन्हें उपलब्ध कराया जाए।
- सार्वजनिक उपक्रमों पर कैग की रिपोर्ट का परीक्षण।
- सार्वजनिक उपक्रमों का व्यवसाय के सिद्धांतों एवं वाणिज्य प्रयोग के तहत काम का परीक्षण।
- सार्वजनिक उपक्रमों के लेखा एवं रिपोर्ट का परीक्षण।

विभागीय स्थायी समितियां

1993 में 17 विभागीय मूलतः वित्तीय नियंत्रण से संबंधित कार्यकारी समितियां बनाई गईं। इन समितियों के न्यायक्षेत्र में सभी मंत्रालय एवं विभाग आते हैं। प्रत्येक स्थायी समिति में 45 सदस्य (30 लोकसभा से 15 राज्यसभा से) होते हैं। लोकसभा से सदस्यों को अध्यक्ष एवं राज्यसभा से सभापति मनोनीत करते हैं। 11 समितियों के अध्यक्षों को लोकसभा अध्यक्ष द्वारा एवं बाकी 6 समितियों के अध्यक्षों को सभापति द्वारा मनोनीत किया जाता है।

अधीनस्थ विधानों पर समिति

यह सदन की रिपोर्ट, शक्तियों एवं कार्य नियमों, उपनियम, संसद द्वारा प्रतिनिधित्व एवं उसके संविधान सम्मत कार्यों का परीक्षण करती है। दोनों सदनों में समिति के 15 सदस्य होते हैं। इसका गठन 1953 में हुआ।

संसदीय विशेषाधिकार

- यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि संसदीय अधिकार राष्ट्रपति के लिए नहीं बनाये गए हैं जो संसद का एक अंतरिम भाग भी है।
- संसदीय विशेषाधिकार वे विशेष अधिकार हैं, जो स्वतंत्रतापूर्ण और नियंत्रण मुक्त हैं। ये संसद के दोनों सदनों, उनके कमेटियों तथा उनके सदस्यों को प्राप्त हैं। इनमें भारत के महान्यायवादी तथा केंद्रीय मंत्री शामिल हैं।

वर्गीकरण

संसदीय विशेषाधिकारों को दो वर्गों में वर्गीकृत कर सकते हैं।

- वे जो व्यक्तिगत रूप से सदस्य हों।
- वे जो संयुक्त रूप से संसद के प्रत्येक सदन का लाभ लेते हो।

सामूहिक विशेषाधिकार

- इसे अपनी रिपोर्ट, तर्क को प्रकाशित करने तथा आगे बढ़ाने का अधिकार है तथा अन्य द्वारा इसके प्रकाशन को निषेध करने का भी अधिकार है।
- यह अपनी कार्यवाही से अतिथियों को बाहर कर सकती है।
- यह अपनी कार्यवाही के संचालन, कार्य के प्रबंध तथा इन मामलों के निर्णय हेतु नियम बना सकती है।
- सदन क्षेत्र में अध्यक्ष की अनुमति के बिना कोई व्यक्ति (सदस्य या बाहरी व्यक्ति) बंदी नहीं बनाया जा सकता।
- यह सदस्यों के साथ-साथ बाहरी लोगों को इसके अधिकारों के नियम भंग करने या इसका अपमान करने पर निंदित, चेतावनी या कारावास द्वारा दंड दे सकती है।
- न्यायालय, सदन या इसकी कमेटी की कार्यवाही की जांच के लिए निषेधित है।
- यह अन्वेषण (पूछताछ) गठित कर सकता है तथा गवाह की उपस्थिति तथा संबंधित पेपर तथा रिकॉर्ड के लिए आदेश दे सकता है।

व्यक्तिगत अधिकार

- वे न्यायिक सेवा से मुक्त हैं। वे संसद के सत्र में किसी न्यायालय में लंबित मुकदमे में प्रमाण प्रस्तुत करने या उपस्थित होने के लिए मना कर सकते हैं।
- उन्हें संसद में भाषण देने की स्वतंत्रता है।
- उन्हें संसद की कार्यवाही के दौरान, कार्यवाही चलने से 40 दिन पूर्व तथा बंद होने के 40 दिन बाद तक बंदी नहीं बनाया जा सकता है।

परिषद के मामले में 30 वर्ष से कम उसकी आयु नहीं होनी चाहिए।

- संसद द्वारा निर्धारित अन्य योग्यताएं भी उसमें होनी चाहिए।
- विधानसभा सदस्य बनने वाला व्यक्ति संबंधित राज्य के निर्वाचन क्षेत्र में भी होना चाहिए।

अयोग्यताएं

राज्य विधानमण्डल के सदस्य बनने पर संविधान के तहत उस व्यक्ति को निम्नलिखित कारणों से अयोग्य घोषित किया जा सकता है-

- संसद द्वारा निर्मित किसी कानून के तहत उसे अयोग्य करार दिया गया हो।
- यदि वह केंद्र या राज्य सरकार के तहत किसी लाभ के पद पर है।
- यदि उसे कानूनी तौर पर पागल घोषित किया गया हो।
- यदि वह दिवालिया हो।

दल-बदल के आधार पर अयोग्यता

राज्य विधानमंडल के सदस्य को संविधान में 10वीं अनुसूची में दल-बदल के कारण उसे अयोग्य ठहराने की व्यवस्था है। 10वीं अनुसूची के तहत यदि अयोग्यता का मामला उठे तो विधानपरिषद के मामले में सभापति एवं विधानसभा के मामले में अध्यक्ष (राज्यपाल नहीं) फैसला करेगा।

स्थानों का रिक्त होना

निम्नलिखित मामलों में विधानमंडल सदस्य का पद रिक्त हो जाता है –

- **दोहरी सदस्यता:** एक व्यक्ति एक समय में विधानमंडल के दोनों सदनों का सदस्य नहीं हो सकता।
- **अयोग्यता:** राज्य विधानमंडल का कोई सदस्य यदि अयोग्य पाया जाता है, तो उसका पद खाली हो जाएगा।
- **त्यागपत्र:** कोई सदस्य अपना लिखित इस्तीफा विधान परिषद के मामले में सभापति और विधानसभा के मामले में अ ध्यक्ष को दे सकता है। त्यागपत्र स्वीकार होने पर उसका पद रिक्त हो जाएगा।
- **अनुपस्थिति:** यदि कोई सदस्य बिना पूर्व अनुमति के 60 दिन तक बैठकों से अनुपस्थित रहता है तो सदन उसके पद को रिक्त घोषित कर सकता हैं।
- **अन्य मामले:** किसी सदस्य का पद रिक्त हो सकता है–
  - यदि वह किसी राज्य का राज्यपाल निर्वाचित हो जाए।
  - यदि उसे सदन से निकाल दिया जाए।
  - यदि वह राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के पद पर निर्वाचित हो जाए और।
  - यदि न्यायालय द्वारा उसके निर्वाचन को अमान्य ठहरा दिया जाए।

विधानमंडल के पीठासीन अधिकारी

राज्य विधानमंडल के प्रत्येक सदन का अपना पीठासीन अधिकारी होता है। विधानसभा के लिए अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष और विधानपरिषद के लिए सभापति एवं उप सभापति होता है।

विधानसभा अध्यक्ष

विधानसभा के सदस्य अपने सदस्यों के बीच से ही अध्यक्ष का निर्वाचन करते हैं। सामान्यत: विधानसभा के कार्यकाल तक अध्यक्ष पदासीन रहता है। हालांकि समय से पूर्व भी वह निम्नलिखित मामलों में अपना पद छोड़ सकता है–

- यदि विधानसभा के तत्कालीन सदस्यों द्वारा प्रस्ताव पास कर उसे हटा दिया जाए।
- यदि उसकी विधानसभा सदस्यता समाप्त हो जाए।
- यदि वह उपाध्यक्ष को अपना त्यागपत्र दे दे और।

अध्यक्ष की निम्नलिखित शक्तियां एवं कार्य होते हैं-

- प्रथम मामले में वह मत नहीं देता लेकिन बराबर मत होने की स्थिति में वह फैसला देने के लिए ऐसा कर सकता है।
- सदन के नेताओं के आग्रह पर वह विशेष बैठक को अनुमति प्रदान कर सकता है।
- वह इस बात का निर्णय कर सकता है कि कोई विधेयक धन विधेयक है या नहीं। इस प्रश्न पर उसका निर्णय अंतिम होगा।
- दसवीं अनुसूची के आधार पर किसी सदस्य की अयोग्यता को लेकर उठे किसी विवाद पर वह फैसला दे सकता है।
- कार्यवाही एवं अन्य कार्यों को सुनिश्चि करने के लिए वह व्यवस्था एवं शिष्टाचार बनाए रखता है।
- कोरम के पूरा न होने पर वह विधानसभा की बैठक को स्थगित या निलंबित कर सकता है।

विधानसभा उपाध्यक्ष

अध्यक्ष की तरह ही विधानसभा के सदस्य उपाध्यक्ष का चुनाव भी अपने बीच से ही करते हैं। अध्यक्ष की ही तरह उपाध्यक्ष भी विधानसभा के कार्यकाल तक पद पर बने रहता है, हालांकि समय से पूर्व भी निम्नलिखित तीन मामलों में पद रिक्त हो सकता है–

- यदि विधानसभा सदस्य बहुमत के आधार पर उसे हटाने का प्रस्ताव पास करे दे।
- यदि उसकी विधानसभा सदस्यता समाप्त हो जाए।
- यदि वह अध्यक्ष को इस्तीफा लिख दे और

विधान परिषद का सभापति

विधान परिषद के सदस्य अपने बीच से ही सभापति को चुनते हैं। सभापति का पद निम्नलिखित तीन मामलों में रिक्त हो सकता हैं :–

- यदि विधानपरिषद में उपस्थित तत्कालीन सदस्य बहुमत से उसे हटाने का प्रस्ताव पास कर दें।
- यदि परिषद से उसकी सदस्यता समाप्त हो जाय।

यदि वह उप सभापति को लिखित इस्तीफा दे दे, और

विधान परिषद का उपसभापति

सभापति की तरह ही उप सभापति को भी परिषद के सदस्य अपने बीच से चुनते हैं। उप सभापति का पद निम्नलिखित तीन मामलों में रिक्त हो सकता हैं–

- यदि परिषद के तत्कालीन सदस्य बहुमत से उसके खिलाफ प्रस्ताव पास करे दें।
- यदि वह सभापति को इस्तीफा दे दे, और।
- यदि परिषद के सदस्य उसे हटा दें।

राज्य विधानमंडल का सत्र

सत्र (बैठक) के लिए बुलावा

राज्य विधानमंडल के प्रत्येक सदन को राज्यपाल समय–समय पर बैठक का बुलावा भेजता है। दोनों सत्रों के बीच छह माह से अधिक का समय नहीं होना चाहिए।

स्थगन

बैठक को विशेष काल के लिए स्थगित भी किया जा सकता है। यह समय घंटों, दिनों या हफ्तों का भी हो सकता है।

विघटन

एक स्थायी सदन के होने के नाते विधानपरिषद का विघटन नहीं हो सकता। सिर्फ विधानसभा का विघटन हो सकता है। स्थगन के विपरीत विघटन के तहत चालू सदन समाप्त हो जाता है और आम चुनाव के बाद नए सदन का निर्माण होता है। विधानसभा के विघटन होने पर विधेयकों के खारिज होने को हम इस प्रकार समझ सकते हैं–

- एक विधेयक विधानसभा द्वारा पारित हो (एक सदनीय विधानमंडल वाले राज्य में) या दोनों सदनों द्वारा पारित हो (बहु सदनीय व्यवस्था वाले राज्य में) लेकिन राष्ट्रपति द्वारा सदन के पास पुनर्विचार हेतु लौटाया गया हो को समाप्त नहीं किया जा सकता।
- विधानसभा द्वारा पारित लेकिन विधानपरिषद में लंबित विधेयक खारिज हो जाता है।
- विधानसभा में लंबित (Pending) पड़ा विधेयक खारिज हो जाता है।
- एक विधेयक जो विधानपरिषद में लंबित हो लेकिन विधानसभा द्वारा पारित न हो, को खारिज नहीं किया जा सकता।

कोरम (गणपूर्ति)

किसी भी कार्य को शुरू करने से पूर्व सदस्यों की एक न्यूनतम संख्या को कोरम कहते हैं। सदन में कुल सदस्यों का दसवां हिस्सा (कार्यकारी अधिकारियों सहित) होता है जो कभी ज्यादा भी हो सकता है।

सदन में मतदान

किसी भी सदन की बैठक में कार्यकारी अधिकारियों को छोड़कर तय किए गए सभी मामलों को बहुमत के आधार पर तय किया जाता है। केवल कुछ मामले जिन्हें विशेष रूप से संविधान में तय किया गया है जैसे विधानसभा अध्यक्ष को हटाना या विधानपरिषद के सभापति को हटाना इनमें सामान्य बहुमत की बजाय विशेष बहुमत की आवश्यकता होती है।

विधानमंडल में भाषा

विधानमंडल में कामकाज संपन्न कराने के लिए संविधान कार्यालयी भाषा या उस राज्य के लिए हिंदी अथवा अंग्रेजी की घोषणा करता है। हालांकि विधायी अधिकारी किसी सदस्य को अपनी मातृभाषा में सदन को संबोधित करने की अनुमति दे सकता है।

मंत्रियों एवं महाधिवक्ता के अधिकार

प्रत्येक मंत्री एवं महाधिवक्ता को यह अधिकार है कि वह सदन की कार्यवाही में भाग ले, बोले एवं सदन से संबद्ध समिति जिसके लिए वह सदस्य रूप में नामित है, वोट देने के अधिकार के बिना भी भाग ले।

- एक मंत्री जो सदन का सदस्य नहीं है, दोनों सदनों की कार्यवाही में भाग ले सकता है।

विधानमंडल में विधायी कार्यपद्धति

साधारणा विधेयक

- **सदन में बने विधेयक:** एक साधारण विधेयक विधानमंडल

के किसी सदन में निर्मित हो सकता है। विधेयक तीन स्तरों के बाद पारित होता है-

- प्रथम वाचन
- द्वितीय वाचन
- तृतीय वाचन

- **दूसरे सदन में विधेयक :**

दूसरे सदन में भी विधेयक उन तीनों स्तरों के बाद पारित होता है। जब कोई विधेयक विधानसभा से पारित होने के बाद विधानपरिषद में भेजा जाता है, तो वहां तीन विकल्प होते हैं–

- इस पर कोई कार्यवाही न की जाए और विधेयक को विचाराधीन रखा जाए।
- कुछ संशोधनों के बाद पारित कर विचारार्थ इसे विधानसभा को भेज दिया जाए।
- इसे उसी रूप में (बिना संशोधन के) पारित कर दिया जाए।
- विधेयक को अस्वीकृत कर दिया जाए।

साधारण विधेयक पारित करने के संदर्भ में विधानसभा को खास शक्ति प्राप्त है। ज्यादा से ज्यादा परिषद एक विधेयक को चार माह के लिए रोक सकती है। पहली बार में तीन माह के लिए और दूसरी बार में एक-माह के लिए। संविधान में किसी विधेयक पर असहमति होने के मामले में दोनों सदनों की संयुक्त बैठक का प्रावधान नहीं रखा गया है।

राज्यपाल की स्वीकृति

विधानसभा या द्विसदनीय व्यवस्था में दोनों सदनों द्वारा पारित होने के बाद प्रत्येक विधेयक राज्यपाल के समक्ष मंजूरी के लिए भेजा जाता है। राज्यपाल के पास चार विकल्प होते हैं–

- वह राष्ट्रपति के विचारार्थ विधेयक को सुरक्षित रख ले।
- वह विधेयक को अपनी मंजूरी देने से रोके रखे।
- वह सदन या सदनों के पास विधेयक को पुनर्विचार के लिए भेज दे, और
- वह विधेयक को मंजूरी प्रदान कर दे।

राष्ट्रपति की मंजूरी

यदि कोई विधेयक राज्यापाल द्वारा राष्ट्रपति की मंजूरी के लिए सुरिक्षत रखा जाता है तो राष्ट्रपति या तो अपनी मंजूरी दे देते हैं, उसे रोक सकते या विधानमंडल के सदन या सदनों को पुनर्विचार हेतु भेज सकते हैं।

वित्त विधेयक

राज्य विधानमंडल में वित्त विधेयक को पारित करने के मामले में संविधान में विशेष व्यवस्था है। यह निम्नलिखित है– वित्त विधेयक विधानपरिषद में पेश नहीं किया जा सकता। यह केवल विधानसभा में ही राज्यपाल की संस्तुति के बाद पेश किया जा सकता है इस तरह का कोई भी विधेयक सरकारी विधेयक होता है और सिर्फ एक मंत्री द्वारा पेश किया जा सकता है। विधनसभा द्वारा पारित होने बाद एक वित्त विधेयक को विधानपरिषद को विचारार्थ भेजा जाता है। विधानपरिषद के पासे इसके मामले में प्रतिबंधित शक्तियां हैं। वह न तो इसे अस्वीकार कर सकता है, न ही इसमें संशोधन कर सकता है। उसे इसमें संस्तुति देनी होती है और 14 दिनों में विधेयक को लौटाना भी होता है। विधानसभा इसके सुझावों को स्वीकार भी कर सकती है और खारिज भी।

अंततः जब एक वित्त विधेयक राज्यपाल के समक्ष पेश किया जाता है तब वह इस पर अपनी मंजूरी दे सकता है, इसे रोक सकता है या राष्ट्रपति की मंजूरी के लिए सुरक्षित रख सकता है लेकिन राज्य विधानमंडल के पास पुनर्विचार के लिए नहीं भेजा सकता।

राज्य विधानमंडल एवं संसद के बीच कानूनी प्रक्रिया की तुलना

संसद	राज्य विधानमंडल
साधारण विधेयक के संबंध में	
• यह संसद के किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है।	• यह राज्य विधानमंडल के किसी सदन में पेश किया जा सकता है।
• यह किसी मंत्री या निजी सदस्य द्वारा पेश किया जा सकता है।	• यह किसी मंत्री या निजी सदस्य द्वारा पेश किया जा सकता है।
• मूल सदन में पहले, दूसरे और तीसरे वाचन के बाद यह पारित होता है।	• मूल सदन में पहले, दूसरे और तीसरे वाचन के बाद यह पारित होता है।

• यह तभी पारित माना जाता है जब इसमें संसद के दोनों सदनों की संशोधन या बिना संशोधन के सहमति हो।	• यह तभी पारित माना जाता है जब इसमें राज्य विधानमंडल के दोनों सदनों की संशोधन या बिना संशोधन के सहमति हो।
• दोनों सदनों के बीच अंतिम बाधा तब होता है जब पहले सदन द्वारा पारित विधेयक को प्राप्त कर लिया जाए और पहले सदन द्वारा संशोधन को स्वीकार न कर छह महीने तक विधेयक को पारित न किया जाए।	• दोनों सदनों के बीच अंतिम बाधा तब होता है जब पहले सदन द्वारा संशोधन को स्वीकार न कर तीन महीने तक विधेयक को पारित न किया जाए।
• किसी विधेयक के मसौदे पर दोनों सदनों में असहमति होने पर, इसे पारित करने के लिए संविधान में संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक का प्रावधान है।	• किसी विधेयक के मसौदे पर विधानमंडल के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक का संविधान में प्रावधान नहीं है।
• लोकसभा दूसरी बार विधेयक के पारित होने पर राज्यसभा के आगे नहीं जा सकती। दोनों सदनों के बीच एकमात्र रास्ता संयुक्त अधिवेशन है।	• जब एक विधेयक विधानसभा द्वारा दूसरी बार पारित कर परिषद को भेजा जाता है तब यदि परिषद एक माह तक इसे पारित न करे तो यह उसी रूप में पारित माना जाएगा। जिस रूप में विधानसभा ने इसे पारित किया था।

धन विधेयक के संबंध में

संसद	**राज्य विधानमंडल**
• यह केवल लोकसभा में पेश किया जा सकता है, न कि राज्यसभा में।	• यह केवल विधानसभा में पेश किया जा सकता है, न कि विधानपरिषद में।
• इसे केवल राष्ट्रपति की संस्तुति के बाद ही पेश किया जा सकता है।	• इसे केवल राज्यपाल की संस्तुति के बाद ही पेश किया जा सकता है।
• यह केवल एक मंत्री द्वारा ही पेश किया जा सकता है न कि निजी सदस्य द्वारा।	• यह केवल एक मंत्री द्वारा ही पेश किया जा सकता न कि निजी सदस्य द्वारा।
• इसे राज्यसभा द्वारा संशोधित या अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। इसे लोकसभा को सिफारिश या बिना सिफारिश के 14 दिन के अंदर लौटाना चाहिए।	• इसे विधानपरिषद द्वारा संशोधित या अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। इसे विधानसभा को सिफारिश या बिना सिफारिश के 14 दिन के अंदर लौटा देना चाहिए।
• लोकसभा, राज्यसभा द्वारा सुझाए गए सिफारिश को स्वीकार या अस्वीकार कर सकती है।	• विधानसभा, विधानपरिषद की सिफारिश को स्वीकार या अस्वीकार कर सकती है।
• यदि लोकसभा किसी सिफारिश को स्वीकार कर लेती है तो इसे दोनों सदनों द्वारा परिवर्तित रूप में पारित मान लिया जाता है।	• यदि विधानसभा किसी सिफारिश के साथ इसे स्वीकार कर लेती है तो इसे दोनों सदनों द्वारा परिवर्तित रूप से पारित मान लिया जाता है।
• यदि लोकसभा किसी सुझाव को न माने तो विधेयक को दोनों सदनों द्वारा इसके मूल रूप में पारित समझा जाएगा।	• यदि विधानसभा किसी सुझाव को न माने तो विधेयक को दोनों सदनों द्वारा इसके मूल रूप से पारित माना जाएगा।

- यदि राज्यसभा विधेयक को 14 दिनों के भीतर न लौटाए तो तय सीमा के भीतर इसे पारित माना जाएगा।
- संविधान दोनों सदनों के बीच विधेयक पारित करने के लिए अंतिम विकल्प उपलब्ध नहीं कराता। ऐसा इसलिए क्योंकि लोकसभा राज्यसभा पर व्याप्त रहती है और वह यदि सहमत न हो तो पूर्व विधेयक

पास हो जाता है।

पास हो जाता है।

- यदि विधानसभा विधेयक को 14 दिनों के भीतर न लौटाए तो तय सीमा के भीतर इसे पारित माना जाएगा।
- संविधान दोनों सदनों के बीच पारित करने के लिए अंतिम विकल्प उपलब्ध नहीं कराता। ऐसा इसलिए क्योंकि विधान सभा विधानपरिषद पर व्याप्त रहती है और वह यदि सहमत न हो तो पूर्व विधेयक

राज्य विधानमंडल के विशेषाधिकार

राज्य विधानमंडल के कुछ विशेष अधिकार होते हैं। विधानमंडल के सदनों, उसकी कमेटियों और सदस्यों को अपने कार्यों को प्रभावी रूप देने के लिए सुरक्षा एवं स्वतंत्रता की जरूरत होती है। बिना इन सुविधाओं के सदन न तो वह व्यवस्था बना सकते हैं और न ही अपनी जिम्मेदारियां निभा सकते हैं।

सामूहिक विशेषधिकार :

प्रत्येक सदन को मिलने वाली सामूहिक विधानमंडलीय सुविधाएं इस प्रकार हैं-

- सदन की कार्यवाही की जांच अदालत नहीं करती।
- इन्हें अपनी रिपोर्ट प्रकाशित करने और कार्यवाही में बहस करने का अधिकार है।[17]
- अपने सदस्य के पकड़ें जाने, जेल में डालने या छूटने की त्वरित जानकारी लेने का अधिकार।
- इन्हें यह भी अधिकार है कि महत्वपूर्ण मामलों में गुप्त मंत्रणा करें।

व्यक्तिगत विशेषाधिकार

- उन्हें सदन चलने के 40 दिन पहले और 40 दिन बाद तक गिरफ्तार नहीं किया जा सकता। यह केवल फौजदारी मामले में है।
- राज्य विधानमंडल में उन्हें बोलने की स्वतंत्रता है। उसके द्वारा दिए गए मत या विचार को किसी अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकती।
- वे न्यायिक मामलो से मुक्त होते हैं। जब सदन चल रहा हो

वे साक्ष्य देने या किसी केस में बतौर गवाह उपस्थित होने से इनकार कर सकते हैं।

राज्य विधानमंडल की सदस्य संख्या

क्र.सं.	राज्य	विधानसभा में सदस्य	विधानपरिषद में सदस्य संख्या
1.	आंध्रप्रदेश	294	–
2.	अरूणाचल प्रदेश	60	–
3.	असम	126	–
4.	बिहार	243	75
5.	छत्तीसगढ़	90	–
6.	गोवा	40	–
7.	गुजरात	182	–
8.	हरियाणा	90	–
9.	हिमाचल प्रदेश	68	–
10.	जम्मू और कश्मीर	76	36
11.	झारखंड	81	–

12.	कर्नाटक	224	63
13.	केरल	140	–
14.	मध्य प्रदेश	230	–
15.	महाराष्ट्र	288	78
16.	मणिपुर	60	–
17.	मेघालय	60	–
18.	मिजोरम	40	–
19.	नागालैंड	60	–
20.	उड़ीसा	147	–
21.	पंजाब	117	–
22.	राजस्थान	200	–
23.	सिक्किम	32	–
24.	तमिलनाडु	234	–
25.	त्रिपुरा	60	–
26.	उत्तरप्रदेश	403	100
27.	उत्तरांचल	70	–
28.	पश्चिम बंगाल	294	

15. उच्चतम न्यायालय

भारतीय संविधान ने एकल न्याय व्यवस्था के तहत उच्चतम स्थान पर सर्वोच्च न्यायालय व उसके अधीन उच्च न्यायालयों की स्थापना की है। न्यायालय की यह एकल व्यवस्था भारत सरकार अधिनियम 1935 से ली गई और इसे केंद्रीय एवं राज्य कानून में समान रूप से लागू किया गया। भारत के उच्चतम न्यायालय का गठन 28 जनवरी, 1950 को किया गया। यह भारत सरकार अधिनियम 1935 के तहत लागू संघ न्यायालय का उत्तराधिकारी था। अनुच्छेद 124 से 147 तक, भारतीय संविधान के भाग ट में उच्चतम न्यायालय का गठन, स्वतंत्रता, न्यायक्षेत्र, शक्तियां, व्यवस्था आदि का उल्लेख है।

उच्चतम न्यायालय का गठन

इस समय उच्चतम न्यायालय में 26 न्यायाधीश (एक मुख्य न्यायाधीश) है। मूलतः उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या 8 (एक मुख्य न्यायाधीश और 7 उच्च न्यायाधीश) निश्चित थी।

न्यायाधीश

न्यायाधीशों की नियुक्तिः उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति अन्य न्यायाधीशों एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की सलाह के बाद करता है। इसी तरह अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति भी होती है। इसमें मुख्य न्यायाधीश की सलाह आवश्यक है।

न्यायाधीशों की योग्यताः उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश बनने के लिए किसी व्यक्ति में निम्नलिखित योग्यताएं होनी चाहिए।

- उसे भारत का नागरिक होना चाहिए।
- (अ) उसे किसी उच्च न्यायालय का कम से कम पांच साल के लिए न्यायाधीश होना चाहिए, या (ब) उसे उच्च न्यायालय या विभिन्न न्यायालयों में मिलाकर 10 साल तक वकील होना चाहिए, या (स) राष्ट्रपति के मत में उसे पारंगत विधिवेत्ता होना चाहिए।

शपथ या वचनः उच्चतम न्यायालय के लिए नियुक्त न्यायाधीश को अपना कार्यकाल संभालने से पूर्व राष्ट्रपति या इस कार्य के लिए उसके द्वारा नियुक्त व्यक्ति के सामने निम्नलिखित शपथ लेनी होगी-

- भारत के संविधान के प्रति विश्वास एवं सत्यनिष्ठा।
- भारत की एकता एवं अखंडता को अक्षुण्ण रखना।
- अपनी सर्वोच्च योग्यता एवं ज्ञान के साथ विश्वासपूर्वक, बिना डर एवं पक्षपात के सत्यता के अनुरूप फैसला देना।

न्यायाधीशों का कार्यकाल

- वह 65 वर्ष की आयु तक पद पर बना रह सकता है।
- उम्र के मामले में किसी प्रश्न के उठने पर संसद द्वारा स्थापित संस्था इसका निर्धारण करेगी।
- संसद की सिफाशि पर राष्ट्रपति द्वारा उसे पद से हटाया जा सकता है।
- राष्ट्रपति को वह लिखित त्यागपत्र दे सकता है।

यह रोचक है कि उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश पर अब तक महाभियोग नहीं लगाया जा सका है।

वेतन एवं भत्ते

वेतन, भत्ते, सुविधाएं, अवकाश एवं पेंशन का निर्धारण समय-समय पर संसद द्वारा किया जाता है। लेकिन न्यायाधीश की पदावधि के दौरान कोई अलाभकारी परिवर्तन नही किया जाएगा।

कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश

राष्ट्रपति किसी न्यायाधीश को उच्चतम न्यायालय का कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश नियुक्त कर सकता है जब-

- मुख्य न्यायाधीश का पद रिक्त हो,
- अस्थायी रूप से मुख्य न्यायाधीश अनुपस्थित हो,
- मुख्य न्यायाधीश अपने दायित्वों के निर्वहन में असमर्थ हो।

तदर्थ न्यायाधीश

जब कभी कोरम पूरा करने में स्थायी न्यायाधीशों की संख्या कम हो रही हो तो भारत का मुख्य न्यायाधीश किसी उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को अस्थायी काल के लिए उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीश नियुक्त कर सकता है। ऐसा वह राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी के बाद ही कर सकता है।

सेवानिवृत्त न्यायाधीश

किसी भी समय भारत का मुख्य न्यायाधीश उच्चतम न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश या उच्च न्यायालय से अल्पकाल के लिए उच्चतम न्यायालय में कार्य करने का अनुरोध कर सकता है। ऐसा संबंधित व्यक्ति एवं राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति से ही किया जा सकता है।

उच्चतम न्यायालय का स्थान

संविधान ने उच्चतम न्यायालय का स्थान दिल्ली में घोषित

किया। लेकिन मुख्य न्यायाधीश को यह अधिकार है कि उच्चतम न्यायालय का स्थान कहीं और नियुक्त करे लेकिन ऐसा निर्णय वह राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति के बाद ही ले सकता है।

उच्चतम न्यायालय की शक्तियां एवं क्षेत्राधिकार

संविधान में उच्चतम न्यायालय की व्यापक शक्तियों एवं क्षेत्राधिकार को उल्लिखित किया गया है। उच्चतम न्यायालय की शक्ति एवं न्यायक्षेत्रों को निम्नलिखित तरह से वर्गीकृत किया जा सकता है–

प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार

किसी भी विवाद को जो

- केंद्र व एक या अधिक राज्यों के बीच हों, या
- केंद्र और कोई राज्य या राज्यों का एक तरफ होना एवं एक या अधिक राज्यों का दूसरी तरफ होना, या
- दो या अधिक राज्यों के बीच।

उपरोक्त संघीय विवाद पर उच्च्तम न्यायालय में 'विशेष मूल' न्यायक्षेत्र निहित है। विशेष का मतलब है किसी अन्य न्यायालय को विवादों के निपटाने में इस तरह की शक्तियां प्राप्त नहीं हैं।

न्यायादेश क्षेत्राधिकार

संविधान ने उच्चतम न्यायालयों को नागरिकों के मूल अधिकारों का रक्षक के रूप में स्थापित किया है। उच्चतम न्यायालय को अधिकार प्राप्त है कि वह बंदी प्रत्यक्षीकरण, उत्प्रेषण परमादेश आदि न्यायादेश जारी कर नागरिक के मूल अधिकारों की रक्षा करें। न्यायिक क्षेत्र के मामले में उच्चतम केवल मूल अधिकारों के क्रियान्वयन के संबंध में न्यायादेश जारी कर सकता है, अन्य उद्देश्य से नहीं; जबकि दूसरी तरफ उच्च न्यायालय न केवल मूल अधिकारों के लिए न्यायादेश जारी कर सकता है बल्कि अन्य उद्देश्यों के लिए भी इसे जारी कर सकता है।

पुनर्विचार क्षेत्राधिकार

पुनर्विचार न्यायक्षेत्र को निम्नलिखित चार शीर्षों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

- संवैधानिक मामले: संवैधानिक मामलों में उच्चतम न्यायालय में उच्च न्यायालय के फैसले के खिलाफ अपील की जा सकती है। यदि उच्च न्यायालय इसे प्रमाणित करे कि मामले में कानून का पूरक प्रश्न निहित है।
- दीवानी मामले: दीवानी मामलों के तहत उच्चतम न्यायालय में किसी भी मामले को लाया जा सकता है यदि उच्च न्यायालय प्रमाणित कर दे कि–
  - मामला सामान्य महत्व के पूरक प्रश्न पर आधारित है।
  - ऐसा प्रश्न है जिसका निर्णय उच्चतम न्यायालय द्वारा किया जाना चाहिए।
- **आपराधिक मामले:** उच्चतम न्यायालय उच्च न्यायालय के आपराधिक मामलों के फैसलों के खिलाफ सुनवाई उस समय करता है जब –
  - अभियुक्त को सजा-ए-मौत मिली हो और उसने इसके विरुद्ध अपील की हो।
  - यह प्रमाणिक हो जाए कि संबंधित मामला उच्चतम न्यायालय में ले जाने योग्य है।
  - यदि उच्च न्यायालय में कोई अपील हो जिसके तहत आरोपी व्यक्ति को उम्र कैद या दस साल की सजा सुनाई गई हो।
  - उच्च न्यायालय खुद किसी मामले को किसी अधीनस्थ न्यायालय से लिया हो और आरोपी व्यक्ति को उम्र कैद या दस साल की सजा सुनाई गई हो।

सलाहकार क्षेत्राधिकार

संविधान (अनुच्छेद 143) राष्ट्रपति को दो श्रेणियों के मामलों में उच्चतम न्यायालय से राय मांगने का अधकािर देता है-

- सार्वजनिक महत्व के किसी मसले पर कानूनी प्रश्न उठने पर।
- किसी पूर्व संवैधानिक संधि, समझौते आदि समान मामलों पर किसी विवाद के उत्पन्न होने पर।

पहले मामले में उच्चतम न्यायालय अपना मत दे भी सकता है और देने से इनकार भी कर सकता है। दूसरे मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा राष्ट्रपति को अपना मत देना अनिवार्य है।

अभिलेख की अदालत

अभिलेखों की अदालत के रूप में उच्चतम न्यायालय के पास दो शक्तियां हैं-

- उच्चतम न्यायालय की कार्यवाही एवं उसके फैसले सार्वकालिक अभिलेख व साक्ष्य के रूप में रखे जाएंगे।
- इसके पास न्यायालय की अवहेलना पर दंडित करने का अधिकार है।

दालत की अवमानना सामान्य नागरिक प्रशासन संबंधी या आपराधिक दोनों प्रकार की हो सकती है।

न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति

उच्चतम न्यायालय में न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति निहित है। इसके तहत वह केंद्र व राज्य दोनों स्तरों पर विधायी 'व कार्यकारी गतिविधियों का परीक्षण करता है। यदि इसमें उसे कोई हनन दिखता है तो इसे वह अवैध घोषित कर सकता है। न्यायिक पुनर्विलोकन की आवश्यकता निम्नलिखित के लिए है-

- संविधान की सर्वोच्चता के सिद्धांत को बनाए रखने के लिए।
- संघीय समानता को बनाए रखने (केंद्र एवं राज्यों के बीच संतुलन) के लिए।
- नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा के लिए।

अन्य शक्तियां

उपरोक्त शक्तियों के अतिरिक्त उच्चतम न्यायालय को कई अन्य शक्तियां भी प्राप्त हैं-

- यह राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति के निर्वाचन के संबंध में किसी प्रकार के विवाद का निपटारा करता है।
- यह संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों के व्यवहार एवं आचरण की जांच करता है, उस संदर्भ में जिसे राष्ट्रपति द्वारा निदेर्शित किया गया है। यदि उसे दुव्यर्वहार का दोषी पाता है तो राष्ट्रपति से उसको हटाने की सिफारिश कर सकता है।
- अपने स्वयं के फैसले की समीक्षा करने की शक्ति इसे है,
- इसके कानून भारत के सभी न्यायालयों के लिए बाध्य होंगें।
- यह संविधान का अन्तिम व्याख्याता है।

16. उच्च न्यायालय और अधिनस्थ न्यायालय

भारत की एकल न्यायिक व्यवस्था में उच्च न्यायालय उच्चतम न्यायालय के अधीन लेकिन अन्य अधीनस्थ न्यायालयों के ऊपर होता है। भारत में सर्वप्रथम उच्च न्यायालय का गठन 1862 में तब हुआ जब कलकत्ता, बंबई और मद्रास उच्च न्यायालयों की स्थापना हुई। इस समय भारत में 21 उच्च न्यायालय है। केंद्रशासित राज्यों में केवल दिल्ली ऐसा राज्य है जिसका अपना उच्च न्यायालय (1966 से) है। संसद किसी उच्च न्यायालय के क्षेत्र का विस्तार किसी केंद्रशासित राज्य या अन्य क्षेत्र में भी कर सकती है। प्रत्येक उच्च न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश और कुछ अन्य न्यायाधीश जिन्हें जरूरत के अनुसार समय-समय पर राष्ट्रपति नियुक्त करते हैं, होते हैं।

न्यायाधीशों की नियुक्तिः उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। मुख्य न्यायधीश की नियुक्ति राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायधीश और संबंधित राज्य के राज्यपाल से परामर्श के बाद करता है। अन्य न्यायधीशों की नियुक्ति में संबंधित उच्च न्यायालय के न्यायधीश से भी परामर्श लिया जाता है।

न्यायाधीशों की योग्यताएं

उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए व्यक्ति के पास निम्न योग्यताएं होनी चाहिएं-

- वह उच्च न्यायालय (या न्यायालयों) में लगातार 10 वर्ष तक अधिवक्ता रह चुका हो।
- उसे भारत के न्यायायिक कार्य में दस वर्ष का अनुभव हो।
- उसे भारत का नागरिक होना चाहिए।

शपथ

जिस व्यक्ति को उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किया गया है, पद संभालने के पूर्व उसे उस राज्य के राज्यपाल या इस कार्य के लिए राज्यपाल द्वारा नियुक्त व्यक्ति के सामने शपथ/वचन लेनी होती है। अपनी शपथ में उच्च न्यायालय का जज वचन देता है-

- भारत की एकता एवं अखंडता को अक्षुण्ण रखूंगा।
- संविधान और कानून का पालन करूंगा।
- बिना किसी डर, भय, राग-द्वेष के निष्पक्ष होकर अपने सर्वोत्तम विवेक का इस्तेमाल कर न्याय करूंगा।
- भारत के संविधान के प्रति सत्य और निष्ठा रखूंगा।

न्यायाधीशों का कार्यकाल

- उसे दो स्थितियों में पद छोड़ना पड़ सकता है-पहला, उसकी नियुक्ति उच्चतम न्यायालय में हो गई हो या फिर उसका किसी दूसरे उच्च न्यायालय में स्थानांतरण कर दिया गया हो।
- 62 वर्ष की आयु तक कार्यभार संभाल सकता है। यदि उसकी उम्र को लेकर सवाल उठते हैं तो राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायाधीशों से परामर्श कर निर्णय लेता है। इस संबंध में राष्ट्रपति का निर्णय अंतिम होता है।
- न्यायाधीश राष्ट्रपति को त्यागपत्र भेज सकता है।
- संसद की संस्तुति के बाद राष्ट्रपति उसे पद से हटा सकता है।

संसद में प्रस्ताव लाने के बाद राष्ट्रपति उसे हटाने का आदेश जारी कर सकता है। प्रस्ताव को विशेष बहुमत के साथ प्रत्येक सदन का समर्थन (इस प्रस्ताव को प्रत्येक सदन में कुल सदस्यों के दो तिहाई सदस्यों का समर्थन या सदन में मौजूद सदस्यों के दो तिहाई का समर्थन) मिलना आवश्यक है। हटाने के दो आधार साबित होने चाहिएं, पहला दुर्व्यवहार और दूसरा अक्षमता।

वेतन एवं भत्ते

उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का वेतन, भत्ते, सुविधाएं, अवकाश और पेंशन को समय-समय पर संसद द्वारा निर्धारित किया जाता है। उनकी नियुक्ति के बाद उनमें कोई कमी नहीं की जा सकती।

न्यायाधीशों का स्थानांतरण

भारत के मुख्य न्यायाधीश से विचार के बाद राष्ट्रपति एक न्यायाधीश की नियुक्ति एक उच्च न्यायालय से दूसरे उच्च न्यायालय में कर सकता है। स्थानांतरण पर उसे अतिरिक्त वेतन, भत्ते जिन्हें संसद द्वारा तय किया जाता है, मिलता है।

कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश

राष्ट्रपति किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को उस उच्च न्यायालय का कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश नियुक्त कर सकता है।

- यदि उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश का पद रिक्त हो, या
- यदि उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश अस्थायी रूप से अनुपस्थित हो, या

- यदि मुख्य न्यायाधीश अपने कार्य निर्वहन में असमर्थ हो।

अतिरिक्त और कार्यकारी न्यायाधीश

राष्ट्रपति योग्य व्यक्तियों को उच्च न्यायालय के अतिरिक्त न्यायाधीश के रूप में नियुक्त कर सकते हैं। यह नियुक्ति अस्थायी रूप से और दो वर्ष से अधिक की नहीं होती।

सेवानिवृत्त न्यायाधीश

उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश किसी भी समय रहे एक राज्य के सेवानिवृत्त न्यायाधीश को अल्पकाल के लिए बतौर कार्यकारी न्यायाधीश काम करने के लिए कह सकते हैं। ऐसा राष्ट्रपति की पूर्व संस्तुति एवं संबंधित व्यक्ति की मंजूरी के बाद ही संभव है।

उच्च न्यायालय का न्याय क्षेत्र एवं शक्तियां

उच्चतम न्यायालय की तरह ही उच्च न्यायालय की भी विस्तारित एवं प्रभावी शक्तियां होती हैं। यह राज्य में अपील करने का सर्वोच्च न्यायालय होता है। यह नागरिकों के मूल अधिकारों का रक्षक होता है। इसके पास संविधान की व्याख्या करने का अधिकार होता है। इसके अलग इसकी भूमिका पर्यवेक्षक एवं सलाहकारी की तरह होती है।

वर्तमान में उच्च न्यायालयों को निम्नलिखित न्यायिक शक्तियां प्राप्त हैं-

- न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति।
- अपीलीय क्षेत्राधिकार,
- पर्यवेक्षीय क्षेत्राधिकार,
- अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण,
- अभिलेखों का न्यायालय,
- प्रारंभिक क्षेत्राधिकार,
- न्यायादेश, मैरिट क्षेत्राधिकार,

प्रारंभिक क्षेत्राधिकार

इसका अर्थ है कि उच्च न्यायालय की शक्ति है कि प्रथम मामले में विवादों की सुनवाई हो, सीधे अपील करके नहीं यह निम्नलिखित मामलों में विस्तारित है-

- राजस्व मामले या राजस्व एकत्र में निर्देश।
- संसद सदस्यों और राज्य विधानमंडल सदस्यों के निर्वाचन में कोई विवाद।
- अधिकारिता का मामला, वसीयत, विवाह, तलाक, कंपनी कानून एवं न्यायालय की अवहेलना।

रिट क्षेत्राधिकार

संविधान का अनुच्छेद 226 उच्च न्यायालय को न्यायादेश (रिट) की शक्ति प्रदान करता है। उच्च न्यायालय का रिट क्षेत्राधिकार (अनुच्छेद 226 के तहत) उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार (अनुच्छेद 32 के तहत) के समान है। इसका तात्पर्य है कि जब किसी नागरिक के मूल अधिकार का हनन होता है तो पीड़ित व्यक्ति का अधिकार है कि वह या तो उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय सीधे जा सकता है।

अपीलीय क्षेत्राधिकार

उच्च न्यायालय प्राथमिक अपीलीय न्यायालय है। अपने राज्य क्षेत्र के तहत आने वाले अधीनस्थ न्यायालयों के आदेशों के विरुद्ध यहां सुनवाई होती है। यहां दोनों तरह के सामान्य नागरिक अधिकार एवं आपराधिक मामलों के बारे में अपील होता है।

दीवानी मामले

इस संबंध में उच्च न्यायालय का न्यायादेश निम्नवत है-

- प्रशासनिक निर्णयों से एवं अन्य tribunals से अपील को उच्च न्यायालय की खंडीय बेंच के सामने रखा जा सकता है।
- जिला न्यायालयों एवं अन्य अधीनस्थ न्यायालयों के निर्णय के खिलाफ दूसरी अपील जिसमें कानून का प्रश्न हो (तथ्यों का नहीं)।
- सर्वप्रथम अपील जिला न्यायालयों, अतिरिक्त जिला न्यायालयों एवं अन्य अधीनस्थ न्यायालयों के आदेशों को सीधे उच्च न्यायालय में लाया जा सकता है।

आपराधिक मामले

उच्च न्यायालय का आपराधिक मामलों में न्यायायिक अपीलीय क्षेत्र निम्नलिखित है-

- कुछ मामलों में आपराधिक कार्यवाही कोड (1973) के लिए विशेष प्रावधान है। सहायक सत्र न्यायाधीश, नगर दंडाधिकारी या अन्य दंडाधिकारी (न्यायिक) की अपील उच्च न्यायालय मे की जा सकती है।
- सत्र न्यायालय और अतिरिक्त सत्र न्यायालय के निर्णय के खिलाफ उच्च न्यायालय में तब अपील की जा सकती है जब किसी को सात साल से अधिक सजा हुई हो।

पर्यवेक्षीय क्षेत्राधिकार

उच्च न्यायालय को इस बात का अधिकार है कि वह अपने न्यायिक क्षेत्र के सभी न्यायालयों व सहायक न्यायालयों के क्रियाकलापों की देखरेख करे (सैन्य न्यायालयों को छोड़कर)।

इस तरह वह-

- उनके द्वारा रखे जाने वाले लेखा, सूची आदि के लिए कार्य की उपलब्धता कराता है।
- उन्हें वहां से बुला सकता है।
- उनकी कार्यवाही के संबंध के मुद्दे, सामान्य नियम, नियंत्रण आदि बनाता है।

अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण

अपीलीय न्यायिक क्षेत्र एवं पर्यवेक्षणीय अधीनस्थ न्यायालयों जिनका ऊपर जिक्र किया गया है, के ऊपर एक उच्च न्यायालय का प्रशासनिक नियंत्रण और अन्य शक्तियां रहती है। इनमें निम्नलिखित शामिल हैं-

- यह अधीनस्थ न्यायालय में लंबित किसी मामले को वापस ले सकता है।
- यह राज्य की न्यायिक सेवा (जिला न्यायाधीशों के अलावा), सदस्यों के अनुशासन, स्थानांतरण, अवकाश स्वीकृति, पदोन्नति आदि मामलों को भी देखता है।
- इसके कानून को उन सभी अधीनस्थ न्यायालयों को मानने की बाध्यता होती है, जो उसके न्यायिक क्षेत्र में आते हैं।
- जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति, पदोन्नति, स्थानांतरण एवं व्यक्ति विशेष की राज्य न्यायिक सेवा (जिला न्यायाधीशों के अलावा), में राज्यपाल से परामर्श लिया जाता है।

अभिलेख का न्यायालय

अभिलेख के न्यायालय के रूप में उच्च न्यायालय के पास दो शक्तियों हैं-

- इसे न्यायालय की अवहेलना पर दंड देने का अधिकार हैं। चाहे वह साधारण कारावास हो या आर्थिक दंड या दोनों।
- फैसले, कार्यवाही और उच्च न्यायालय के कार्य अभिलेखीय याददाश्त एवं प्रमाण के लिए रखे जाते हैं।

न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति

उच्च न्यायालय की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति यह देखने में निहित है कि राज्य विधानमंडल व केंद्र सरकार के कम्री संवैधानिक रूप से कार्य कर रहे हैं। यद्यपि न्यायिक पुनर्विलोकन की संविधान में व्याख्या नहीं की गयी है। अनुच्छेद 13 और 226 में उच्च न्यायालय द्वारा समीक्षा के प्रावधान को दर्शाया गया है। संवैधानिक वैधता के मामले में विधानमंडलीय कार्य को चुनौती दी जा सकती है।

अधीनस्थ न्यायालय

संविधान के छठे भाग में अनुच्छेद 233 से 237 अधीनस्थ न्यायालयों को कार्यकारिणी से स्वतत्र रखने के लिए निम्नलिखित व्यवस्था की गई-

जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति

राज्य में जिला जजों की नियुक्ति, स्थानांतरण और पदोन्नति पर राज्यपाल द्वारा उच्च न्यायालय से परामर्श किया जाता है। जिस व्यक्ति को जिला न्यायाधीश नियुक्त किया जा रहा है उसकी निम्नलिखित योग्यता होनी चाहिए।

- उसे केंद्र या राज्य सरकार की सेवा में नहीं होना चाहिए।
- उसे वकील होना चाहिए या सात वर्ष का समान अनुभव।
- उसका अनुमोदन उच्च न्यायालय द्वारा होना चाहिए।

अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति

राज्य न्यायिक सेवा में किसी व्यक्ति की नियुक्ति (जिला न्यायाधीशों के अलावा) हेतु राज्यपाल उच्च न्यायालय और राज्य लोक सेवा आयोग का परामर्श लेता है।

अधीनस्थ अदालतों पर नियंत्रण

जिला अदालतों एवं अधीनस्थ अदालतो पर नियंत्रण जिनमें स्थानांतरण, पदोन्नति और राज्य न्यायिक सेवा से जुड़े व्यक्ति के अवकाश आदि मामले उच्च न्यायालय के अधीन रहते हैं। यह नियंत्रण अधीनस्थ न्यायिक व्यवस्था की स्वतंत्रता को सुरक्षित करती है।

उच्च न्यायालय के न्यायिक क्षेत्र एवं नाम

	uke	LFkkiuk dk o"kZ	U;kf;d {ks=k	[k.MihB
1.	इलाहाबाद	1866	उत्तर प्रदेश	हलाहाबाद (लखनऊ में बेंच)
2.	आंध्र प्रदेश	1954	आंध्र प्रदेश	हैदराबाद
3.	बंबई	1862	महाराष्ट्र, गोवा, दादर और नगर हवेली	मुंबई (नागपुर, पणजी और औरंगाबाद में खंडपीठ)
4.	कलकत्ता	1862	पश्चिम बंगाल एवं अंडमान	कोलकाता (पोर्ट ब्लेयर में भ्रमणकारी

			और निकोबार द्वीप समूह	खंडपीठ)
5.	छत्तीसगढ़	2000	छत्तीसगढ़	बिलासपुर
6.	दिल्ली	1966	दिल्ली	दिल्ली
7.	गुवाहाटी	1948	असम, मणिपुर, मेघालय, नागालैंड, त्रिपुरा, मिजोरम और अरुणाचल प्रदेश	गुवाहाटी (कोहिमा, आईजॉल, इम्फाल, शिलांग और अगरतला में खंडपीठ)
8.	गुजरात	1960	गुजरात	अहमदाबाद
9.	हिमाचल प्रदेश	1971	हिमाचल प्रदेश	शिमला
10.	जम्मू एवं कश्मीर	1928	जम्मू एवं कश्मीर	श्रीनगर और जम्मू
11.	झारखंड	2000	झारखंड	रांची
12.	कर्नाटक	1884	कर्नाटक	बंगलौर
13.	केरल	1958	केरल और लक्षद्वीप	अर्नाकुलम
14.	मध्यप्रदेश	1956	मध्यप्रदेश	जबलपुर (इंदौर और ग्वालियर में खंडपीठ
15.	मद्रास	1862	तमिलनाडु और पांडिचेरी	चेन्नई
16.	उड़ीसा	1948	उड़ीसा	कटक
17.	पटना	1916	बिहार	पटना
18.	पंजाब और हरियाणा	1875	पंजाब, हरियाणा और चंडीगढ़	चंडीगढ़
19.	राजस्थान	1949	राजस्थान	जोधपुर (जयपुर में खंडपीठ)
20.	सिक्किम	1975	सिक्किम	गंगटोक
21.	उत्तराखण्ड	2000	उत्तराखण्ड	नैतीताल

17. भारत के महान्यायवादी एवं महाधिवक्ता

संविधान में (अनुच्छेद 76) भारत के महान्यावादी' के पद की व्यवस्था की गई है। वह देश का सर्वोच्च कानून अधिकारी होता है।

नियुक्ति एवं कार्यकाल

महान्यायवादी (अटार्नी जनरल) की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा होती है। उसमें उन योग्यताओं का होना आवश्यक है जो उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए होती है। दूसरे शब्दों में, उसके लिए आवश्क है कि वह भारत का नागरिक हो, उसे उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में काम करने का पांच वर्षों का अनुभव हो या किसी उच्च न्यायालय में वकालत का 10 वर्षों का अनुभव हो या राष्ट्रपति के मतानुसार वह न्यायायिक मामलों का योग्य व्यक्ति हो। वह अपने पद पर राष्ट्रपति की दया तक बने रह सकता है। इसका तात्पर्य है कि उसे राष्ट्रपति द्वारा किसी भी समय हटाया जा सकता है। वह राष्ट्रपति को कभी भी अपना त्यागपत्र सौंपकर पदमुक्त हो सकता है। संविधान में महान्यायवादी का पारिश्रमिक तय नहीं किया गया है, उसे राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित पारिश्रमिक मिलता है।

कर्त्तव्य एवं कार्य

भारत सरकार के मुख्य कानून अधिकारी के रूप में महान्यायवादी के निम्नलिखित कर्त्तव्य हैं-

- इस संबंध में संविधान या कानून द्वारा सौंपे गए कार्य को पूरा करना।
- राष्ट्रपति द्वारा भेजे गए कानूनी मसलों पर भारत सरकार को सलाह देना।
- राष्ट्रपति द्वारा सौंपे गए कानूनी मामलों से संबंधित वैधानिक कर्त्तव्य को पूरा करना।

राष्ट्रपति महान्यायवादी को निम्नलिखित कार्य सौंपता है—

- सरकार से संबंधित किसी मामले में उच्च न्यायालय में पेश होना।
- संबंधित मामलों को लेकर उच्चतम न्यायालय में भारत सरकार की ओर से पेश होना।

अधिकार एवं मर्यादाएं

भारत के किसी भी क्षेत्र में किसी भी अदालत में महान्यायवादी को पेश होने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त संसद के दोनों सदनों में बोलने या कार्यवाही में भाग लेने या दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में मताधिकार के बगैर भाग लेने का अधिकार है।

राज्य के महाधिवक्ता

संविधान के अनुच्छेद 165 में व्यवस्था की गई है।

नियुक्ति एवं कार्यकाल

महाधिवक्ता की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा होती है। उस व्यक्ति में उच्च न्यायालय का न्यायाधीश बनने की योग्यता होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में उसे भारत का नागरिक होना चाहिए, उसे दस वर्ष तक न्यायिक अधिकारी या उच्च न्यायालय में 10 वर्षों तक वकालत करने का अनुभव होना चाहिए। संविधान द्वारा महाधिवक्ता के कार्यकाल को निश्चित नहीं किया गया है। वह अपने पद पर तब तक बना रहता है जब तक राज्यपाल की इच्छा हो, इसका तात्पर्य है कि उसे राज्यपाल द्वारा कभी भी हटाया जा सकता है। वह अपने पद से त्यागपत्र देकर भी कार्यमुक्त हो सकता है। संविधान में महाधिवक्ता के वेतन-भत्तों को भी निश्चित नहीं किया गया है। उसके वेतन-भत्तों का निर्धारण राज्यपाल द्वारा किया जाता है।

कर्त्तव्य एवं कार्य

राज्य में वह मुख्य कानून अधिकारी होता है। इस नाते महाधिवक्ता के कार्य निम्नवत हैं-

- संविधान या कानून सम्मत दिए गए संबंधित कानूनी कार्यों का निष्पादन।
- राज्यपाल द्वारा भेजे गए कानूनी मसलों पर सरकार को सलाह देना।
- राज्यपाल द्वारा दी गई जिम्मेदारी के तहत कानूनी मसलों पर कार्य निष्पादन।

अपने कार्य संबंधी कर्त्तव्यों के तहत उसे राज्य के किसी न्यायालय के समक्ष पेश होने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त उसे विधानमंडल के दोनों सदनों या संबंधित कमेटी अथवा उस सभा में, जहां के लिए वह अधिकृत है, में बिना मताधिकार के बोलने व भाग लेने का अधिकार हैं। वह एक सरकारी कर्मी की श्रेणी में नहीं आता इसलिए उसे निजी कानूनी कार्यवाही से रोका नहीं जा सकता।

भारत का महाधिवक्ता

महान्यायवादी के अतिरिक्त भारत सरकार के अन्य कानूनी अधिकारी होते हैं। वे हैं भारत सरकार के महाधिवक्ता एवं अतिरिक्त महाधिवक्ता। वे महान्यायवादी को उसकी जिम्मेदारी पूरी करने में मदद करते हैं। यह उल्लेखनीय है कि महान्यायवादी का पद संविधान निर्मित है, दूसरे शब्दों में अनुच्छेद 76 में महाधिवक्ता एवं अतिरिक्त महाधिवक्ता का उल्लेख नहीं है। महान्यायवादी केंद्रीय कैबिनेट का सदस्य नहीं होता।

18. पंचायती राज

पंचायती राज का विकास

बलवंत राय मेहता समिति

जनवरी 1957 में भारत सरकार ने एक समिति का गठन किया। समिति ने नवंबर 1957 को अपनी जांच रिपोर्ट सौंपी और 'लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण (स्वायतत्ता)' की योजना की सिफारिश की जो कि अंतिम रूप से पंचायती राज के रूप में जाना गया। समिति द्वारा की गई विशिष्ट सिफारिशें निम्नलिखित हैं।

- इन निकायों को पर्याप्त वित्तीय स्रोत मिलने चाहिएं ताकि ये अपने कार्यों और जिम्मेदारियों को संपादित करने में समर्थ हो सके।
- ग्राम पंचायत की स्थापना प्रत्यक्ष रूप से चुने प्रतिनिधियों द्वारा होनी चाहिए, जबकि पंचायत समिति और जिला परिषद की स्थापना अप्रत्यक्ष रूप से चुने सदस्यों द्वारा होनी चाहिए।
- सभी योजना और विकास के कार्य इन निकायों को सौंपे जाने चाहिए।
- पंचायत समिति को कार्यकारी निकाय तथा जिला परिषद को सलाहकारी, समन्वयकारी और पर्यवेक्षकारी (निरीक्षक) निकाय होना चाहिए।
- तीन स्तरीय (भाग) पंचायती राज व्यवस्था की स्थापना - गांव स्तर पर ग्राम पंचायत, ब्लॉक स्तर पर पंचायत समिति, जिला स्तर पर जिला परिषद।

समिति की इन सिफारिशों को राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा जनवरी 1958 में स्वीकार किया गया। **राजस्थान देश का पहला राज्य था, जहां पंचायती राज की स्थापना हुई।** इस व्यवस्था का शिलान्यास 2 अक्टूबर, 1959 को राजस्थान के नागौर जिले में प्रधानमंत्री द्वारा किया गया। इसके बाद आंध्रप्रदेश ने इस योजना को 1959 में लागू किया।

अशोक मेहता समिति

दिसंबर 1977 में, जनता पार्टी ने अशोक मेहता की अध्यक्षता में पंचायती राज संस्थाओं पर एक समिति का गठन किया। इसने अगस्त 1978 में अपनी रिपोर्ट सौंपी। इसकी मुख्य सिफारिशें इस प्रकार हैं-

- पंचायती राज संस्थाओं के मामलों की देखरेख के लिए राज्य मंत्रिपरिषद से एक मंत्री की नियुक्ति होनी चाहिए।
- जनसंख्या के आधार पर अनुसूचित जाति व जनजाति के लिए स्थान आरक्षित होना चाहिए।
- त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था को द्विस्तरीय व्यवस्था में बदलना चाहिए।
- जिला परिषद कार्यकारी अंग होना चाहिए और वह राज्य स्तर पर योजना और विकास के लिए जिम्मेदार हो।
- राज्य के मुख्य चुनाव अधिकारी द्वारा मुख्य चुनाव आयुक्त की सलाह पर पंचायती राज चुनाव कराए जाने चाहिएं।
- विकास के कार्य जिला परिषद को स्थानांतरित होने चाहिएं और सभी विकास अधिकारी इसके नियंत्रण और देखरेख में होने चाहिए।
- सभी स्तर के पंचायती चुनावों में राजनीतिक पार्टियों की आधिकारिक भागीदारी हो।

जी.वी.के. राव और एल.एम. सिंहवी समिति

ग्रामीण विकास एवं गरीबी मुक्ति कार्यक्रम की प्रशासनिक व्यवस्था के लिए योजना आयोग द्वारा 1985 में जी.वी.के. राव की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। समिति इस निष्कर्ष पर पहुंची कि विकास प्रक्रिया दफ्तरशाही युक्त होकर पंचायत राज से विच्छेदित हो गई है। समिति ने पंचायती राज पद्धति को मजबूत और पुनर्जीवित करने हेतु विभिन्न सिफारिशें कीं। 1986 में राजीव गांधी सरकार ने 'लोकतंत्र व विकास के लिए पंचायती राज संस्थाओं के पुनर्जीवन' पर एक समिति का गठन एल.एम. सिंहवी की अध्यक्षता में किया। इसने पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक रूप से मान्य, संरक्षित एवं परिरक्षित करने की सिफारिश की। इसने नियमित, स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव कराने के संवैधानिक प्रावधान की सलाह दी।

पी.वी. नरसिम्हा राव के प्रधानमंत्रित्व में कांग्रेस सरकार ने एक बार फिर पंचायती राज को संवैधानिक करने हेतु विचार किया। सितंबर 1991 को लोकसभा में एक संविधान संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया। अंततः यह विधेयक 73वें संविधान संशोधन कानून 1992 के रूप में सम्मिलित हुआ और 25 अप्रैल, 1993 को प्रभाव में आया।

1992 का 73वां संशोधन अधिनियम

अधिनियम का महत्व

इस अधिनियम ने भारत के संविधान में एक नया भाग- IX सम्मिलित किया। इसे **'द पंचायत्स'** नाम से उल्लिखित किया गया और अनुच्छेद 243 से 243 0 तक प्रावधान सम्मिलित किए

गए। इस अधिनियम ने संविधान में एक नई 11वीं अनुसूची भी जोड़ी। इसमें पंचायतों के 29 कार्यकारी विषय है। इस अधिनियम ने संविधान के 40वें अनुच्छेद को एक प्रयोगात्मक आकार दिया। इस अधिनियम ने पंचायती राज संस्थाओं को एक संवैधानिक रूप दिया और इसे संविधान के अधिकार-क्षेत्र के अधीन लाया।

प्रमुख विशेषताएं

इस अधिनियम की महत्वपूर्ण विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

ग्राम सभा: यह कानून पंचायती राज की स्थापना के साथ ग्राम सभा प्रदान करता है। पंजीकृत मतदाताओ से मिलकर ग्राम सभा बनती है।

त्रिस्तरीय व्यवस्था: इस कानून द्वारा सभी राज्यों के लिए त्रिस्तरीय व्यवस्था प्रदान की गई हैं, ग्राम, ब्लॉक और जिला स्तर पर पंचायत। एक राज्य जिसकी जनसंख्या 20 लाख से कम हो, माध्यमिक स्तर पर पंचायतों को कायम नहीं कर सकता है।

सीटों का आरक्षण: यह कानून प्रत्येक पंचायत में (सभी तीन स्तरों पर) अनुसूचित जाति एवं जनजाति को उनकी संख्या और कुल जनसंख्या के अनुपात में सीटों पर आरक्षण उपलब्ध कराता है।

इस अधिनियम में यह व्यवस्था की गई है कि आरक्षण के मसले पर महिलाओं के लिए उपलब्ध कुल सीटों की संख्या (इसमें वह संख्या भी शामिल है जिसके तहत अनुसूचित जाति एवं जनजाति की महिलाओं को आरक्षण दिया जाता है) एक तिहाई से कम न हो।

पंचायतों का कार्यकाल: यह कानून सभी स्तरों पर पंचायतों का कार्यकाल पांच वर्ष के लिए निश्चित करता है। फिर भी, समय पूरा होने से पूर्व भी उसे विलीन कर सकता है।

अयोग्यताएं: कोई भी व्यक्ति पंचायत का सदस्य नहीं बन पाएगा यदि वह निम्न प्रकार से अयोग्य होगा। राज्य विधानमंडल द्वारा बने किसी भी नियम के अंतर्गत। लेकिन किसी भी व्यक्ति को इस बात पर अयोग्य घोषित नहीं किया जाएगा कि वह 25 वर्ष से कम आयु का है यदि वह 21 वर्ष पूरा कर चुका है।

राज्य चुनाव आयोग: चुनावी प्रक्रियाओं की तैयारी की देखरेख, निर्देशन, नियंत्रण और पंचायतों के सभी चुनावों का प्रबंध राज्य चुनाव आयोग के अधिकार में होगा। इसमें गवर्नर द्वारा मनोनीत राज्य चुनाव आयुक्त सम्मिलित हैं। इसे राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की तर्ज पर हटाने के निर्धारित तरीके के अलावा नहीं हटाया जाएगा।

शक्तियां और कार्य: राज्य विधानमंडल पंचायतों को आवश्यकतानुसार ऐसी शक्तियां और अधिकार दे सकता है जिससे कि वह स्वायत्त संस्थाओं के रूप में कार्य करने में सक्षम हों।

वित्त संबंधी अधिकार निम्न है

- राज्य विधान राज्य संगठित कोष से पंचायतों को सहायता के रूप में अनुदान प्रदान करता है।
- पंचायत को वसूली, एकत्र और उपयुक्त कर निर्धारण, चुंगी कर, शुल्क लेने का अधिकार है।
- राज्य विधान पंचायतों को करों, चुंगी, मार्ग कर और शुल्क एकत्र करने का काम सौंपता है।

वित्त आयोग: राज्य का राज्यपाल प्रत्येक 5 वर्ष में पंचायतों की वित्तीय स्थिति के अवलोकन के लिए वित्त आयोग का गठन करेगा। यह आयोग राज्यपाल को निम्न सिफारिशें करेगा-

- राज्य के संगठित कोष से पंचायतों को दी जाने वाली सहायता अनुदान।
- करों, चुंगी, मार्गकर और शुल्कों का निर्धारण जो कि पंचायतों को सौंपे गए हैं।
- राज्य और पंचायतों में एकत्र किए गए कुल करों, चुंगी, मार्ग कर एवं एकत्रित शुल्कों का बंटवारा राज्य सरकार द्वारा हो।

राज्यपाल द्वारा आयोग को दिया जाने वाला कोई भी मामला जो कि पंचायतों के मजबूत वित्त के पक्ष में हो। राज्यपाल आयोग की सिफारिशों को कार्यवाही रिपोर्ट के साथ राज्य विधानसभा के समक्ष प्रस्तुत करेगा। केंद्रीय वित्त आयोग भी राज्य में पंचायतों के पूरक स्रोतों की राज्य के संगठित कोष से वृद्धि के लिए आवश्यक गणनाओं के बारे में सलाह देगा।

लेखा परीक्षण: राज्य विधानसभा पंचायतों द्वारा की गई y§k (accounts) की देखदेख और उनके परीक्षण के लिए प्रावधान बना सकता है।

मुक्त किए गये राज्य व क्षेत्र: यह कानून जम्मू-कश्मीर, नागालैंड, मेघालय, मिजोरम और कुछ अन्य क्षेत्रों पर लागू नहीं होता। इन क्षेत्रों के अंतर्गत (अ) राज्यों के अनुसूचित जाति और जनजाति क्षेत्रों में (ब) मणिपुर के उन पहाड़ी क्षेत्रों में जहां जिला परिषद अस्तित्व में हो। (स) पं. बंगाल के दार्जिलिंग जिले जहां पर दार्जिलिंग गोरखा हिल परिषद अस्तित्व में है।

न्यायालय के हस्तक्षेप पर रोक: यह कानून पंचायत के चुनावी मामलों में हस्तक्षेप पर रोक लगाता है। यह घोषित करता है कि चुनाव क्षेत्र और इन चुनाव क्षेत्र में में सीटों के विभाजन संबंधी मुद्दों को न्यायालय के समक्ष पेश नहीं किया जा सकता।

11वीं अनुसूची: इसमें पंचायतों के कानून क्षेत्र के साथ 29 क्रियाशील विषय समाहित है-

- महिला एवं बाल विकास।
- सामाजिक समृद्धि जिसमें विकलांग व मानसिक रोगी की समृद्धि निहित है।
- कमजोर वर्ग की समृद्धि जिसमें विशेषकर अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति वर्ग शामिल हैं।
- लोक विभाजन पद्धति।
- सार्वजनिक संपत्ति की देखरेख।
- वनजीवन तथा कृषि खेती (वनों में)।
- लघु वन उत्पत्ति।
- लघु उद्योग, जिसमें खाद्य उद्योग सम्मिलित है।
- कृषि जिसमें कृषि विस्तार सम्मिलित है।
- भूमि विकास, भूमि सुधार लागू करना, भूमि संगठन एवं भूमि संरक्षण।
- लघु सिंचाई, जल प्रबंधन और नदियों के मध्य भूमि विकास।
- पशुपालन, दुग्ध व्यवसाय तथा मुर्गीपालन।
- मत्स्य उद्योग।
- खादी, ग्राम एवं कुटीर उद्योग।
- ग्रामीण विकास।
- पीने वाला पानी।
- ईंधन तथा पशु चारा।
- सड़कों, पुलों, तटों, जलमार्ग तथा अन्य संचार के साधन।
- ग्रामीण विद्युत जिसमें विद्युत विभाजन समाहित है।
- गैर परंपरागत ऊर्जा स्रोत।
- गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम।
- प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा संबंधी विद्यालय।
- यांत्रिक प्रशिक्षण एवं व्यावसायिक शिक्षा।
- वयस्क एवं गैर-वयस्क औपचारिक शिक्षा।
- पुस्तकालय।
- सांस्कृतिक कार्य।
- बाजार एवं मेले।
- स्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य संबंधी संस्थाएं जिनमें अस्पताल, प्राथमिक व्यवस्था केंद्र तथा दवाखाने शामिल है।
- पारिवारिक समृद्धि।

19. शहरी स्थानीय शासन

भारत में 'शहरी स्थानीय शासन' का अर्थ शहरी क्षेत्र के लोगों द्वारा चुने प्रतिनिधियों से बनी सरकार से हैं। शहरी स्थानीय शासन का अधिकार क्षेत्र उन निर्दिष्ट शहरी क्षेत्रों तक सीमित है जिसे प्रदेश सरकार द्वारा इस उद्देश्य के लिए निर्धारित किया गया है। सितंबर 1991 में पी.वी. नरसिम्हा राव सरकार ने लोकसभा में नया नगरपालिका बिल पेश किया। अंततः यह 74वें संविधान संशोधन कानून के रूप में शामिल हुआ और 1 जून, 1993 को प्रभाव में आया।

1992 का 74वां संशोधन कानून

इस कानून ने भारत के संविधान में नया भाग IX-A शामिल किया। इसे 'नगरपालिकाएं' नाम दिया गया और अनुच्छेद 243-P से 243-ZG तक प्रावधान शामिल किए गए। इस अधिनियम ने संविधान में एक नई 12वीं अनुसूची को भी जोड़ा। इसमें नगरपालिकाओं की 18 कार्यकारी विषय शामिल है।

प्रमुख विशेषताएं: अधिनियम की प्रमुख विशेषताएं निम्न हैं-

तीन प्रकार की नगरपालिकाएं: यह अधिनियम प्रत्येक राज्य में निम्न तीन तरह की नगरपालिकाओं की संरचना प्रदान करता है-

- नगर पंचायत (किसी भी नाम से) परिवर्तित क्षेत्र के लिए, जैसे वह क्षेत्र जिसे ग्रामीण क्षेत्र से शहरी क्षेत्र में परिवर्तित किया जा सके।
- नगरपालिका परिषद (छोटे शहरी क्षेत्रों के लिए)
- बड़े शहरी क्षेत्रों के लिए महानगरपालिका।

संरचना (बनावट): नगरपालिका के सभी सदस्य सीधे नगरपालिका क्षेत्र के लोगों द्वारा चुने जाएंगे। इस उद्देश्य के लिए, प्रत्येक नगरपालिकाओं को निर्वाचन क्षेत्रों (वार्ड) में बांटा जाएगा। राज्य विधानमंडल नगरपालिका के अध्यक्ष के निर्वाचन का तरीका प्रदान कर सकता है। यह नगरपालिका में निम्न सदस्यों के प्रतिनिधित्व की भी सहमति दे सकता है-

- वह व्यक्ति जिसे नगरपालिका के प्रशासन का विशेष ज्ञान अथवा अनुभव हो लेकिन उसे नगरपालिका की सभा में वोट डालने का अधिकार नहीं होगा।
- नगरपालिका क्षेत्र के निर्वाचन क्षेत्र का लोकसभा या राज्य विधानसभा के सदस्यों द्वारा पूर्ण या अंशतः प्रतिनिधित्व किया जा सकता है।
- राज्यसभा और राज्य विधानपरिषद के ऐसे सदस्य जो नगरपालिका क्षेत्र के साथ मतदाता के रूप में पंजीकृत हों।
- समिति के अध्यक्ष (वार्ड समितियों के अतिरिक्त)।

वार्ड समितियां:

तीन लाख या अधिक जनसंख्या वाली नगरपालिका के क्षेत्र के तहत एक या अधिक वार्डों को मिलाकर वार्ड समितियां बनती है।

पदों का आरक्षण :

यह एक्ट अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति को उनकी जनसंख्या और कुल नगरपालिका क्षेत्र की जनसंख्या के अनुपात में प्रत्येक नगरपालिका में आरक्षण प्रदान करता है। इसके अलावा यह महिलाओं को कुल सीटों के एक-तिहाई (इसमें अनुसूचित जाति व जनजाति महिलाओं से संबंधित आरक्षित सीटें भी हैं) सीटों पर आरक्षण प्रदान करता है।

नगरपालिकाओं का कार्यकाल: यह अधिनियम प्रत्येक नगरपालिका का कार्यकाल अवधि 5 वर्ष निर्धारित करता है।

अयोग्यताएं: नगरपालिका के चुने हुए सदस्य निम्न बातों पर अयोग्य घोषित किए जा सकते हैं-

- राज्य के विधान से संबंधित किसी चुनावी उद्देश्य के प्रभाव में अल्प अवधि के लिए किसी नियम के अंतर्गत।
- राज्य विधान द्वारा बनाए गए नियम के अंतर्गत, फिर भी किसी व्यक्ति को 25 वर्ष से कम आयु की शर्त पर अयोग्य घोषित नहीं किया जा सकेगा यदि वह 21 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो।

राज्य चुनाव आयोग:

चुनावी प्रक्रियाओं के देख-रेख, निर्देशन एवं नियंत्रण और नगरपालिकाओं के सभी चुनावों का प्रबंधन राज्य चुनाव आयोग के अधिकार में होगा।

शक्तियां और कार्य:

राज्य विधानमंडल नगरपालिकाओं को आवश्यकतानुसार ऐसी शक्तियां और अधिकार दे सकता है जिससे कि वे स्वायत्त सरकारी संस्था के रूप में कार्य करने में सक्षम हों।

वित्त (राजस्व): संबंधी निम्न अधिकार है-

- नगरपालिका को वसूली, उपयुक्त कर निर्धारण, चुंगी, यात्री कर, शुल्क लेने का अधिकार है।
- राज्य संगठित कोष से नगरपालिकाओं को सहायता के रूप में अनुदान प्रदान करता है।

वित्त आयोग:

वित्त आयोग (जो पंचायतों के लिए गठित किया गया है।) भी प्रत्येक 5 वर्ष में नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति का पुनरावलोकन करेगा और गवर्नर को निम्न सिफारिशें करेगा-

- राज्य और नगरपालिकाओं में एकत्र किए गए कुल करों, चुंगी, मार्ग एवं संग्रहित शुल्कों का बंटवारा राज्य सरकार द्वारा हो।
- करों, चुंगी, पथकर और शुल्कों का निर्धारण जो कि नगरपालिकाओं को सौंपे गए हैं।
- राज्य के संगठित कोष से नगरपालिकाओं को दिए जाने वाले सहायकता अनुदान।
- पंचायतों की वित्तीय स्थिति के सुधार के लिए आवश्यक गणना।
- राज्यपाल द्वारा आयोग को दिया जाने वाला कोई भी मामला जो पंचायतों के मजबूत वित्त के पक्ष में हो।

केंद्रीय वित्त आयोग भी राज्य में नगरपालिकाओं के पूरक स्रोतों की राज्य के संगठित कोष से वृद्धि के लिए (राज्य वित्त आयोग द्वारा दी गई सिफारिशों के आधार पर) आवश्यक गणनाओं के बारे में सलाह देगा।

मुक्त किए राज्य व क्षेत्र: यह अधिनियम राज्यों के अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति क्षेत्रों पर लागू नहीं होता। यह एक्ट प. बंगाल की दार्जिलिंग गोरखा परिषद की शक्तियों और कार्यवाही को प्रभावित नहीं करता।

जिला योजना समिति: प्रत्येक राज्य जिला स्तर पर एक जिला योजना समिति का गठन करेगा जो जिले की पंचायतों एवं नगरपालिकाओं द्वारा तैयार योजना को संगठित करेगी और जिला स्तर पर एक विकास योजना का प्रारूप तैयार करेगी।

महानगरीय योजना समिति: प्रत्येक महानगर क्षेत्र में विकास योजना के प्रारूप को तैयार करने हेतु एक महानगरीय योजना समिति होगी। राज्य विधानमंडल इस संबंध में निम्न प्रावधान बना सकता है-

- इन समिति के सदस्यों के निर्वाचन का तरीका,
- केंद्र सरकार, राज्य सरकार तथा अन्य संस्थाओं का इन कमेटियों में प्रतिनिधित्व,

इस एक्ट के अंतर्गत महानगरीय योजना समिति के 2/3 सदस्य महानगर क्षेत्र में नगरपालिका के निर्वाचित सदस्यों एवं पंचायतों के अध्यक्षों की जनसंख्या के अनुपात में समानुपाती होनी चाहिये।

न्यायालय के हस्तक्षेप पर रोक: यह अधिनियम नगरपालिकाओं के चुनाव संबंधी मामलों में न्यायालय के हस्तक्षेप पर रोक लगाता है। यह घोषित करता है कि चुनाव क्षेत्र और इन चुनाव क्षेत्र में सीटों के विभाजन संबंधी मुद्दों को न्यायालय के समक्ष पेश नहीं किया जा सकता।

12वीं सूची: इसमें नगरपालिकाओं के कानून क्षेत्र के साथ 18 क्रियाशील विषयवस्तु समाहित हैं।

- शहरी योजना (Urban planning) जिसमें शहर की योजना (town) सम्मिलित है।
- प्रयोग में लायी भूमि को नियमित करना और भवन निर्माण।
- आर्थिक एवं सामाजिक विकास योजना।
- सड़कें एवं पुल।
- घरेलू, औद्योगिक एवं व्यावसायिक उददे्श्य के लिए जलापूर्ति।
- लोक सेवा, स्वास्थ्य संबंधी, सरंक्षणता और ठोस क्षय प्रबंध न।
- अग्नि सेवाएं।
- नगर वानिकी, पर्यावरण संरक्षण एवं पारिस्थितिकी संबंधी प्रगति।
- समाज के कमजोर वर्गों के हितों का संरक्षण, जिनमें मानसिक रोगी व विकलांग शामिल है।
- बस्तियों का सुधार तथा उन्नति।
- शहरी गरीबी का शमन।
- शहरी सुख-साधन व अनुकूलताओं का प्रावधान; जैसे- पार्क, बगीचे व खेल मैदान।
- सांस्कृतिक, शैक्षिक व सौंदर्य संबंधी पहलुओं को बढ़ावा।
- कब्र तथा कब्रिस्तान, दाहक्रिया व श्मशान घाट और विद्युत शवदाहगृह।
- मवेशियों के पीने के पानी के तालाब, पशु अत्याचार निवारण।
- जन्म व मृत्यु से संबंधित महत्वपूर्ण संख्यिकी।

- जन सुविधाएं जिनमें मार्गों पर विद्युत व्यवस्था, पार्किंग स्थल, बस स्टैंड तथा सार्वजनिक हित सम्मिलित हैं।
- कसाई खानों व चर्म शिल्पकारी का नियमन।

शहरी शासनों के प्रकार

महानगरपालिका

महानगरपालिकाओं का निर्माण बड़े शहरों जैसे दिल्ली, मुंबई, कोलकाता, हैदराबाद, बंगलोर तथा अन्य शहरों के लिए है। यह संबंधित राज्य विधानमंडल के कानून द्वारा राज्यों में स्थापित हुईं तथा भारत की संसद के एक्ट द्वारा केंद्रशासित क्षेत्र में, जिनमें एक साझा एक्ट सभी प्रदेश की महानगरपालिकाओं के लिए हो सकता है या सभी महानगरपालिकाओं के लिए अलग-अलग अधिनियम।

महानगरपालिकाओं के तीन अधिकार क्षेत्र जिनमें परिषद, स्थायी समिति तथा आयुक्त आते हैं। परिषद का प्रधान मेयर होता है। उपमेयर उसका सहायक होता है। वह परिषदों की सभा की अध्यक्षता करता है। स्थायी समिति परिषद के कार्य को सगुम बनाने के लिए गठित की जाती है जो कि आकार में बहुत बड़ी है। नगरपालिका आयुक्त परिषद और स्थायी समिति द्वारा लिए निर्णयों को लागू करने के लिए जिम्मेदार है अत: वह नगरपालिका का मुख्य अधिकारी है।

नगरपालिका

नगरपालिकाएं कस्बों और छोटे शहरों के प्रशासन के लिए स्थापित की गईं। महानगरपालिकाओं की तरह, यह भी राज्य विधानमंडल के संबंधित एक्ट द्वारा गठित की गई हैं और केंद्रशासित राज्यो में भारत की संसद के द्वारा गठित की गई हैं। यह अन्य नामों, जैसे नगरपालिका परिषद, नगरपालिका समिति, नगरपालिका बोर्ड, उपनगरीय नगरपालिका, शहरी नगरपालिका तथा अन्य नाम से भी जानी जाती हैं।

महानगरपालिका की तरह, नगरपालिका के पास भी परिषद, स्थायी समिति तथा मुख्य कार्यकारी परिषद नामक अधिकार क्षेत्र आते हैं। परिषद का प्रधान अध्यक्ष होता है। उपाध्यक्षता उसका सलाहकार होता है। मुख्य कार्यकारी अधिकारी नगरपालिका के प्रत्येक दिन के प्रशासन का जिम्मेदार होता है। वह राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किया जाता है।

सूचीबद्ध क्षेत्रीय (Notified Area) समिति

सूचीबद्ध क्षेत्रीय समिति का गठन दो प्रकार के क्षेत्र के प्रशासन के लिए किया जाता है- औद्योगीकरण के कारण विकासशील कस्बा और वह कस्बा जिसने अभी तक नगरपालिका के गठन की आवश्यक शर्तें पूरी नहीं की हों लेकिन राज्य सरकार द्वारा वह महत्वपूर्ण माना गया है।

कस्बाई क्षेत्रीय समिति

कस्बाई क्षेत्रीय समिति छोटे कस्बों में प्रशासन के लिए गठित की जाती है। यह एक उपनगरपालिका आधिकारिक इकाई है और इसे सीमित नागरिक सेवाएं; जैसे निकासी, सड़कें, मार्गों में प्रकाश व्यवस्था और सरंक्षणता की जिम्मेदारी दी जाती है। यह राज्य विधानमंडल के एक अलग कानून द्वारा गठित किया जाता है।

छावनी परिषद

छावनी क्षेत्र में नागरिक जनसंख्या के प्रशासन के लिए छावनी परिषद की स्थापना की गई है। इसे 1924 के छावनी एक्ट के प्रावधान के अंतर्गत गठित किया गया है, जो केंद्र सरकार द्वारा बनाया गया कानून है। यह केंद्रीय सरकार के रक्षा मंत्रालय के प्रशासनिक नियंत्रण के अधीन कार्य करता है। अत: ऊपरी दी गई स्थानीय शहरी इकाइयों के विपरीत जो कि राज्य द्वारा प्रशासित और गठित की गई हैं, छावनी परिषद केंद्र सरकार द्वारा गठित और प्रशासित की जाती है।

इस समय, देश में 63 छावनी परिषदें है। एक छावनी परिषद में आंशिक रूप से निर्वाचित या मनोनीत सदस्य शामिल हैं। निर्वाचित सदस्य 3 वर्ष की अवधि के लिए जबकि मनोनीत सदस्य (कार्यालय के सेवानिवृत सदस्य) उस स्थान पर लंबे समय तक रहते हैं। छावनी कार्य नगरपालिका के समान होते हैं। छावनी परिषद के कार्यकारी अधिकारी की नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा होती है।

नगरीयकरण

इस तरह का शहरी प्रशासन वृहत सार्वजनिक उपक्रमों द्वारा स्थापित किया जाता है। जो उद्योगों के निकट बनी आवासीय क्षेत्र में रहने वाले अपने कर्मचारियों को सुविधाएं प्रदान करती है। यह उपक्रम नगर के प्रशासन की देखरेख के लिए एक नगर प्रशासक नियुक्त करता है।

बंदरगाह संघ

बंदरगाह संघ की स्थापना बंदरगाह क्षेत्रों जैसे मुंबई, कोलकाता, चेन्नई और अन्य में मुख्य रूप से दो उद्देश्यों के लिए की गई-

- बंदरगाहों की सुरक्षा व व्यवस्था।
- नागरिक सुविधाएं प्रदान करना।

बंदरगाह संघ का गठन संसद के एक्ट द्वारा किया गया है। निर्वाचित और गैरनिर्वाचित दोनों प्रकार के सदस्य सम्मिलित हैं।

विशेष उद्देश्य हेतु अभिकरण :

इन 7 क्षेत्रीय आधार वाली शहरी इकाइयों (या बहुउद्देशीय इकाइयां) के साथ, राज्यों ने विशेष कार्यों के नियंत्रण हेतु विशेष प्रकार के अभिकरणों (Agencies) का गठन किया है जो महानगरपालिकाओं या नगरपालिकाओं या अन्य स्थानीय शासनों के समूह से संबंधित है। कुछ इस तरह की इकाईयां इस प्रकार हैं-

- नगरीय सुधार संघ (trusts)।
- शहरी सुधार शक्ति (authorities)।
- जलापूर्ति एवं निकासी बोर्ड।
- आवासीय बोर्ड।
- पर्यावरण नियंत्रण बोर्ड।
- विद्युत आपूर्ति बोर्ड।
- शहरी यातायात बोर्ड।

यह कार्यकारी स्थानीय इकाईयां, कानूनी इकाइयों के रूप में राज्य विधानमंडल के विशेष प्रस्ताव द्वारा स्थापित की जाती हैं।

20. निर्वाचन एवं निर्वाचन आयोग

निर्वाचन

निर्वाचन व्यवस्था

निर्वाचन व्यवस्था संविधान के भाग - XV में अनुच्छेद 324 से 329 तक चुनावों या निर्वाचन से संबंधित निम्न प्रावधानों का उल्लेख है-

- संविधान के अनुसार संसद अथवा राज्य विधायिका के चुनावों पर प्रश्नचिह्न नहीं लगाया जा सकता, केवल एक चुनाव याचिका जो ऐसे प्राधिकारी के समक्ष ऐसे तरीके से प्रस्तुत की जाए जिसका प्रावधान विधायिका ने किया हो। 1966 से चुनावी याचिका पर सुनवाई अकेले उच्च न्यायालय करता है किंतु अपील का अधिकार क्षेत्र केवल उच्चतम न्यायालय में है।
- कोई व्यक्ति मतदाता सूची में नामित होने के लिए केवल धर्म, नस्ल, लिंग अथवा इसमें से किसी एक के आधार पर अयोग्य नहीं हो सकता।
- संसद उन सभी व्यवस्थाओं का प्रावधान कर सकती है जो संसद तथा राज्य विधायिकाओं के चुनाव मतदाता सूची की तैयारियों, निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन तथा सभी मामले जो संवैधानिक व्यवस्थाओं की सुरक्षा के लिए आवश्यक हैं।
- राज्य विधायिका भी स्वयं के चुनावों से संबंधित सभी मामलों में, मतदाता सूची की तैयारियों के संबंध में तथा संबंधित संवैधानिक व्यवस्थाओं की सुरक्षा के लिए आवश्यक सभी मामलों में प्रावधान बना सकती है।
- लोकसभा तथा राज्य विधानसभा के लिए चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर होता है।
- संविधान घोषणा करता है कि निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन अथवा इन निर्वाचन क्षेत्रों के लिए आबंटित स्थानों से संबंधित कानूनों पर न्यायालय में प्रश्न नहीं उठाया जा सकता। परिणामस्वरूप परिसीमन आयोग द्वारा पारित आदेश अंतिम होते हैं तथा उन्हें किसी भी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती।
- संविधान (अनु. 324) देश में स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनावों के लिए स्वतंत्र चुनाव आयोग या निर्वाचन आयोग की व्यवस्था करता है। संसद, राज्य विधायिका, राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति के चुनावों के अधीक्षण, निर्देशन तथा प्रबंध की शक्ति चुनाव आयोग में निहित है। वर्तमान समय में चुनाव आयोग में एक मुख्य चुनाव आयुक्त तथा दो चुनाव आयुक्त होते हैं।

चुनाव सुधार

मतदान की उम्र में कमी: 1988 के 61वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा लोकसभा तथा विधानसभा चुनावों के लिए मतदान की उम्र को 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दिया गया।

प्रस्तावकों की संख्या में वृद्धि: 1988 में राज्यसभा तथा राज्य विधानपरिषद चुनाव के लिए नामांकन पत्र के प्रस्ताव के लिए आवश्यक निर्वाचकों की संख्या को बढ़ाकर निर्वाचन क्षेत्र की जनसंख्या का दस प्रतिशत अथवा 10 निर्वाचक, जो कम हो, कर दी गई।

इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन: 1989 में चुनावों में इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (ईवीएस) के इस्तेमाल का प्रावधान किया गया। ईवीएम का प्रथम बार प्रयोग प्रायोगिक तौर पर 1998 में राजस्थान, मध्यप्रदेश तथा दिल्ली विधानसभा के चुनावों में चुनिंदा निर्वाचन क्षेत्रों में किया गया था। ईवीएम का पहला प्रयोग (पूरे राज्य में) 1999 में गोवा विधानसभा के आम चुनावों में किया गया था।

मतदान केंद्रों में कब्जा: 1989 में प्रावधान किया गया कि मतदान केंद्रों में लूट के कारण मतदान को स्थागित अथवा रद्द किया जा सकता है।

उम्मीदवारों के नाम की सूची बनाना: चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों के नाम की सूची बनाने के लिए उनको तीन श्रेणियों में विभाजित किया जाता है। ये इस प्रकार हैं-

- दूसरे (निर्दलीय) उम्मीदवार।
- मान्यता प्राप्त दलों के उम्मीदवार।
- गैर मान्यता प्राप्त पंजीकृत उम्मीदवार।

राष्ट्रीय सम्मान अधिनियम के अपमान हेतु अयोग्यता: राष्ट्रीय सम्मान का अपमान करने पर अयोग्यता संबंधी कानून के तहत निम्नलिखित आरोपों में दोषी पाए जाने वाला व्यक्ति संसद तथा विधायिका के चुनाव लड़ने के लिए छह वर्षों के लिए अयोग्य होगा।

- राष्ट्रीय गान को गाने से रोकने का आरोप।
- भारतीय संविधान के अपमान का आरोप।
- राष्ट्रीय ध्वज के अपमान का आरोप।

शराब की बिक्री पर रोक: शराब या अन्य कोई मादक पदार्थ चुनाव समाप्त होने के 48 घंटे पूर्व तक चुनावी क्षेत्र में सार्वजनिक अथवा निजी किसी दुकान, खाद्य स्थल, होटल अथवा किसी अन्य स्थान पर, नहीं बेचा जा सकता।

प्रस्तावकों की संख्या: मान्यता प्राप्त दल का समर्थन प्राप्त न होने पर किसी संसदीय या विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र से चुनाव लड़ने के इच्छुक उम्मीदवार के नामांकन पत्र पर उस निर्वाचन क्षेत्र के 10 मतदाताओं के हस्ताक्षर एक प्रस्तावक की तरह होने चाहिये। किंतु किसी मान्यता प्राप्त राजनैतिक दल का समर्थन प्राप्त उम्मीदवार के लिए मात्र एक प्रस्तावक ही आवश्यक है।

उम्मीदवार की मृत्यु: चुनाव से ठीक पहले उम्मीदवार की मृत्यु होने पर चुनाव रद्द नहीं किया जाता। अपितु पीड़ित उम्मीदवार से संबंधित दल का दूसरे उम्मीदवार का प्रस्ताव करने के लिए सात दिन का समय दिया जाता है।

उप-चुनावों की सीमा: संसद अथवा राज्य विधानसभा में स्थान रिक्त होने पर उप चुनाव छह माह के भीतर करा लेना चाहिए किंतु दो मामलों में यह शर्त लागू नहीं होती-

- जब चुनाव आयोग केंद्र सरकार के परामर्श से यह प्रामाणित कर दे कि उपरोक्त समय में उपचुनाव करा पाना कठिन है।
- जहां सदस्य, जिसका स्थान भरा जाता है, का शेष कार्यकाल एक वर्ष से कम बचा हो, अथवा

मतदान के दिन कर्मचारियों को अवकाश: किसी भी व्यापार, कार्य, उद्योग अथवा किसी दूसरे संस्थान में कार्यरत पंजीकृत मतदाता को मतदान के दिन वैतनिक अवकाश दिया जाता है।

दो निर्वाचन क्षेत्रों का प्रतिबंध: कोई भी उम्मीदवार साथ-साथ हो रहे आम चुनाव अथवा उपचुनाव में 2 से ज्यादा संसदीय अथवा विधानसभा निर्वाचन क्षेत्रों से चुनाव लड़ने के लिए योग्य नहीं होगा।

प्रभावी प्रचार समय में कमी: नाम वापसी की अंतिम तिथि तथा मतदान की तिथि के मध्य न्यूनतम अंतर 20 दिन से घटाकर 14 दिन कर दिया गया है।

राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति का चुनाव: 1997 में राष्ट्रपति पद का चुनाव लड़ने के लिए प्रस्तावकों और अनुमोदक मतदाताओं की संख्या 10 से बढ़ाकर 50 तथा उपराष्ट्रपति पद का चुनाव लड़ने के लिए प्रस्तावकों तथा अनुमोदक मतदाताओं की संख्या 5 से बढ़ाकर 20 कर दी गई। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति दोनों पदों के चुनाव में निरर्थक उम्मीदवारों को हतोत्साहित करने के लिए जमानत राशि 2500 रु. से बढ़ाकर 15000 रु. कर दी गई।

डाक मतपत्र द्वारा मतदान: 1999 में कुछ निश्चित वर्ग के व्यक्तियों के मतदान के लिए डाक मतपत्र का प्रावधान किया गया।

निर्वाचन आयोग

निर्वाचन आयोग एक स्थायी व स्वतंत्र संस्था है। इसका गठन भारत के संविधान द्वारा देश में साफ-सुथरे चुनाव कराने के लिए किया गया। संविधान के अनुच्छेद 324 के अनुसार संसद, राज्य विधानमंडल, राष्ट्रपति के पदों के निर्वाचन के लिए संचालन, निर्देशन व नियंत्रण की जिम्मेदारी चुनाव आयोग की है। उल्लेखनीय है कि राज्यों में होने वाले पंचायतों व निगम चुनावों में चुनाव आयोग का कोई संबंध नहीं है। इसके लिए भारत के संविधान में अलग राज्य चुनाव आयोग की व्यवस्था की गई है।

संगठन या रचना

संविधान के अनुच्छेद-324 में चुनाव आयोग के संबंध में निम्नलिखित प्रावधान हैं:

- चुनाव आयोग का गठन मुख्य चुनाव आयुक्त, अन्य निर्वाचन आयुक्त एवं समय-समय पर राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त आयुक्तों से मिलकर होता है।
- मुख्य निर्वाचन आयुक्त और अन्य निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जानी चाहिए।
- जब कोई अन्य निर्वाचन आयुक्त इस प्रकार नियुक्त किया जाता है तब मुख्य निर्वाचन अधिकारी चुनाव आयोग के अध्यक्ष के रूप में काम करेगा।
- राष्ट्रपति, चुनाव आयोग की सलाह पर प्रादेशिक आयुक्तों की नियुक्ति कर सकता हैं, जिसे वह चुनाव आयोग की सहायता के लिए आवश्यक समझे।

मुख्य निर्वाचन आयुक्त व दो अन्य निर्वाचन आयुक्तों के पास समान शक्ति होती है और वेतन, भत्ता व अन्य दूसरे लाभ भी एकसमान होते हैं जो सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के समान होते हैं। ऐसी स्थिति में जब मुख्य निर्वाचन आयुक्त व दो अन्य निर्वाचन आयुक्तों के बीच विचार में मतभेद होता है तो आयोग बहुमत के आधार पर निर्णय करता है।

उनका कार्यकाल छह वर्ष का होता है या 65 वर्ष की आयु तक, जो पहले हो। वे किसी भी समय त्यागपत्र दे सकते हैं या उन्हें कार्यकाल समाप्त होने से पूर्व भी हटाया जा सकता है।

स्वतंत्रता

संविधान के अनुच्छेद - 324 में चुनाव आयोग के स्वतंत्र व निष्पक्ष कार्य करने के लिए निम्नलिखित प्रावधान हैं-

- मुख्य निर्वाचन आयुक्त को अपनी निर्धारित पदावधि में काम करने की सुरक्षा है। मुख्य निर्वाचन आयुक्त को उसके पद से उसी रीति से व उन्हीं आधारों पर ही हटाया जा सकता है जिस रीति व आधारों पर सर्वोच्च न्यायालय के

न्यायाधीशों को हटाया जाता है, अन्यथा नहीं। दूसरे शब्दों में, उन्हें दुर्व्यवहार, अयोग्यता के आधार पर संसद के दोनों सदनों द्वारा प्रस्ताव पारित करने के बाद राष्ट्रपति द्वारा हटाया जा सकता है।

- अन्य निर्वाचन आयुक्त या प्रादेशिक आयुक्त मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सिफारिश पर ही हटाया जा सकता है, अन्यथा नहीं।
- मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सेवा की शर्तों में उनकी नियुक्ति के पश्चात उसके लिए अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

शक्ति और कार्य

संसद, राज्य के विधानमंडल, राष्ट्रपति व उपराष्ट्रपति के पदों के निर्वाचन के संदर्भ में चुनाव आयोग की शक्ति व कार्यों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है–

- अर्द्ध-न्यायिक।
- सलाहकारी।
- प्रशासनिक

विस्तार में शक्ति व कार्य इस प्रकार हैं-

- शरारत, मतदान केंद्र लूटना, हिंसा व अन्य अनियमितताओं के आधार पर चुनाव रद्द करना।
- चुनाव के मद्देनजर राजनीतिक पार्टियों को पंजीकृत करना तथा चुनाव में प्रदर्शनों के आधार पर उसे राष्ट्रीय या राज्य पार्टी का दर्जा देना।
- समय-समय पर निर्वाचन-नामावली तैयार करना और सभी योग्य मतदाताओं को पंजीकृत करना।
- चुनाव की तारीख और सारणी निर्धारित करना एवं नामांकन पत्रों का परीक्षण करना।
- निर्वाचन व्यवस्था से संबंधित विवाद की जांच-परख के लिए अधिकारी नियुक्त करना।
- चुनाव के वक्त दलों व उम्मीदवारों के लिए आचार संहिता निर्मित करना।
- संसद सदस्य की अयोग्यता से संबंधित मामलों पर राष्ट्रपति को सलाह देना।
- राजनीतिक दलों को मान्यता देना और उन्हें चुनाव चिह्न देना।
- विधानपरिषद के सदस्यों की अयोग्यता से संबंधित मसलों पर राज्यपाल को परामर्श देना।
- संसद के परिसीमन आयोग अधिनियम के आधार पर समस्त भारत के निर्वाचन क्षेत्रों का भू-भाग निर्धारित करना।

21. संघ लोक सेवा आयोग एवं राज्य लोक सेवा आयोग

संघ लोक सेवा आयोग भारत का केंद्रीय भर्ती अभिकरण (संस्था) है। यह स्वतंत्र संवैधानिक निकाय या संस्था है क्योकि इसका गठन संविधानिक प्रावधानों के माध्यम से किया गया है। संविधान के 14वें भाग में अनुच्छेद 315 से 323 में संघ लोक सेवा आयोग (यूपीएससी) की स्वतंत्रता व शक्तियां व कार्य के अलावा इसके संयोजन तथा सदस्यों की नियुक्तियां व बर्खास्तगी का विस्तार से वर्णन किया गया है।

गठन

संघ लोक सेवा आयोग में एक अध्यक्ष व कई सदस्य होते हैं, जो भारत के राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। संविधान में आयोग की सदस्य संख्या का उल्लेख नहीं है। यह राष्ट्रपति के ऊपर छोड़ दिया गया है जो आयोग का संयोजन निर्धारित करता है। साधारणतया आयोग में अध्यक्ष समेत नौ से ग्यारह सदस्य होते हैं। संविधान ने राष्ट्रपति को अध्यक्ष तथा सदस्यों की सेवा की शर्तें निर्धारित करने का अधिकार दिया है।

आयोग के अध्यक्ष पद ग्रहण करने की तारीख से छह वर्ष की अवधि तक या 65 वर्ष की आयु तक, इनमें से जो भी पहले हो, अपना पद धारण करता है। वे कभी भी राष्ट्रपति को संबोधित कर त्यागपत्र दे सकते हैं। राष्ट्रपति दो परिस्थितियों में संघ लोक सेवा आयोग के एक सदस्य को कार्यवाहक अध्यक्ष नियुक्त कर सकता है–

- जब अध्यक्ष अपना काम अनुपस्थिति या अन्य दूसरे कारणों से नहीं कर पा रहा हो।
- जब अध्यक्ष का पद रिक्त हो।

पद से हटाना

राष्ट्रपति संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या दूसरे सदस्यों को निम्नलिखित परिस्थितियों में हटा सकता है-

- अगर राष्ट्रपति ऐसा समझता है कि वह मानसिक या शारीरिक अक्षमता के कारण पद पर बने रहने योग्य नहीं है।
- अगर उसे दिवालिया घोषित कर दिया जाता है।
- अपनी पदावधि के दौरान अपने पद के कर्त्तव्यों के बाहर किसी से वेतन नियोजन में लगा हो।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति आयोग के अध्यक्ष या दूसरे सदस्यों को उनके कदाचार के कारण भी हटा सकता है। किंतु ऐसे मामलों में राष्ट्रपति को जांच के लिए सर्वोच्च न्यायालय में भेजना होता है। अगर सर्वोच्च न्यायालय जांच के बाद बर्खास्त करने का परामर्श का समर्थन करता है तो राष्ट्रपति, अध्यक्ष या दूसरे सदस्यों को हटा सकते हैं। संविधान के इस प्रावधान के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस मामले में दी गई सलाह राष्ट्रपति के लिए बाध्य है। संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या अन्य सदस्य को कदाचार का दोषी माना जाएगा, अगर वह (क) भारत सरकार या राज्य सरकार की किसी संविदा या करार में संबंधित है। (ख) निगमित कंपनी के सदस्य और कंपनी के अन्य सदस्यों के साथ सम्मिलित रूप से संविदा या करार में लाभ के लिए भाग लेता है।

स्वतंत्रता

संविधान में संघ लोक सेवा आयोग को निष्पक्ष व स्वतंत्र कार्य करने के लिए निम्नलिखित प्रावधान हैं–

- संघ लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष या सदस्य कार्यकाल के बाद के पुन: नहीं नियुक्त किया जा सकता (दूसरे कार्यकाल के लिए योग्य नहीं)।
- संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या सदस्यों को राष्ट्रपति संविधान में वर्णित आधारों पर ही हटा सकते हैं।
- संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या सदस्य को वेतन, भत्ता व पेंशन सहित सभी खर्चे भारत की संचित निधि से मिलते हैं।
- संघ लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष (कार्यकाल के बाद) भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार के अधीन किसी और नियोजन (नौकरी) का पात्र नहीं हो सकता।
- हालांकि अध्यक्ष या सदस्य की सेवा की शर्तें राष्ट्रपति तय करते हैं लेकिन नियुक्ति के बाद अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

कार्य

संघ लोक सेवा आयोग के कार्यों का वर्णन निम्नानुसार है-

- अल्पकालीन नियुक्ति एक वर्ष से अधिक तक व नियुक्तियों की नियमितकरण से संबंधित विषय।
- सेवा के विस्तार व कुछ सेवानिवृत नौकरशाहों की पुनर्नियुक्ति से संबंधित मसला।
- संघ लोक सेवा आयोग हर वर्ष अपने कामों की रिपोर्ट राष्ट्रपति को देता है।
- संघ लोक सेवा आयोग राज्य (दो या अधिक राज्य द्वारा अनुरोध करने) को किसी ऐसी सेवाओं के लिए जिसके लिए विशेष अर्हता वाले अभ्यर्थी अपेक्षित है, उनके लिए संयुक्त भर्ती की योजना व प्रवर्तन करने में सहायता करता है।

Add. 41-42A, Ashok Park Main, New Rohtak Road, New Delhi-110035
+91-9350679141

- राज्यपाल की अनुमति व राष्ट्रपति की स्वीकृति के बाद राज्य की जरूरतों को पूरा करना।
- निम्नलिखित विषयों में परामर्श देता है-
- सिविल सेवाओं और सिविलि पदों के लिए भर्ती की पद्धतियों से संबंधित सभी विषयों पर।
- सिविल सेवाओं और पदों पर नियुक्ति करने में, प्रोन्नति तथा एक सेवा से दूसरी सेवा में तबादला या प्रतिनियुक्ति के लिए अभ्यर्थियों की उपयुक्तता पर संबंधित विभाग प्रोन्नति की सिफारिश करता है और संघ लोक सेवा आयोग से अनुमोदित करने का आग्रह करता है।
- यह अखिल भारतीय सेवाओं, केंद्रीय सेवाओं व केंद्र प्रशासित क्षेत्रों की लोक सेवाओं में नियुक्ति के लिए परीक्षाओं का संचालन करता है।

सीमाएं

निम्नलिखित विषय यूपीएससी के कार्यों के अधिकार क्षेत्र के बाहर हैं।

- राष्ट्रपति संघ लोक सेवा आयोग के दायरे से किसी पद, सेवा व विषय को हटा सकता है।
- सेवाओं व पदों पर नियुक्ति के लिए अनसूचित जाति व अनुसूचित जनजातियों के दावों को ध्यान में रखने हेतु।
- आयोग या प्राधिकरण की अध्यक्षता या सदस्यता, राजनयिक की उच्च पद, ग्रुप सी व डी सेवाओं के अधिकतर पदों के चयन से संबंधित मामले।
- पिछड़ी जाति की नियुक्तियों पर आरक्षण देने के मसले पर।

कर्मचारी चयन आयोग

कर्मचारी चयन आयोग एक केंद्रीकृत संस्था है जिस पर केंद्र सरकार के अंतर्गत मध्यम व निम्न सेवाओं के लिए लोगों की नियुक्ति करने की जिम्मेदारी है। एसएससी का गठन 1975 में केंद्र सरकार द्वारा एक कार्यकारी प्रस्ताव के आधार पर किया गया। इसे कार्मिक मंत्रालय से जुड़े कार्यालय की हैसियत प्राप्त है और यह परामर्शदात्री संस्था के तौर पर काम करती है। इसमें अध्यक्ष, दो सदस्य, सचिव सह परीक्षा नियंत्रक होते हैं। अध्यक्ष या सदस्य का कार्यकाल पांच वर्ष का या 62 वर्ष की आयु तक जो पहले हो, का होता है। उनकी नियुक्ति केंद्र सरकार करती है।

राज्य लोक सेवा आयोग

केंद्र के संघ लोक सेवा आयोग के समानांतर राज्यों में राज्य लोक सेवा आयोग (एसपीएससी) है। संविधान के 14वें भाग में अनुच्छेद 315 से 323 में राज्य लोक सेवा आयोग की स्वतंत्रता व शक्तियों के अलावा इसके गठन तथा सदस्यों की नियुक्तियों व बर्खास्तगी इत्यादि का उल्लेख किया गया है।

गठन

राज्य लोक सेवा आयोग में एक अध्यक्ष व अन्य सदस्य होते हैं। जिन्हें राज्य का राज्यापाल नियुक्त करता है। संविधान में आयोग की सदस्य संख्या का उल्लेख नहीं किया गया है। यह राज्यपाल के ऊपर छोड़ दिया गया है। इसके अतिरिक्त, आयोग के सदस्यों की वांछित योग्यता का भी जिक्र नहीं किया गया है परंतु यह आवश्यक है कि आयोग के आधे सदस्यों को भारत सरकार या राज्य सरकार के अधीन कम से कम 10 वर्ष काम करने का अनुभव हो।

आयोग के अध्यक्ष व सदस्य पद ग्रहण करने की तारीख से छह वर्ष की अवधि तक या 62 वर्ष की आयु तक, इनमें जो भी पहले हो, अपना पद धारण कर सकते हैं राज्यपाल दो परिस्थितियों में राज्य लोक सेवा आयोग के किसी एक सदस्य को कार्यवाहक अध्यक्ष नियुक्त कर सकते हैं-

- जब अध्यक्ष अपना कार्य अनुपस्थिति या अन्य दूसरे कारणों की वजह से नहीं कर पा रहा हो।
- जब अध्यक्ष का पद रिक्त हो।

पद से हटाया जाना

भले ही राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष व सदस्य की नियुक्ति राज्यपाल करते हैं लेकिन इन्हें केवल राष्ट्रपति ही हटा सकता हैं (राज्यपाल नहीं)। राष्ट्रपति उन्हें उसी आधार पर हटा सकते हैं जिन आधारों पर यूपीएससी के अध्यक्ष व सदस्यों को हटाया जाता है। अत: उन्हें निम्नलिखित आधारों पर हटाया जा सकता है-

- अगर राष्ट्रपति यह समझता है कि वह मानसिक या शारीरिक शैथिल्य के कारण पद पर बने रहने के योग्य नहीं है।
- अगर उसे दिवालिया घोषित कर दिया जाता है।
- अपनी पदावधि के दौरान अपने पद के कर्त्तव्यों के बाहर किसी सवेतन नियोजन में लगा हो।

इसके अलावा राष्ट्रपति राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या दूसरे सदस्यों को उनके कदाचार के कारण भी हटा सकता है परंतु ऐसे मामलों को जांच के लिए सर्वोच्च न्यायालय के पास भेजना होता है। संविधान के अनुसार, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस मामले में दी गई सलाह राष्ट्रपति के लिए बाध्य है।

स्वतंत्रता

संघ लोक सेवा आयोग की तरह ही संविधान में राज्य लोक सेवा आयोग के निष्पक्ष व स्वतंत्र कार्य करने के लिए निम्नलिखित प्रावधान हैं-

- राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या सदस्य (कार्यकाल के बाद) को पुन: नियुक्त नहीं किया जा सकता (यानी दूसरे कार्यकाल के योग्य नहीं)।
- अध्यक्ष या सदस्य की सेवा की शर्तें राज्यपाल तय करता है। अत: नियुक्ति के बाद अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।
- राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या सदस्य को वेतन, भत्ता व पेंशन सहित सभी खर्चे राज्य की संचित निधि से मिलते हैं।
- राज्य लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष (कार्यकाल के बाद) संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या सदस्य तथा दूसरे राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या सदस्य तथा दूसरे राज्य लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष बनने का पात्र होगा।
- राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या सदस्यों को राष्ट्रपति संविधान में वर्णित आधारों पर ही हटा सकता है।

कार्य

राज्य लोक सेवा आयोग राज्य सेवओं के लिए वही काम करता है जो संघ लोक सेवा आयोग केंद्रीय सेवाओं के लिए करता है-

- सिविल सेवाओं और पदों पर स्थानांतरण करने में, प्रोन्नति, या एक सेवा से दूसरी सेवा में तबादला या प्रतिनियुक्ति के लिए अभ्यर्थियों की उपयुक्ता पर ।
- राज्य सरकार के अधीन काम करने के दौरान किसी व्यक्ति को हुई हानि को लेकर पेंशन का दावा करना। राज्य लोक सेवा आयोग हर वर्ष अपने कार्यों की रिपोर्ट राज्यपाल को देता है। राज्यपाल इस रिपोर्ट के साथ-साथ ऐसे ज्ञापन विधान मंडल के समक्ष रखता है जिसमें आयोग द्वारा अस्वीकृत मामले और उनके कारणों का वर्णन किया जाता है।
- यह राज्य की सेवाओं में नियुक्ति के लिए परीक्षाओं का संचालन करता है।
- निम्नलिखित विषयों पर परामर्श देता है-
- सिविल सेवाओं और सिविल पदों के लिए भर्ती की पद्धतियों से संबंधित सभी विषयों पर।
- सिवलि सेवाओं और पदों पर नियुक्ति करने में तथा सेवा प्रोन्नति व एक सेवा से दूसरे सेवा में तबादले के लिए अनुसरण किए जाने वाले सिद्धांत के संबंध में।

सीमाएं

निम्नलिखित विषयों को राज्य लोक सेवा आयोग के अधिकार क्षेत्र के बाहर रखा गया है। दूसरे शब्दों में, निम्नलिखित विषयों पर राज्य लोक सेवा आयोग से संपर्क नहीं किया जा सकता–

- सेवाओं में नियुक्ति पर अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों के दावों को ध्यान में रखने के मसले पर।
- पिछड़ी जातियों की नियुक्तियों या आरक्षण के मसले पर।

राज्यपाल राज्य लोक सेवा आयोग के दायरे से किसी पद, सेवा या विषय को हटा सकता है।

संयुक्त राज्य लोक सेवा आयोग

दो या इससे अधिक राज्यों के लिए संविधान में संयुक्त राज्य लोक सेवा आयोग की व्यवस्था की गई है। संघ लोक सेवा आयोग और राज्य लोक सेवा आयोग का गठन जहां सीधे संविधान द्वारा किया गया है। वहीं संयुक्त राज्य लोक सेवा आयोग का गठन राज्य विधानमंडल की आग्रह से संसद द्वारा किया गया है। इस तरह संयुक्त राज्य लोक सेवा आयोग एक वैधानिक संस्था है न कि संवैधानिक। संयुक्त राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष व सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। उनका कार्यकाल छह वर्ष अथवा 62 वर्ष की आयु, जो पहले हो, तक होता है। उन्हें राष्ट्रपति द्वारा बर्खास्त किया या हटाया जा सकता है। वे किसी भी समय राष्ट्रपति को त्यागपत्र देकर पदमुक्त हो सकते हैं। संयुक्त राज्य लोक सेवा आयोग वार्षिक प्रगति रिपोर्ट संबंधित राज्यपालों को सौंपता है। प्रत्येक राज्यपाल इसे राज्य विधानमंडल के समक्ष प्रस्तुत करता है।

22. वित्त आयोग

भारत के संविधान में अनुच्छे 280 के तहत वित्त आयोग की व्यवस्था की गई है। इसका गठन राष्ट्रपति द्वारा हर पांचवें वर्ष या आवश्यकतानुसार उससे पहले किया जाता है।

वित्त आयोग में एक अध्यक्ष और चार अन्य सदस्य होते हैं, जिनकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। उनका कार्यकाल राष्ट्रपति के आदेश के तहत तय होता है। उनकी पुर्ननियुक्ति भी हो सकती है।

संविधान ने संसद को इन सदस्यों की योग्यता का निर्धारण करने का अधिकार दिया है। इसी के तहत संसद ने आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों की विशेष योग्यताओं का निर्धारण किया है। अध्यक्ष सार्वजनिक मामलों का अनुभवी होना चाहिए और अन्य चार सदस्यों को निम्नलिखित में से चुना जाना चाहिए-

- किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश या इस पद के लिए योग्य व्यक्ति।
- ऐसा व्यक्ति जिसे भारत के लेखा एवं वित्त मामलों का विशेष ज्ञान हो।
- एक ऐसा व्यक्ति जिसे प्रशासन या वित्तीय मामलों का व्यापक अनुभव हो।
- ऐसा व्यक्ति जो अर्थशास्त्र का विशेष ज्ञाता हो।

कार्य

निम्नलिखित मामलों में भारत के राष्ट्रपति द्वारा कुछ संस्तुतियों के लिए वित्त आयोग की आवश्यकता महसूस की जाती है-

- करों के सही बंटवारे और राज्यों एवं केंद्र के बीच करों के सही निर्धारण के लिए।
- केंद्र द्वारा राज्यों को प्रदान की जाने वाली सहायता राशि के सही निर्धारण (निश्चित कोष से अलग) के लिए।
- राज्य वित्त आयोग की संस्तुतियों के आधार पर नगर पालिकाओं, पंचायत आदि के लिए नियमित राशि व आवश्यकता के अनुरूप उसका आकलन और संसाधनों का निर्धारण।
- राष्ट्रपति द्वारा भेजे गए तर्कसम्मत वित्तीय-मामले या अन्य कार्यों के लिये।

आयोग अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को सौंपता है, जो इसे संसद के दोनों सदनों में रखता है।

यह स्पष्ट करना जरूरी होगा कि वित्त आयोग की सिफारिशों की प्रकृति सलाह की तरह होती है और इनको मानने के लिए सरकार बाध्य नहीं होती। यह केंद्र सरकार पर निर्भर करता है कि वह राज्य सरकारों को दी जाने वाली सहायता के संबंध में आयोग की सिफारिशों को लागू करे।

वित्त आयोग के अध्यक्ष

क्र.सं	आयोग	वर्ष	अध्यक्ष
1.	प्रथम वित्त आयोग	1951-1953	के.सी. नियोगी
2.	द्वितीय वित्त आयोग	1956-1957	के. संथानाम
3.	तीसरा वित्त आयोग	1960-1962	ए.के. चन्दा
4.	चौथा वित्त आयोग	1964-1965	डॉ. पी.वी. राजमन्नार
5.	पांचवा वित्त आयोग	1968-1969	महावीर त्यागी
6.	छठा वित्त आयोग	1972-1973	पी. ब्रह्मानंद रेड्डी
7.	सातवां वित्त आयोग	1977-1978	जे.पी. सेलट
8.	आठवां वित्त आयोग	1982-1984	वाई.वी. चव्हाण
9.	नौवां वित्त आयोग	1987-1989	एन.के.पी. साल्वे
10.	दसवां वित्त आयोग	1998-1994	के.सी. पंत
11.	ग्यारहवां वित्त आयोग	1998-2000	ए.एम. खुसरो
12.	बारहवां वित्त आयोग	2002	डॉ. सी. रंगराजन
13.	तेरहवाँ	2007	विजय एल. केलकर

भारत का नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक

भारत के संविधान (अनुच्छेद 148) में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के स्वतंत्र पद की व्यवस्था की गई है जिसे संक्षेप में 'महालेखा परीक्षक' कहा गया है। यह भारतीय लेखापरीक्षण और लेखाविभाग का मुखिया होता है। यह लोगों की जेब का संरक्षक होने के साथ-साथ देश की संपूर्ण वित्तीय व्यवस्था का नियंत्रक होता है।

नियुक्ति एवं कार्यकाल

नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। कार्यभार संभालने से पहले यह राष्ट्रपति के सम्मुख निम्नलिखित वचन/शपथ लेता है–

- भारत के संविधान के प्रति सत्यनिष्ठा के साथ वफादार रहेगा।
- भारत की एकता एवं अखंडता को अक्षुण्ण रखेगा।
- बिना किसी भेदभाव, डर आदि के अपने कर्त्तव्यों का संपूर्ण योग्यता, ज्ञान एवं न्याय के साथ निर्वहन करेगा।
- संविधान एवं कानून का पालन करेगा।

इसका कार्यकाल 6 वर्ष या 65 वर्ष की आयु तक होता है। इससे पहले वह राष्ट्रपति के नाम किसी भी समय अपना त्यागपत्र भेज सकता है।

स्वतंत्रता

- इसे कार्यकाल की सुरक्षा मुहैया कराई गई है। इसे केवल राष्ट्रपति द्वारा संविधान में उल्लिखित कार्यवाही के जरिए हटाया जा सकता है।
- इसका वेतन एवं अन्य सेवा शर्तें संसद द्वारा निर्धारित होती हैं। वेतन उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के बराबर होता है।
- नियुक्ति के बाद इसके वेतन, अधिकार, छुट्टियां, पेंशन, सेवानिवृत्ति की आयु में परिवर्तन नहीं किया जा सकता।
- महालेखा परीक्षक कार्यालय के वेतन, भत्ते, पेंशन आदि प्रशासनिक खर्चे भारत की संचित निधि पर भारित है।

कर्त्तव्य और शक्तियां

संसद एवं संविधान द्वारा स्थापित नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कार्य एवं कर्त्तव्य निम्नलिखित हैं-

- केंद्र एवं राज्य सरकार द्वारा किए गए खर्चों का लेखा परीक्षण करता है।
- वह अन्य इकाइयों जैसे-निगम, कंपनियों आदि को केंद्र एवं राज्य राजस्व से मिलने वाली वित्तीय मदद का लेखा परीक्षण करता है।
- वह अन्य प्राधिकरणों जैसे स्थानीय इकाइयों के लेखा परीक्षण भी राष्ट्रपति या राज्यपाल के आग्रह पर करता है।
- केंद्र एवं राज्य के लेखा प्रपत्र विवरण को लेकर राष्ट्रपति को सलाह देता है।
- वह कर आदि को प्रमाणित एवं कार्यान्वित करता है।
- संसदीय समिति के सार्वजनिक लेखा मामलों के संबंध में वह दिशा निर्देशक, मित्र एवं दार्शनिक की तरह कार्य करता है।

वह राष्ट्रपति के सम्मुख तीन लेखा परीक्षण रिपोर्टों को रखता है :–

- आनुमानिक लेखा परीक्षण रिपोर्ट।
- वित्तीय खातों पर लेखा परीक्षण रिपोर्ट।
- सार्वजनिक उपक्रमों पर लेखा परीक्षण रिपोर्ट।

23. योजना आयोग व राष्ट्रीय विकस परिषद

1950 में भारत सरकार के कार्यकारी प्रस्ताव (केंद्रीय मंत्रिमंडल के तहत) के बाद योजना आयोग का गठन किया गया। इसका गठन 1946 में के.सी. नियोगी की अध्यक्षता में स्थापित सलाहकार योजना बोर्ड की संस्तुति के बाद किया गया। यह गैर-संवैधानिक एवं अतिरिक्त संवैधानिक इकाई है।

कार्य

योजना आयोग के कार्य निम्नलिखित हैं-

- प्रत्येक स्तर पर योजना के सफल अमल के लिए चीजों का निर्धारण।
- देश के संसाधनों का संतुलित उपयोग करते हुए सर्वोच्च प्रभावी योजना को बनाना।
- प्रमुखताओं का निर्धारण एवं उन संसाधनों को परिभाषित करना जिनमें इन योजनाओं को लागू किया जा सकता है।
- उन तथ्यों को चिह्नित करना जिससे आर्थिक विकास अवरूद्ध हो रहा हो।
- देश के पदार्थ, पूंजी और मानव संसाधनों का जायजा लेना और उनके संवर्धन की संभावना को तलाशना।

यह उल्लेखनीय है कि योजना आयोग केवल एक स्टाफ एजेंसी, एक सलाहकार निकाय है। इसकी कोई कार्यकारी जिम्मेदारी नहीं है। यह किसी निर्णय के अमल के लिए उत्तरदायी नहीं है।

गठन

योजना आयोग के गठन के संबंध में निम्न बिंदु उल्लेखनीय हैं-

- आयोग के पास चार से सात पूर्णकालिक निपुण सदस्य होते हैं। उन्हें राज्य मंत्री के समान दर्जा प्राप्त होता है।
- आयोग का एक सदस्य सचिव होता है।
- कुछ केंद्रीय मंत्रियों को आयोग के अंशकालिक सदस्यों के रूप में नियुक्त किया जाता है।
- आयोग का अध्यक्ष भारत का प्रधानमंत्री होता है। वह आयोग की बैठकों की अध्यक्षता करता है।
- आयोग का एक उपाध्यक्ष भी होता हैं। वह इसका कार्यकारी प्रमुख होता।

आंतरिक संगठन

योजना आयोग के निम्नलिखित तीन अंग होते हैं।

- कार्यक्रम सलाहकार।
- देख-रेख विभाग।
- तकनीकी विभाग।

तकनीकी विभाग

तकनीकी खंड, योजना आयोग की एक बड़ी क्रियात्मक निकाय है। यह मुख्यत: योजना निर्माण, योजना देख-रेख एवं योजना मूल्यांकन में शामिल रहती है।

देख-रेख विभाग

योजना आयोग की निम्नलिखित देख-रेख शाखाएं होती हैं-

- वैयक्तिक प्रशिक्षण शाखा।
- सांगठनिक शाखा।
- लेखा शाखा।
- सामान्य प्रशासन शाखा।
- सतर्कता शाखा।

कार्यक्रम सलाहकार

योजना आयोग में कार्यक्रम सलाहकार के पद का सृजन 1952 में किया गया। इसका सृजन इस उद्देश्य से किया गया कि योजना के क्षेत्र में भारत के राज्यों एवं योजना आयोग के बीच संपर्क बना रहे। इनका पद अतिरिक्त सचिव के समान होता है और यह कई राज्यों का प्रभारी होता है।

योजना आयोग के आंतरिक संगठन में दोहरा पदानुक्रम होता है- प्रशासनिक एवं तकनीकी। प्रशासनिक श्रेणियों का प्रमुख योजना आयोग का का सचिव होता है, तकनकी खंड का मुखिया सलाहकार होता है। जिसका रैंक अतिरिक्त सचिव या संयुक्त सचिव के बराबर होता है।

राष्ट्रीय विकास परिषद

राष्ट्रीय विकास परिषद (एनडीसी) का गठन अगस्त 1952 में किया गया। इसका गठन प्रथम पंचवर्षीय योजना (ड्राफ्ट निर्माण) में भारत सरकार की कार्यकारिणी की संतुति के बाद किया गया।

संगठन

राष्ट्रीय विकास परिषद में निम्नलिखित सदस्य होते हैं-

- भारत का प्रधानमंत्री (इसके अध्यक्ष या प्रमुख के रूप में)
- सभी केंद्रीय कैबिनेट मंत्री (1967 से)

- योजना आयोग के सदस्य।
- सभी केंद्रीशासित राज्यों के मुख्यमंत्री/प्रशासक।
- सभी राज्यों के मुख्यमंत्री।

योजना आयोग का सचिव राष्ट्रीय विकास परिषद के सचिव के रूप में कार्य करता है।

उद्देश्य

राष्ट्रीय विकास परिषद की स्थापना निम्नलिखित उद्देश्यों के तहत की गई-

- देश के सभी हिस्सों में संतुलित एवं तीव्र विकास को सुनिश्चित करने के लिए।
- योजना के सहयोग के लिए राष्ट्र के संसाधनों एवं प्रयासों को बढ़ाने एवं विस्तारित करने के लिए।
- विस्तृत संदर्भ में सामूहिक आर्थिक नीतियों को प्रोन्नत करने के लिए।
- योजना के कार्यान्वयन में राज्यों के सहयोग को सुरक्षित करने के लिए।

कार्य

उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एनडीसी को निम्नलिखित कार्य दिए गए हैं-

- राष्ट्रीय योजना आयोग के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए पैमानों का निर्धारण करना।
- योजना के क्रियान्वयन में संसाधनों का अनुमान लगाना और सुझाव देना।
- योजना आयोग द्वारा बनाए गए राष्ट्रीय योजना की संस्तुति देना।
- राष्ट्रीय विकास को प्रभावित करने में महत्पूर्ण सामाजिक एवं आर्थिक नीतियों की संस्तुति करना।
- समय-समय पर राष्ट्रीय योजना के कार्यों की समीक्षा करना।
- राष्ट्रीय योजना को बनाने के लिए दिग्दर्शिता का सुझाव देना।

यद्यपि इसे योजना आयोग के सलाहकार निकाय के रूप में सूचीबद्ध किया गया है। यह अपनी संस्तुतियों को केंद्र एवं राज्य सरकारों को भेजती है। साल में दो बार इसकी बैठक होनी आवश्यक है।

राष्ट्रीय विकास परिषद का पहला एवं प्रमुख कार्य है- केंद्र, राज्य सरकार और योजना आयोग के बीच सेतु की तरह कार्य करना। खासतौर पर योजना के क्षेत्र में योजना कार्यक्रमों की नीतियों में समन्वय स्थापित करना।

24. प्रमुख संविधान संशोधन अधिनियम

- **प्रथम संविधान संशोधन अधिनियम, 1951 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा अनुच्छेद-19(2) मतें वर्णित स्वतंत्रता के अधिकारों पर **सार्वजनिक व्यवस्था, विदेशी राज्यों से मैत्रीपूर्ण संबंध** तथा **अपराध् उद्दीपन** के आधार पर प्रतिबंध लगाने का प्रावधान किया गया। इस अधिनियम द्वारा अनुच्छेद : 15, 31, 85, 87, 174, 176, 341, 372 और 376 को संशोधित किया गया। दो नये अनुच्छेद-31 (क) और 31 (ख) तथा एक नई अनुसूची (नवीं अनूसची) को संविधान में शामिल किया गया। अनुच्छेद-31 (क) के अन्तर्गत भूमि सुधार कानूनों को संवैधानिक सुरक्षा प्रदान किया गया। जबकि अनुच्छेद -31 (ख) के माध्यम से यह प्रावधान किया गया कि अनूसूची-9 में सम्मिलित अधिनियमों को न्यायालय में इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि वे मूलाधिकारों का अतिक्रमण करते हैं। अनुच्छेद-15 में खण्ड (2) जोड़ा गया जिसमें यह प्रावधान किया गया कि सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के हित में राज्य विशेष उपबंध कर सकता है।
- **सातवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1956 :** यह संशोधन राज्यों के पुनर्गठन के लिए किया गया। इस संशोधन द्वारा भारत को 14 राज्यों और 6 केन्द्र शासित प्रदेशों में बांटा गया।
- **आठवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1690 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा अनुच्छेद -334 में संशोधन करके अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा आंग्ल-भारतीय समुदाय के सदस्यों के लिए संसद और राज्य विधानमंडलों में आरक्षण की अवधि को 10 वर्षों के लिए बढ़ा दिया गया।
- **दसवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1961 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा दादर और नागरहवेली संघ शासित प्रदेश के रूप में भारत में सम्मिलित कर लिया गया।
- **बारहवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1962 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा गोवा, दमन और दीव को केन्द्र शासित प्रदेश के रूप में भारत में सम्मिलित कर लिया गया।
- **तेरहवां संविधान अधिनियम, 1962 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा नागालैण्ड को भारत के 16वें राज्य के रूप में सम्मिलित किया गया तथा संविधान में एक नया अनुच्छेद : 371 (क) जोड़कर नागालैण्ड के प्रशासन के सम्बन्ध में कुछ विशेष प्रावधान किया गया।
- **चौदहवां संविधान अधिनियम 1962 :** चौदहवां संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा पांडिचेरी को सेवानिवृत्ति की आयु सीमा को 60 वर्ष से बढ़ाकर 62 वर्ष कर दिया गया। पन्द्रहवें संशोधन द्वारा उच्च न्यायालयों के रिट सम्बन्धी अधिकारिता को भी बढ़ा दिया गया।
- **इक्कीसवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1966:** इस संशोधन अधिनियम द्वारा 'सिंधी' भाषा को आठवीं अनुसूची की भाषाओं में स्थान दिया गया।
- **बाइसवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1969 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा 'मेघालय' के रूप में एक नये राज्य का सृजन किया गया।
- **तेईसवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1969 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों एवं आंग्ल-भारतीय समुदाय के लिए संसद और राज्य विधायिकाओं में आरक्षण की अवधि को दस वर्षो के लिए और बढ़ा दिया गया।
- **चौबीसवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1971 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा संविधान के अनुच्छेद-13 और 368 में संशोधन करके यह स्पष्ट किया गया **कि संसद को मौलिक** अधिकारों सहित संविधान के किसी भी भाषा में संशोधन करने की असीमित शक्ति प्राप्त है।
- **पचीसवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1971 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा अनुच्छेद-31 (2) का संशोधन किया गया तथा एक नया अनुच्छेद -31 (ग) जोड़कर यह प्रावधान किया गया कि अनुच्छेद-39 (ख) और (ग) जोड़कर यह प्रावधान किया गया कि अनुच्छेद-39 (ख) और (ग) के नीति-निदेशक तत्वों को प्रभावी करने लिए कोई कानून बनाया जाता है तो उसे इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि उससे मूलाधिकारों का हनन होता है।
- **छब्बीसवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1971 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा संविधान के दो अनुच्छेदों-291 और 362 को संविधान से निकाल कर तथा एक नया अनुच्छेद-363 (ग) जोड़ कर भूतपूर्व राजाओं के प्रिवीपर्स

तथा विशेषाधिकारों को समाप्त कर दिया गया।

- **सत्ताईसवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1971 :** इसके द्वारा संविधान में दो नये अनुच्छेद, अनुच्छेद-239 (ख) और 371 (ग) जोड़े गये जबकि दो अनुच्छेदों, अनुच्छेद-239 (क) और 240 का संशोधन किया गया। दो नये केन्द्र शासित प्रदेश मिजोरम और अरूणाचल प्रदेश का सृजन किया गया।
- **इकतीसवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1974 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा अनुच्छेद-81 में संशोधन करके लोकसभा में निर्वाचित सदस्यों की अधिकतम संख्या 525 से बढ़ाकर 545 कर दी गयी, जिसमें केन्द्र शासित प्रदेशों के 20 प्रतिनिधि होंगे।
- **छतीसवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1975 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा सिक्किम को सह-राज्य के स्थान पर पूर्ण राज्य का दर्जा दिया गया। पैंतिसवें संविधान संशोधन द्वारा अंत: स्थापित अनुच्छेद-2 (क) और अनुसूचि-10 को संविधान से निकाल दिया गया।
- **सैंतीसवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1975:** इस संशोधन अधिनियम द्वारा केन्द्र शासित प्रदेश अरुणाचल प्रदेश के लिए विधानसभा और मंत्रिपरिषद् का प्रावधान किया गया।
- **बयालिसवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 :** बयालिसवां संविधान संशोधन को आपातकाल के दौरान पारित किया गया। यह अब तक का सबसे व्यापक और सर्वाधिक विवादास्पद संविधान संशोधन है। इस संशोधन द्वारा संविधान के अनेक उपबंधों में व्यापक परिवर्तन किये गये।
- इस संशोधन द्वारा संविधान की प्रस्तावना में तीन नये शब्द- **'धर्म'निरपेक्ष'**, **'समाजवाद'** तथा **'अखण्डता'** जोड़े गये।
- संविधान के भाग-4 में तीन नये नीति-निदेशक तत्व जोड़े गये-(i) सामान्य न्याय और नि: शुल्क विधिक सहायता (ii) उद्योगों के प्रबंध में श्रमिकों की भागीदारी, और (iii) पर्यावरण की रक्षा तथा सुधार और वन तथा वन्य जीवों को सुधार।
- अनुच्छेद -31 (ग) में संशोधन करके मूल अधिकारों पर सभी नीति-निदेशक तत्वों को प्राथमिकता प्रदान की गई।
- एक नया भाग, **भाग-4 (क)** जोड़ा गया, जिसमें नागरिकों के **10 मूल कर्त्तव्यों** का उल्लेख है।
- अनुच्छेद-74 में संशोधन करके राष्ट्रपति के लिए मंत्रिपरिषद के सलाह को बाध्यकारी बना दिया गया।
- लोकसभा तथा राज्य विधानसभाओं के कार्यकाल को एक वर्ष के लिए बढ़ाकर 6 वर्ष कर दिया गया।
- यह प्रावधान किया गया कि संसद द्वारा संविधान के किसी भी भाग में किये गये संशोधन को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती।
- संविधान में एक नया अनुच्छेद-139 (क) जोड़ा गया, जिसके अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय को यह शक्ति प्रदान की गयी कि वह सार्वजनिक महत्व के महत्वपूर्ण मामले को उच्च न्यायालयों से अपने पास मंगवा सकता है।
- केन्द्र को यह शक्ति प्रदान की गयी कि वह राज्यों में विधि और व्यवस्था की गंभीर परिस्थिति का सामना करने के लिए केन्द्रीय सुरक्षा बल को भेज सकता है।
- सातवीं अनुसूचि के राज्य सूची के कुछ विषयों को समवर्ती सूची में डाल दिया गया।
- संविधान में दो नया अनुच्छेद - 323 (क) और 323 (ख) जोड़कर संसद को विभिन्न प्रकार के अधिकरणों की स्थापना की शक्ति प्रदान की गयी।
- अनुच्छेद-352 में संशोधन करके यह प्रावधान किया गया कि आपातस्थिति की उद्घोषण देश के किसी भाग के लिए भी की जा सकती है।
- अनुच्छेद-356 में संशोधन करके राज्यों में राष्ट्रपति शासन की प्रारंभिक अवधि को 6 महीने से बढ़ाकर 1 वर्ष कर दिया गया।
- **चौवालिसवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 :** 42वें संविधान द्वारा किये गये व्यापक परिवर्तनों को निरसित करने के उद्देश्य से जनता सरकार ने 44वां संविधान संशोधन अधिनियम पारित किया।
- इसके द्वारा सम्पत्ति के मूल अधिकार को मूल अधिकारों की सूची से निकालकर एक नये अनुच्छेद-300 (क) में **कानूनी अधिकार** के रूप में रखा गया।
- **लोकसभा तथा राज्य विधान सभा की अवधि को पुन:** 6 वर्ष के स्थान पर पांच वर्ष कर दिया गया।
- अनुच्छेद-352 के अधीन राष्ट्रीय आपातकाल की उद्घोषणा के लिए **'आंतरिक अशांति'** के स्थान पर **'संशस्त्र विद्रोह'** शब्द रखा गया अर्थात् सशस्त्र विद्रोह से आन्तरिक अशांति उत्पन्न होने पर ही राष्ट्रीय आपातकाल की उद्घोषणा की जा सकती है।

- मंत्रिमंडल के लिखित परामर्श पर ही राष्ट्रीय आपातकाल की उद्घोषणा की जा सकेगी।
- अनुच्छेद : 356 के अधीन राष्ट्रपति शासन की प्रारंभिक अवधि 1 वर्ष के स्थान पर पुन: 6 माह कर दिया गया।
- राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के निर्वाचन सम्बन्धी विवादों को हल करने के लिए उच्चतम न्यायालय को पुन: अधिकारिता प्रदान की गयी।
- 42वें संशोधन द्वारा मंत्रिमण्डल के सलाह को राष्ट्रपति के लिए बाध्यकारी बना दिया गया था, लेकिन 44वें संशोधन में यह व्यवस्था की गयी कि राष्ट्रपति मंत्रिमण्डल के सलाह बाध्यकारी होगा।
- निवारक निरोध कानून के आधार पर किसी व्यक्ति को दो माह की अवधि के लिए ही नजरबन्द किया जा सकता है, लेकिन सलाहकार बोर्ड के परामर्श पर यह अवधि बढ़ाई जा सकती है।
- **पैंतालीसवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1980 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा लोकसभा और राज्य विधानसभा में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों तथा आंग्ल-भारतीय समुदाय के आरक्षण की अवधि को 10 वर्षों के लिए और बढ़ा दिया गया।
- **इक्यावनवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1984 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा अनुच्छेद-330 में संशोधन करके मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, नागालैण्ड और मिजोरम के अनुसूचित जनजातियों के लिए लोंकसभा के स्थान आरक्षित किये गये। नागालैण्ड तथा मेघालय की विधानसभाओं में भी अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित किये गये और इसके लिए अनुच्छेद-332 में संशोधन किया गया।
- **बावनावां संविधान संशोधन अधिनियम, 1985 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा दल-परिवर्तन को रोकने के लिए प्रावधान किये गये।
- **पचपनवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1986 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा केन्द्र शासित प्रदेश अरुणाचल प्रदेश को राज्य का दर्जा प्रदान किया गया।
- **छप्पनवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1987 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा गोवा को दमन और दीव से अलग करके राज्य का दर्जा प्रदान किया गया, जबकि दमन और दीव को केन्द्र शासित प्रदेश बनाया गया। गोवा के लिए 30 सदस्यीय विधानसभा के गठन का प्रावधान किया गया।
- **इकसठवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1989 :** अनुच्छेद 326 का संशोधन करके मताधिकार की न्यूनतम आयु सीमा को **21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष** कर दिया गया।
- **बासठवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1989 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा लोकसभा और राज्यों की विधनसभाओं में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों तथा आंग्ल भारतीय समुदाय के लोगों के लिए आरक्षण की अवधि को 10 वर्षों के लिए और बढ़ा दिया गया।
- **इकहत्तरवां संविधान संशोधन अधिनियम 1992 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा तीन नये भाषाओं -**कोंकणी, मणिपुरी** और **नेपाली** को संविधान की आठवीं अनुसूची में स्थान दिया गया।
- **तिहत्तरवां संविधान संशोधन अधिनियिम, 1992 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा संविधान में एक नया **भाग-9** तथा **अनुच्छेद-243 क से 243 ण** तक 16 नये अनुच्छेद और एक नयी अनुसूची **11वीं अनुसूची** जोड़कर पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया।
- **चौहत्तरवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा संविधान में एक नया **भाग-9 क** तथा अनुच्छेद -243 से 243 य छ तक 18 नये अनुच्छेद और एक नयी अनुसूची, बारहवीं अनुसूची जोड़कर नगरीय स्थानीय शासन के संबंध में विस्तृत प्रावधान किये गये।
- **छिहत्तरवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1994 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा तमिलनाडु सरकार द्वारा पारित उस अधिनियम को संविधान की नवीं अनुसूची में शामिल कर लिया गया। जिसमें पिछड़े वर्गों के लिए 69 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया गया है।
- **सतहत्तरवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1995 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा अनुच्छेद -16 में एक नया खण्ड-4 (क) जोड़कर राज्याधीन सेवाओं में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए पदोन्नति में आरक्षण की व्यवस्था की गयी।
- **चौरासीवां संविधान संशोधन अधिनियम, 2001 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा लोकसभा और राज्य विधानसभाओं में सीटों की संख्या को 2026 तक यथावत बनाये रखने का प्रावधान किया गया।
- **पिचायासीवां संविधान संशोधन अधिनियम, 2001:** इस संशोधन अधिनियम द्वारा अनुसूचित जाति और जनजाति के लिए सरकारी नौकरियों में पदोन्नति में आरक्षण की व्यवस्था की गई।

- **छियासीवां संविधान संशोधन अधिनियम, 2001 :** सभी के लिए शिक्षा' के लक्ष्य को प्राप्त करने के उद्देश्य से यह संविधान संशोधन पारित किया गया ताकि 6–14 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए नि: शुल्क और अनिवार्य शिक्षा को मूल अधिकार में सम्मिलित किया जा सके।
- **सतासीवां संविधान संशोधन अधिनियम, 2003 :** निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन सन् 2001 की जनगणना के आधार पर किया गया।
- **इक्यानवेवां संविधान संशोधन अधिनियम, 2003 :** इसमें दलबदल-विरोधी कानून में संशोधन किया गया है। इसके अतिरिक्त प्रावधान भी किया गया है कि केन्द्र और राज्य सरकारें अपने-अपने मन्त्रिमण्डल में मन्त्रियों की संख्या लोकसभा और विधान सभा की सीटों के 15% से ज्यादा नहीं कर सकतीं हैं।
- **बानवेवां संविधान संशोधन अधिनियम, 2003 :** इसमें आठवीं अनुसूची में चार और भाषाओं-मैथिली, डोगरी, बोडो और सन्थाली, को जोड़ा गया है।
- **तिरानवेवां संविधान संशोधन अधिनियम, 2006 :** इसमे अहत गैर-सहायता प्राप्त निजी शिक्षण संस्थाओं में आरक्षण की सुविधा प्रदान की गई है इसे अनुच्छेद 15 में जोड़ा गया है।
- **पिनचयानवेवां संविधान संशोधन अधिनियम, 2009 :** लोक सभा एवं राज्य विधान सभाओं में अनुसूचित जातियों, जनजातियों के लिए चुनावी सीटों के आरक्षण तथा आंग्ल भारतीय सदस्यों के मनोनयन की व्यवस्था को 26 जनवरी, 2010 से आगामी दस वर्ष के लिए और बढ़ा दिया है।
- **छियानवेवां संविधान संशोधन अधिनियम, 2010 :** 'उड़िया शब्द के स्थान पर **'ओड़िया'** किया गया।
- **सन्तानवेवां संविधान संशोधन अधिनियम, 2011 :** कोऑपरेटिव सोसाइटीज के निर्माण की स्वतन्त्रता मौलिक अधिकारों में सम्मिलित की गई। नीति निर्देशक तत्वों में कोऑपरेटिव सोसाइटीज के गठन प्रबन्धन आदि के प्रोत्साहन को सम्मिलित किया गया।

14. राज्य विधानमंडल

राज्य की राजनीतिक व्यवस्था में राज्य विधानमंडल की केन्द्रीय एवं प्रभावी भूमिका होती है। संविधान के अनुच्छेद 168 से 212 में राज्य विधान मंडल की शक्तियों, सुविधाओं, कार्यवाही, अधिकारियों, कार्यकाल, संगठन आदि के बारे में बताया गया है।

राज्य विधानमंडल का गठन

राज्य विधानमंडल के गठन में कोई एकरूपता नहीं है। कुछ राज्यों में एक सदनीय व्यवस्था है जबकि कुछ में द्विसदनीय है। इस समय केवल 6 राज्यों में दो सदन हैं ये हैं आन्ध्रप्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, कर्नाटक और जम्मू एवं कश्मीर। जिन राज्यों में द्विसदनीय व्यवस्था है वहां विधानमंडल में राज्यपाल, विधानपरिषद् और विधानसभा होते हैं।

दो सदनों का गठन

विधान सभा का गठन

संख्याः- विधानसभा के प्रतिनिधियों को प्रत्यक्ष मतदान से वयस्क मताधिकार के द्वारा निर्वाचित किया जाता है। इसकी अधिकतम संख्या 500 और न्यूनतम 60 तय की गई है। हालांकि अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम एवं गोवा के मामले में यह संख्या 30 तय की गई है एवं मिजोरम व नागालैंड के मामले में क्रमशः 40 एवं 46। इसके अलावा सिक्किम और नागालैंड विधानसभा के कुछ सदस्य अप्रत्यक्ष रूप से भी चुने जाते हैं।

मनोनीत सदस्य

राज्यपाल आंग्ल-भारतीय समुदाय से एक सदस्य को मनोनीत कर सकता है।

अनुसूचित जाति/जनजाति के लिए स्थानों का आरक्षण

संविधान में राज्य जनसंख्या के अनुपात के आधार पर प्रत्येक राज्य की विधानसभा के लिए अनुसूचित जाति/जनजाति की सीटों की व्यवस्था की गई है।

विधान परिषद का गठन

संख्याः- विधानसभा सदस्यों से हटकर विधानपरिषद के सदस्य अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होते है। परिषद में अधिकतम संख्या विधानसभा की एक तिहाई और न्यूनतम 40 निश्चित है।

निर्वाचन पद्धति

- विधानपरिषद के कुल सदस्यों में से 1/3 सदस्य स्थानीय निकायों जैसे नगरपालिका, जिला बोर्ड आदि के जरिए चुने जाते हैं।
- 1/12 सदस्यों को राज्य में रह रहे 3 वर्ष से स्नातक निर्वाचित करते हैं।
- 1/12 सदस्यों का निर्वाचन 3 वर्ष से अध्यापन कर रहे लोग चुनते हैं लेकिन ये अध्यापक माध्यमिक स्कूलों से कम स्तर के नहीं होने चाहिये।
- 1/3 सदस्यों का चुनाव विधानसभा के सदस्यों द्वारा किया जाता है।
- बाकी बचे हुए सदस्यों का नामांकन राज्यपाल द्वारा लोगों के बीच से किया जाता है, जिन्हें साहित्य, ज्ञान, कला, सहकारिता आंदोलन और समाजसेवा का विशेष ज्ञान व व्यावहारिक अनुभव हो।
- इस तरह विधानपरिषद के कुल सदस्यों में से 5/6 सदस्यों का अप्रत्यक्ष रूप से चुनाव होता है, और 1/6 को राज्यपाल मनोनीत करता है।

दोनों सदनों का कार्यकाल

विधानसभा का कार्यकालः लोकसभा की तरह विधानसभा भी लगातार चलने वाला सदन नहीं है। आम चुनाव के बाद पहली बैठक से लेकर इसका सामान्य कार्यकाल पांच वर्ष का होता है। इस काल के समाप्त होने पर विधानसभा स्वतः ही भंग हो जाती है, हालांकि इसे किसी भी समय भंग करने के लिए राज्यपाल अधिकृत है।

- राष्ट्रीय आपातकाल के समय में संसद द्वारा विधानसभा का कार्यकाल एक समय में एक वर्ष तक के लिए (कितने भी समय के लिए) बढ़ाया जा सकता है।

विधानपरिषद का कार्यकाल

राज्यसभा की तरह विधानपरिषद एक नियमित सदन है, यानी कि स्थायी अंग जो भंग नहीं होता। लेकिन इसके एक-तिहाई सदस्य हर दूसरे वर्ष में सेवानिवृत्त होते रहते हैं, इस तरह एक सदस्य छह वर्ष के लिए नियमित रहता है।

राज्य विधानमंडल की सदस्यता

योग्यताएं :-

विधानमंडल का सदस्य चुने जाने के लिए संविधान में उल्लिखित किसी व्यक्ति की योग्यताएं निम्नलिखित हैं-

- उसे भारत का नागरिक होना चाहिए।
- विधानसभा के मामले में 25 वर्ष से कम और विधान

परिषद के मामले में 30 वर्ष से कम उसकी आयु नहीं होनी चाहिए।

- संसद द्वारा निर्धारित अन्य योग्यताएं भी उसमें होनी चाहिए।
- विधानसभा सदस्य बनने वाला व्यक्ति संबंधित राज्य के निर्वाचन क्षेत्र में भी होना चाहिए।

अयोग्यताएं

राज्य विधानमण्डल के सदस्य बनने पर संविधान के तहत उस व्यक्ति को निम्नलिखित कारणों से अयोग्य घोषित किया जा सकता है-

- संसद द्वारा निर्मित किसी कानून के तहत उसे अयोग्य करार दिया गया हो।
- यदि वह केंद्र या राज्य सरकार के तहत किसी लाभ के पद पर है।
- यदि उसे कानूनी तौर पर पागल घोषित किया गया हो।
- यदि वह दिवालिया हो।

दल-बदल के आधार पर अयोग्यता

राज्य विधानमंडल के सदस्य को संविधान में 10वीं अनुसूची में दल-बदल के कारण उसे अयोग्य ठहराने की व्यवस्था है। 10वीं अनुसूची के तहत यदि अयोग्यता का मामला उठे तो विधानपरिषद के मामले में सभापति एवं विधानसभा के मामले में अध्यक्ष (राज्यपाल नहीं) फैसला करेगा।

स्थानों का रिक्त होना

निम्नलिखित मामलों में विधानमंडल सदस्य का पद रिक्त हो जाता है –

- **दोहरी सदस्यता:** एक व्यक्ति एक समय में विधानमंडल के दोनों सदनों का सदस्य नहीं हो सकता।
- **अयोग्यता:** राज्य विधानमंडल का कोई सदस्य यदि अयोग्य पाया जाता है, तो उसका पद खाली हो जाएगा।
- **त्यागपत्र:** कोई सदस्य अपना लिखित इस्तीफा विधान परिषद के मामले में सभापति और विधानसभा के मामले में अ ध्यक्ष को दे सकता है। त्यागपत्र स्वीकार होने पर उसका पद रिक्त हो जाएगा।
- **अनुपस्थिति:** यदि कोई सदस्य बिना पूर्व अनुमति के 60 दिन तक बैठकों से अनुपस्थित रहता है तो सदन उसके पद को रिक्त घोषित कर सकता हैं।
- **अन्य मामले:** किसी सदस्य का पद रिक्त हो सकता है–
  - यदि वह किसी राज्य का राज्यपाल निर्वाचित हो जाए।
  - यदि उसे सदन से निकाल दिया जाए।
  - यदि वह राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के पद पर निर्वाचित हो जाए और।
  - यदि न्यायालय द्वारा उसके निर्वाचन को अमान्य ठहरा दिया जाए।

विधानमंडल के पीठासीन अधिकारी

राज्य विधानमंडल के प्रत्येक सदन का अपना पीठासीन अधिकारी होता है। विधानसभा के लिए अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष और विधानपरिषद के लिए सभापति एवं उप सभापति होता है।

विधानसभा अध्यक्ष

विधानसभा के सदस्य अपने सदस्यों के बीच से ही अध्यक्ष का निर्वाचन करते हैं। सामान्यत: विधानसभा के कार्यकाल तक अध्यक्ष पदासीन रहता है। हालांकि समय से पूर्व भी वह निम्नलिखित मामलों में अपना पद छोड़ सकता है–

- यदि विधानसभा के तत्कालीन सदस्यों द्वारा प्रस्ताव पास कर उसे हटा दिया जाए।
- यदि उसकी विधानसभा सदस्यता समाप्त हो जाए।
- यदि वह उपाध्यक्ष को अपना त्यागपत्र दे दे और।

अध्यक्ष की निम्नलिखित शक्तियां एवं कार्य होते हैं-

- प्रथम मामले में वह मत नहीं देता लेकिन बराबर मत होने की स्थिति में वह फैसला देने के लिए ऐसा कर सकता है।
- सदन के नेताओं के आग्रह पर वह विशेष बैठक को अनुमति प्रदान कर सकता है।
- वह इस बात का निर्णय कर सकता है कि कोई विधेयक धन विधेयक है या नहीं। इस प्रश्न पर उसका निर्णय अंतिम होगा।
- दसवीं अनुसूची के आधार पर किसी सदस्य की अयोग्यता को लेकर उठे किसी विवाद पर वह फैसला दे सकता है।
- कार्यवाही एवं अन्य कार्यों को सुनिश्चि करने के लिए वह व्यवस्था एवं शिष्टाचार बनाए रखता है।
- कोरम के पूरा न होने पर वह विधानसभा की बैठक को स्थगित या निलंबित कर सकता है।

विधानसभा उपाध्यक्ष

अध्यक्ष की तरह ही विधानसभा के सदस्य उपाध्यक्ष का चुनाव भी अपने बीच से ही करते हैं। अध्यक्ष की ही तरह उपाध्यक्ष भी विधानसभा के कार्यकाल तक पद पर बने रहता है, हालांकि समय से पूर्व भी निम्नलिखित तीन मामलों में पद रिक्त हो सकता है–

- यदि विधानसभा सदस्य बहुमत के आधार पर उसे हटाने का प्रस्ताव पास करे दे।
- यदि उसकी विधानसभा सदस्यता समाप्त हो जाए।
- यदि वह अध्यक्ष को इस्तीफा लिख दे और

विधान परिषद का सभापति

विधान परिषद के सदस्य अपने बीच से ही सभापति को चुनते हैं। सभापति का पद निम्नलिखित तीन मामलों में रिक्त हो सकता हैं :–

- यदि विधानपरिषद में उपस्थित तत्कालीन सदस्य बहुमत से उसे हटाने का प्रस्ताव पास कर दें।
- यदि परिषद से उसकी सदस्यता समाप्त हो जाय।

यदि वह उप सभापति को लिखित इस्तीफा दे दे, और

विधान परिषद का उपसभापति

सभापति की तरह ही उप सभापति को भी परिषद के सदस्य अपने बीच से चुनते हैं। उप सभापति का पद निम्नलिखित तीन मामलों में रिक्त हो सकता हैं–

- यदि परिषद के तत्कालीन सदस्य बहुमत से उसके खिलाफ प्रस्ताव पास करे दें।
- यदि वह सभापति को इस्तीफा दे दे, और।
- यदि परिषद के सदस्य उसे हटा दें।

राज्य विधानमंडल का सत्र

सत्र (बैठक) के लिए बुलावा

राज्य विधानमंडल के प्रत्येक सदन को राज्यपाल समय-समय पर बैठक का बुलावा भेजता है। दोनों सत्रों के बीच छह माह से अधिक का समय नहीं होना चाहिए।

स्थगन

बैठक को विशेष काल के लिए स्थगित भी किया जा सकता है। यह समय घंटों, दिनों या हफ्तों का भी हो सकता है।

विघटन

एक स्थायी सदन के होने के नाते विधानपरिषद का विघटन नहीं हो सकता। सिर्फ विधानसभा का विघटन हो सकता है। स्थगन के विपरीत विघटन के तहत चालू सदन समाप्त हो जाता है और आम चुनाव के बाद नए सदन का निर्माण होता है। विधानसभा के विघटन होने पर विधेयकों के खारिज होने को हम इस प्रकार समझ सकते हैं–

- एक विधेयक विधानसभा द्वारा पारित हो (एक सदनीय विधानमंडल वाले राज्य में) या दोनों सदनों द्वारा पारित हो (बहु सदनीय व्यवस्था वाले राज्य में) लेकिन राष्ट्रपति द्वारा सदन के पास पुनर्विचार हेतु लौटाया गया हो को समाप्त नहीं किया जा सकता।
- विधानसभा द्वारा पारित लेकिन विधानपरिषद में लंबित विधेयक खारिज हो जाता है।
- विधानसभा में लंबित (Pending) पड़ा विधेयक खारिज हो जाता है।
- एक विधेयक जो विधानपरिषद में लंबित हो लेकिन विधानसभा द्वारा पारित न हो, को खारिज नहीं किया जा सकता।

कोरम (गणपूर्ति)

किसी भी कार्य को शुरू करने से पूर्व सदस्यों की एक न्यूनतम संख्या को कोरम कहते हैं। सदन में कुल सदस्यों का दसवां हिस्सा (कार्यकारी अधिकारियों सहित) होता है जो कभी ज्यादा भी हो सकता है।

सदन में मतदान

किसी भी सदन की बैठक में कार्यकारी अधिकारियों को छोड़कर तय किए गए सभी मामलों को बहुमत के आधार पर तय किया जाता है। केवल कुछ मामले जिन्हें विशेष रूप से संविधान में तय किया गया है जैसे विधानसभा अध्यक्ष को हटाना या विधानपरिषद के सभापति को हटाना इनमें सामान्य बहुमत की बजाय विशेष बहुमत की आवश्यकता होती है।

विधानमंडल में भाषा

विधानमंडल में कामकाज संपन्न कराने के लिए संविधान कार्यालयी भाषा या उस राज्य के लिए हिंदी अथवा अंग्रेजी की घोषणा करता है। हालांकि विधायी अधिकारी किसी सदस्य को अपनी मातृभाषा में सदन को संबोधित करने की अनुमति दे सकता है।

मंत्रियों एवं महाधिवक्ता के अधिकार

प्रत्येक मंत्री एवं महाधिवक्ता को यह अधिकार है कि वह सदन की कार्यवाही में भाग ले, बोले एवं सदन से संबद्ध समिति जिसके लिए वह सदस्य रूप में नामित है, वोट देने के अधिकार के बिना भी भाग ले।

- एक मंत्री जो सदन का सदस्य नहीं है, दोनों सदनों की कार्यवाही में भाग ले सकता है।

विधानमंडल में विधायी कार्यपद्धति

साधारणा विधेयक

- **सदन में बने विधेयक:** एक साधारण विधेयक विधानमंडल

के किसी सदन में निर्मित हो सकता है। विधेयक तीन स्तरों के बाद पारित होता है-

- प्रथम वाचन
- द्वितीय वाचन
- तृतीय वाचन

- **दूसरे सदन में विधेयक :**

दूसरे सदन में भी विधेयक उन तीनों स्तरों के बाद पारित होता है। जब कोई विधेयक विधानसभा से पारित होने के बाद विधानपरिषद में भेजा जाता है, तो वहां तीन विकल्प होते हैं–

- इस पर कोई कार्यवाही न की जाए और विधेयक को विचाराधीन रखा जाए।
- कुछ संशोधनों के बाद पारित कर विचारार्थ इसे विधानसभा को भेज दिया जाए।
- इसे उसी रूप में (बिना संशोधन के) पारित कर दिया जाए।
- विधेयक को अस्वीकृत कर दिया जाए।

साधारण विधेयक पारित करने के संदर्भ में विधानसभा को खास शक्ति प्राप्त है। ज्यादा से ज्यादा परिषद एक विधेयक को चार माह के लिए रोक सकती है। पहली बार में तीन माह के लिए और दूसरी बार में एक-माह के लिए। संविधान में किसी विधेयक पर असहमति होने के मामले में दोनों सदनों की संयुक्त बैठक का प्रावधान नहीं रखा गया है।

राज्यपाल की स्वीकृति

विधानसभा या द्विसदनीय व्यवस्था में दोनों सदनों द्वारा पारित होने के बाद प्रत्येक विधेयक राज्यपाल के समक्ष मंजूरी के लिए भेजा जाता है। राज्यपाल के पास चार विकल्प होते हैं–

- वह राष्ट्रपति के विचारार्थ विधेयक को सुरक्षित रख ले।
- वह विधेयक को अपनी मंजूरी देने से रोके रखे।
- वह सदन या सदनों के पास विधेयक को पुनर्विचार के लिए भेज दे, और
- वह विधेयक को मंजूरी प्रदान कर दे।

राष्ट्रपति की मंजूरी

यदि कोई विधेयक राज्यापाल द्वारा राष्ट्रपति की मंजूरी के लिए सुरिक्षत रखा जाता है तो राष्ट्रपति या तो अपनी मंजूरी दे देते हैं, उसे रोक सकते या विधानमंडल के सदन या सदनों को पुनर्विचार हेतु भेज सकते हैं।

वित्त विधेयक

राज्य विधानमंडल में वित्त विधेयक को पारित करने के मामले में संविधान में विशेष व्यवस्था है। यह निम्नलिखित है– वित्त विधेयक विधानपरिषद में पेश नहीं किया जा सकता। यह केवल विधानसभा में ही राज्यपाल की संस्तुति के बाद पेश किया जा सकता है इस तरह का कोई भी विधेयक सरकारी विधेयक होता है और सिर्फ एक मंत्री द्वारा पेश किया जा सकता है। विधानसभा द्वारा पारित होने बाद एक वित्त विधेयक को विधानपरिषद को विचारार्थ भेजा जाता है। विधानपरिषद के पासे इसके मामले में प्रतिबंधित शक्तियां हैं। वह न तो इसे अस्वीकार कर सकता है, न ही इसमें संशोधन कर सकता है। उसे इसमें संस्तुति देनी होती है और 14 दिनों में विधेयक को लौटाना भी होता है। विधानसभा इसके सुझावों को स्वीकार भी कर सकती है और खारिज भी।

अंततः जब एक वित्त विधेयक राज्यपाल के समक्ष पेश किया जाता है तब वह इस पर अपनी मंजूरी दे सकता है, इसे रोक सकता है या राष्ट्रपति की मंजूरी के लिए सुरक्षित रख सकता है लेकिन राज्य विधानमंडल के पास पुनर्विचार के लिए नहीं भेजा सकता।

राज्य विधानमंडल एवं संसद के बीच कानूनी प्रक्रिया की तुलना

संसद	राज्य विधानमंडल
साधारण विधेयक के संबंध में	
• यह संसद के किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है।	• यह राज्य विधानमंडल के किसी सदन में पेश किया जा सकता है।
• यह किसी मंत्री या निजी सदस्य द्वारा पेश किया जा सकता है।	• यह किसी मंत्री या निजी सदस्य द्वारा पेश किया जा सकता है।
• मूल सदन में पहले, दूसरे और तीसरे वाचन के बाद यह पारित होता है।	• मूल सदन में पहले, दूसरे और तीसरे वाचन के बाद यह पारित होता है।

• यह तभी पारित माना जाता है जब इसमें संसद के दोनों सदनों की संशोधन या बिना संशोधन के सहमति हो।	• यह तभी पारित माना जाता है जब इसमें राज्य विधानमंडल के दोनों सदनों की संशोधन या बिना संशोधन के सहमति हो।
• दोनों सदनों के बीच अंतिम बाधा तब होता है जब पहले सदन द्वारा पारित विधेयक को प्राप्त कर लिया जाए और पहले सदन द्वारा संशोधन को स्वीकार न कर छह महीने तक विधेयक को पारित न किया जाए।	• दोनों सदनों के बीच अंतिम बाधा तब होता है जब पहले सदन द्वारा संशोधन को स्वीकार न कर तीन महीने तक विधेयक को पारित न किया जाए।
• किसी विधेयक के मसौदे पर दोनों सदनों में असहमति होने पर, इसे पारित करने के लिए संविधान में संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक का प्रावधान है।	• किसी विधेयक के मसौदे पर विधानमंडल के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक का संविधान में प्रावधान नहीं है।
• लोकसभा दूसरी बार विधेयक के पारित होने पर राज्यसभा के आगे नहीं जा सकती। दोनों सदनों के बीच एकमात्र रास्ता संयुक्त अधिवेशन है।	• जब एक विधेयक विधानसभा द्वारा दूसरी बार पारित कर परिषद को भेजा जाता है तब यदि परिषद एक माह तक इसे पारित न करे तो यह उसी रूप में पारित माना जाएगा। जिस रूप में विधानसभा ने इसे पारित किया था।

धन विधेयक के संबंध में

संसद	राज्य विधानमंडल
• यह केवल लोकसभा में पेश किया जा सकता है, न कि राज्यसभा में।	• यह केवल विधानसभा में पेश किया जा सकता है, न कि विधानपरिषद में।
• इसे केवल राष्ट्रपति की संस्तुति के बाद ही पेश किया जा सकता है।	• इसे केवल राज्यपाल की संस्तुति के बाद ही पेश किया जा सकता है।
• यह केवल एक मंत्री द्वारा ही पेश किया जा सकता है न कि निजी सदस्य द्वारा।	• यह केवल एक मंत्री द्वारा ही पेश किया जा सकता न कि निजी सदस्य द्वारा।
• इसे राज्यसभा द्वारा संशोधित या अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। इसे लोकसभा को सिफारिश या बिना सिफारिश के 14 दिन के अंदर लौटाना चाहिए।	• इसे विधानपरिषद द्वारा संशोधित या अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। इसे विधानसभा को सिफारिश या बिना सिफारिश के 14 दिन के अंदर लौटा देना चाहिए।
• लोकसभा, राज्यसभा द्वारा सुझाए गए सिफारिश को स्वीकार या अस्वीकार कर सकती है।	• विधानसभा, विधानपरिषद की सिफारिश को स्वीकार या अस्वीकार कर सकती है।
• यदि लोकसभा किसी सिफारिश को स्वीकार कर लेती है तो इसे दोनों सदनों द्वारा परिवर्तित रूप में पारित मान लिया जाता है।	• यदि विधानसभा किसी सिफारिश के साथ इसे स्वीकार कर लेती है तो इसे दोनों सदनों द्वारा परिवर्तित रूप से पारित मान लिया जाता है।
• यदि लोकसभा किसी सुझाव को न माने तो विधेयक को दोनों सदनों द्वारा इसके मूल रूप में पारित समझा जाएगा।	• यदि विधानसभा किसी सुझाव को न माने तो विधेयक को दोनों सदनों द्वारा इसके मूल रूप से पारित माना जाएगा।

- यदि राज्यसभा विधेयक को 14 दिनों के भीतर न लौटाए तो तय सीमा के भीतर इसे पारित माना जाएगा।
- संविधान दोनों सदनों के बीच विधेयक पारित करने के लिए अंतिम विकल्प उपलब्ध नहीं कराता। ऐसा इसलिए क्योंकि लोकसभा राज्यसभा पर व्याप्त रहती है और वह यदि सहमत न हो तो पूर्व विधेयक

- यदि विधानसभा विधेयक को 14 दिनों के भीतर न लौटाए तो तय सीमा के भीतर इसे पारित माना जाएगा।
- संविधान दोनों सदनों के बीच पारित करने के लिए अंतिम विकल्प उपलब्ध नहीं कराता। ऐसा इसलिए क्योंकि विधान सभा विधानपरिषद पर व्याप्त रहती है और वह यदि सहमत न हो तो पूर्व विधेयक

पास हो जाता है।
पाास हो जाता है।

राज्य विधानमंडल के विशेषाधिकार

राज्य विधानमंडल के कुछ विशेष अधिकार होते हैं। विध ानमंडल के सदनों, उसकी कमेटियों और सदस्यों को अपने कार्यों को प्रभावी रूप देने के लिए सुरक्षा एवं स्वतंत्रता की जरूरत होती है। बिना इन सुविधाओं के सदन न तो वह व्यवस्था बना सकते हैं और न ही अपनी जिम्मेदारियां निभा सकते हैं।

सामूहिक विशेषधिकार :

प्रत्येक सदन को मिलने वाली सामूहिक विधानमंडलीय सुविधाएं इस प्रकार हैं-

- सदन की कार्यवाही की जांच अदालत नहीं करती।
- इन्हें अपनी रिपोर्ट प्रकाशित करने और कार्यवाही में बहस करने का अधिकार है।[17]
- अपने सदस्य के पकड़ें जाने, जेल में डालने या छूटने की त्वरित जानकारी लेने का अधिकार।
- इन्हें यह भी अधिकार है कि महत्वपूर्ण मामलों में गुप्त मंत्रणा करें।

व्यक्तिगत विशेषाधिकार

- उन्हें सदन चलने के 40 दिन पहले और 40 दिन बाद तक गिरफ्तार नहीं किया जा सकता। यह केवल फौजदारी मामले में है।
- राज्य विधानमंडल में उन्हें बोलने की स्वतंत्रता है। उसके द्वारा दिए गए मत या विचार को किसी अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकती।
- वे न्यायिक मामलो से मुक्त होते हैं। जब सदन चल रहा हो

वे साक्ष्य देने या किसी केस में बतौर गवाह उपस्थित होने से इनकार कर सकते हैं।

राज्य विधानमंडल की सदस्य संख्या

क्र.सं.	राज्य	विधानसभा में सदस्य	विधानपरिषद में सदस्य संख्या
1.	आंध्रप्रदेश	294	-
2.	अरूणाचल प्रदेश	60	-
3.	असम	126	-
4.	बिहार	243	75
5.	छत्तीसगढ़	90	-
6.	गोवा	40	-
7.	गुजरात	182	-
8.	हरियाणा	90	-
9.	हिमाचल प्रदेश	68	-
10.	जम्मू और कश्मीर	76	36
11.	झारखंड	81	-

12.	कर्नाटक	224	63
13.	केरल	140	–
14.	मध्य प्रदेश	230	–
15.	महाराष्ट्र	288	78
16.	मणिपुर	60	–
17.	मेघालय	60	–
18.	मिजोरम	40	–
19.	नागालैंड	60	–
20.	उड़ीसा	147	–
21.	पंजाब	117	–
22.	राजस्थान	200	–
23.	सिक्किम	32	–
24.	तमिलनाडु	234	–
25.	त्रिपुरा	60	–
26.	उत्तरप्रदेश	403	100
27.	उत्तरांचल	70	–
28.	पश्चिम बंगाल	294	

Add. 41-42A, Ashok Park Main, New Rohtak Road, New Delhi-110035
+91-9350679141

15. उच्चतम न्यायालय

भारतीय संविधान ने एकल न्याय व्यवस्था के तहत उच्चतम स्थान पर सर्वोच्च न्यायालय व उसके अधीन उच्च न्यायालयों की स्थापना की है। न्यायालय की यह एकल व्यवस्था भारत सरकार अधिनियम 1935 से ली गई और इसे केंद्रीय एवं राज्य कानून में समान रूप से लागू किया गया। भारत के उच्चतम न्यायालय का गठन 28 जनवरी, 1950 को किया गया। यह भारत सरकार अधिनियम 1935 के तहत लागू संघ न्यायालय का उत्तराधिकारी था। अनुच्छेद 124 से 147 तक, भारतीय संविधान के भाग ट में उच्चतम न्यायालय का गठन, स्वतंत्रता, न्यायक्षेत्र, शक्तियां, व्यवस्था आदि का उल्लेख है।

उच्चतम न्यायालय का गठन

इस समय उच्चतम न्यायालय में 26 न्यायाधीश (एक मुख्य न्यायाधीश) है। मूलतः उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या 8 (एक मुख्य न्यायाधीश और 7 उच्च न्यायाधीश) निश्चित थी।

न्यायाधीश

न्यायाधीशों की नियुक्तिः उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति अन्य न्यायाधीशों एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की सलाह के बाद करता है। इसी तरह अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति भी होती है। इसमें मुख्य न्यायाधीश की सलाह आवश्यक है।

न्यायाधीशों की योग्यताः उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश बनने के लिए किसी व्यक्ति में निम्नलिखित योग्यताएं होनी चाहिए।

- उसे भारत का नागरिक होना चाहिए।
- (अ) उसे किसी उच्च न्यायालय का कम से कम पांच साल के लिए न्यायाधीश होना चाहिए, या (ब) उसे उच्च न्यायालय या विभिन्न न्यायालयों में मिलाकर 10 साल तक वकील होना चाहिए, या (स) राष्ट्रपति के मत में उसे पारंगत विधिवेत्ता होना चाहिए।

शपथ या वचनः उच्चतम न्यायालय के लिए नियुक्त न्यायाधीश को अपना कार्यकाल संभालने से पूर्व राष्ट्रपति या इस कार्य के लिए उसके द्वारा नियुक्त व्यक्ति के सामने निम्नलिखित शपथ लेनी होगी–

- भारत के संविधान के प्रति विश्वास एवं सत्यनिष्ठा।
- भारत की एकता एवं अखंडता को अक्षुण्ण रखना।
- अपनी सर्वोच्च योग्यता एवं ज्ञान के साथ विश्वासपूर्वक, बिना डर एवं पक्षपात के सत्यता के अनुरूप फैसला देना।

न्यायाधीशों का कार्यकाल

- वह 65 वर्ष की आयु तक पद पर बना रह सकता है।
- उम्र के मामले में किसी प्रश्न के उठने पर संसद द्वारा स्थापित संस्था इसका निर्धारण करेगी।
- संसद की सिफाशि पर राष्ट्रपति द्वारा उसे पद से हटाया जा सकता है।
- राष्ट्रपति को वह लिखित त्यागपत्र दे सकता है।

यह रोचक है कि उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश पर अब तक महाभियोग नहीं लगाया जा सका है।

वेतन एवं भत्ते

वेतन, भत्ते, सुविधाएं, अवकाश एवं पेंशन का निर्धारण समय-समय पर संसद द्वारा किया जाता है। लेकिन न्यायाधीश की पदावधि के दौरान कोई अलाभकारी परिवर्तन नही किया जाएगा।

कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश

राष्ट्रपति किसी न्यायाधीश को उच्चतम न्यायालय का कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश नियुक्त कर सकता है जब–

- मुख्य न्यायाधीश का पद रिक्त हो,
- अस्थायी रूप से मुख्य न्यायाधीश अनुपस्थित हो,
- मुख्य न्यायाधीश अपने दायित्वों के निर्वहन में असमर्थ हो।

तदर्थ न्यायाधीश

जब कभी कोरम पूरा करने में स्थायी न्यायाधीशों की संख्या कम हो रही हो तो भारत का मुख्य न्यायाधीश किसी उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को अस्थायी काल के लिए उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीश नियुक्त कर सकता है। ऐसा वह राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी के बाद ही कर सकता है।

सेवानिवृत्त न्यायाधीश

किसी भी समय भारत का मुख्य न्यायाधीश उच्चतम न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश या उच्च न्यायालय से अल्पकाल के लिए उच्चतम न्यायालय में कार्य करने का अनुरोध कर सकता है। ऐसा संबंधित व्यक्ति एवं राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति से ही किया जा सकता है।

उच्चतम न्यायालय का स्थान

संविधान ने उच्चतम न्यायालय का स्थान दिल्ली में घोषित

किया। लेकिन मुख्य न्यायाधीश को यह अधिकार है कि उच्चतम न्यायालय का स्थान कहीं और नियुक्त करे लेकिन ऐसा निर्णय वह राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति के बाद ही ले सकता है।

उच्चतम न्यायालय की शक्तियां एवं क्षेत्राधिकार

संविधान में उच्चतम न्यायालय की व्यापक शक्तियों एवं क्षेत्राधिकार को उल्लिखित किया गया है। उच्चतम न्यायालय की शक्ति एवं न्यायक्षेत्रों को निम्नलिखित तरह से वर्गीकृत किया जा सकता है–

प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार

किसी भी विवाद को जो

- केंद्र व एक या अधिक राज्यों के बीच हों, या
- केंद्र और कोई राज्य या राज्यों का एक तरफ होना एवं एक या अधिक राज्यों का दूसरी तरफ होना, या
- दो या अधिक राज्यों के बीच।

उपरोक्त संघीय विवाद पर उच्चतम न्यायालय में 'विशेष मूल' न्यायक्षेत्र निहित है। विशेष का मतलब है किसी अन्य न्यायालय को विवादों के निपटाने में इस तरह की शक्तियां प्राप्त नहीं हैं।

न्यायादेश क्षेत्राधिकार

संविधान ने उच्चतम न्यायालयों को नागरिकों के मूल अधिकारों का रक्षक के रूप में स्थापित किया है। उच्चतम न्यायालय को अधिकार प्राप्त है कि वह बंदी प्रत्यक्षीकरण, उत्प्रेषण परमादेश आदि न्यायादेश जारी कर नागरिक के मूल अधिकारों की रक्षा करें। न्यायिक क्षेत्र के मामले में उच्चतम केवल मूल अधिकारों के क्रियान्वयन के संबंध में न्यायादेश जारी कर सकता है, अन्य उद्देश्य से नहीं; जबकि दूसरी तरफ उच्च न्यायालय न केवल मूल अधिकारों के लिए न्यायादेश जारी कर सकता है बल्कि अन्य उद्देश्यों के लिए भी इसे जारी कर सकता है।

पुनर्विचार क्षेत्राधिकार

पुनर्विचार न्यायक्षेत्र को निम्नलिखित चार शीर्षों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

- संवैधानिक मामले: संवैधानिक मामलों में उच्चतम न्यायालय में उच्च न्यायालय के फैसले के खिलाफ अपील की जा सकती है। यदि उच्च न्यायालय इसे प्रमाणित करे कि मामले में कानून का पूरक प्रश्न निहित है।
- दीवानी मामले: दीवानी मामलों के तहत उच्चतम न्यायालय में किसी भी मामले को लाया जा सकता है यदि उच्च न्यायालय प्रमाणित कर दे कि–
    - मामला सामान्य महत्व के पूरक प्रश्न पर आधारित है।
    - ऐसा प्रश्न है जिसका निर्णय उच्चतम न्यायालय द्वारा किया जाना चाहिए।
- **आपराधिक मामले:** उच्चतम न्यायालय उच्च न्यायालय के आपराधिक मामलों के फैसलों के खिलाफ सुनवाई उस समय करता है जब –
    - अभियुक्त को सजा-ए-मौत मिली हो और उसने इसके विरुद्ध अपील की हो।
    - यह प्रमाणिक हो जाए कि संबंधित मामला उच्चतम न्यायालय में ले जाने योग्य है।
    - यदि उच्च न्यायालय में कोई अपील हो जिसके तहत आरोपी व्यक्ति को उम्र कैद या दस साल की सजा सुनाई गई हो।
    - उच्च न्यायालय खुद किसी मामले को किसी अधीनस्थ न्यायालय से लिया हो और आरोपी व्यक्ति को उम्र कैद या दस साल की सजा सुनाई गई हो।

सलाहकार क्षेत्राधिकार

संविधान (अनुच्छेद 143) राष्ट्रपति को दो श्रेणियों के मामलों में उच्चतम न्यायालय से राय मांगने का अधकार देता है-

- सार्वजनिक महत्व के किसी मसले पर कानूनी प्रश्न उठने पर।
- किसी पूर्व संवैधानिक संधि, समझौते आदि समान मामलों पर किसी विवाद के उत्पन्न होने पर।

पहले मामले में उच्चतम न्यायालय अपना मत दे भी सकता है और देने से इनकार भी कर सकता है। दूसरे मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा राष्ट्रपति को अपना मत देना अनिवार्य है।

अभिलेख की अदालत

अभिलेखों की अदालत के रूप में उच्चतम न्यायालय के पास दो शक्तियां हैं-

- उच्चतम न्यायालय की कार्यवाही एवं उसके फैसले सार्वकालिक अभिलेख व साक्ष्य के रूप में रखे जाएंगे।
- इसके पास न्यायालय की अवहेलना पर दंडित करने का अधिकार है।

दालत की अवमानना सामान्य नागरिक प्रशासन संबंधी या आपराधिक दोनों प्रकार की हो सकती है।

न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति

उच्चतम न्यायालय में न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति निहित है। इसके तहत वह केंद्र व राज्य दोनों स्तरों पर विधायी 'व कार्यकारी गतिविधियों का परीक्षण करता है। यदि इसमें उसे कोई हनन दिखता है तो इसे वह अवैध घोषित कर सकता है। न्यायिक पुनर्विलोकन की आवश्यकता निम्नलिखित के लिए है–

- संविधान की सर्वोच्चता के सिद्धांत को बनाए रखने के लिए।
- संघीय समानता को बनाए रखने (केंद्र एवं राज्यों के बीच संतुलन) के लिए।
- नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा के लिए।

अन्य शक्तियां

उपरोक्त शक्तियों के अतिरिक्त उच्चतम न्यायालय को कई अन्य शक्तियां भी प्राप्त हैं–

- यह राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति के निर्वाचन के संबंध में किसी प्रकार के विवाद का निपटारा करता है।
- यह संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों के व्यवहार एवं आचरण की जांच करता है, उस संदर्भ में जिसे राष्ट्रपति द्वारा निदेर्शित किया गया है। यदि उसे दुव्यर्वहार का दोषी पाता है तो राष्ट्रपति से उसको हटाने की सिफारिश कर सकता है।
- अपने स्वयं के फैसले की समीक्षा करने की शक्ति इसे है,
- इसके कानून भारत के सभी न्यायालयों के लिए बाध्य होंगें।
- यह संविधान का अन्तिम व्याख्याता है।

16. उच्च न्यायालय और अधिनस्थ न्यायालय

भारत की एकल न्यायिक व्यवस्था में उच्च न्यायालय उच्चतम न्यायालय के अधीन लेकिन अन्य अधीनस्थ न्यायालयों के ऊपर होता है। भारत में सर्वप्रथम उच्च न्यायालय का गठन 1862 में तब हुआ जब कलकत्ता, बंबई और मद्रास उच्च न्यायालयों की स्थापना हुई। इस समय भारत में 21 उच्च न्यायालय है। केंद्रशासित राज्यों में केवल दिल्ली ऐसा राज्य है जिसका अपना उच्च न्यायालय (1966 से) है। संसद किसी उच्च न्यायालय के क्षेत्र का विस्तार किसी केंद्रशासित राज्य या अन्य क्षेत्र में भी कर सकती है। प्रत्येक उच्च न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश और कुछ अन्य न्यायाधीश जिन्हें जरूरत के अनुसार समय-समय पर राष्ट्रपति नियुक्त करते हैं, होते हैं।

न्यायाधीशों की नियुक्तिः उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। मुख्य न्यायधीश की नियुक्ति राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायधीश और संबंधित राज्य के राज्यपाल से परामर्श के बाद करता है। अन्य न्यायधीशों की नियुक्ति में संबंधित उच्च न्यायालय के न्यायधीश से भी परामर्श लिया जाता है।

न्यायाधीशों की योग्यताएं

उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए व्यक्ति के पास निम्न योग्यताएं होनी चाहिएं-

- वह उच्च न्यायालय (या न्यायालयों) में लगातार 10 वर्ष तक अधिवक्ता रह चुका हो।
- उसे भारत के न्यायायिक कार्य में दस वर्ष का अनुभव हो।
- उसे भारत का नागरिक होना चाहिए।

शपथ

जिस व्यक्ति को उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किया गया है, पद संभालने के पूर्व उसे उस राज्य के राज्यपाल या इस कार्य के लिए राज्यपाल द्वारा नियुक्त व्यक्ति के सामने शपथ/वचन लेनी होती है। अपनी शपथ में उच्च न्यायालय का जज वचन देता है-

- भारत की एकता एवं अखंडता को अक्षुण्ण रखूंगा।
- संविधान और कानून का पालन करूंगा।
- बिना किसी डर, भय, राग-द्वेष के निष्पक्ष होकर अपने सर्वोत्तम विवेक का इस्तेमाल कर न्याय करूंगा।
- भारत के संविधान के प्रति सत्य और निष्ठा रखूंगा।

न्यायाधीशों का कार्यकाल

- उसे दो स्थितियों में पद छोड़ना पड़ सकता है-पहला, उसकी नियुक्ति उच्चतम न्यायालय में हो गई हो या फिर उसका किसी दूसरे उच्च न्यायालय में स्थानांतरण कर दिया गया हो।
- 62 वर्ष की आयु तक कार्यभार संभाल सकता है। यदि उसकी उम्र को लेकर सवाल उठते हैं तो राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायाधीशों से परामर्श कर निर्णय लेता है। इस संबंध में राष्ट्रपति का निर्णय अंतिम होता है।
- न्यायाधीश राष्ट्रपति को त्यागपत्र भेज सकता है।
- संसद की संस्तुति के बाद राष्ट्रपति उसे पद से हटा सकता है।

संसद में प्रस्ताव लाने के बाद राष्ट्रपति उसे हटाने का आदेश जारी कर सकता है। प्रस्ताव को विशेष बहुमत के साथ प्रत्येक सदन का समर्थन (इस प्रस्ताव को प्रत्येक सदन में कुल सदस्यों के दो तिहाई सदस्यों का समर्थन या सदन में मौजूद सदस्यों के दो तिहाई का समर्थन) मिलना आवश्यक है। हटाने के दो आधार साबित होने चाहिएं, पहला दुर्व्यवहार और दूसरा अक्षमता।

वेतन एवं भत्ते

उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का वेतन, भत्ते, सुविधाएं, अवकाश और पेंशन को समय-समय पर संसद द्वारा निर्धारित किया जाता है। उनकी नियुक्ति के बाद उनमें कोई कमी नहीं की जा सकती।

न्यायाधीशों का स्थानांतरण

भारत के मुख्य न्यायाधीश से विचार के बाद राष्ट्रपति एक न्यायाधीश की नियुक्ति एक उच्च न्यायालय से दूसरे उच्च न्यायालय में कर सकता है। स्थानांतरण पर उसे अतिरिक्त वेतन, भत्ते जिन्हें संसद द्वारा तय किया जाता है, मिलता है।

कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश

राष्ट्रपति किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को उस उच्च न्यायालय का कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश नियुक्त कर सकता है।

- यदि उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश का पद रिक्त हो, या
- यदि उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश अस्थायी रूप से अनुपस्थित हो, या

- यदि मुख्य न्यायाधीश अपने कार्य निर्वहन में असमर्थ हो।

अतिरिक्त और कार्यकारी न्यायाधीश

राष्ट्रपति योग्य व्यक्तियों को उच्च न्यायालय के अतिरिक्त न्यायाधीश के रूप में नियुक्त कर सकते हैं। यह नियुक्ति अस्थायी रूप से और दो वर्ष से अधिक की नहीं होती।

सेवानिवृत्त न्यायाधीश

उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश किसी भी समय रहे एक राज्य के सेवानिवृत्त न्यायाधीश को अल्पकाल के लिए बतौर कार्यकारी न्यायाधीश काम करने के लिए कह सकते हैं। ऐसा राष्ट्रपति की पूर्व संस्तुति एवं संबंधित व्यक्ति की मंजूरी के बाद ही संभव है।

उच्च न्यायालय का न्याय क्षेत्र एवं शक्तियां

उच्चतम न्यायालय की तरह ही उच्च न्यायालय की भी विस्तारित एवं प्रभावी शक्तियां होती हैं। यह राज्य में अपील करने का सर्वोच्च न्यायालय होता है। यह नागरिकों के मूल अधिकारों का रक्षक होता है। इसके पास संविधान की व्याख्या करने का अधिकार होता है। इसके अलग इसकी भूमिका पर्यवेक्षक एवं सलाहकारी की तरह होती है।

वर्तमान में उच्च न्यायालयों को निम्नलिखित न्यायिक शक्तियां प्राप्त हैं-

- न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति।
- अपीलीय क्षेत्राधिकार,
- पर्यवेक्षीय क्षेत्राधिकार,
- अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण,
- अभिलेखों का न्यायालय,
- प्रारंभिक क्षेत्राधिकार,
- न्यायादेश, मैरिट क्षेत्राधिकार,

प्रारंभिक क्षेत्राधिकार

इसका अर्थ है कि उच्च न्यायालय की शक्ति है कि प्रथम मामले में विवादों की सुनवाई हो, सीधे अपील करके नहीं यह निम्नलिखित मामलों में विस्तारित है-

- राजस्व मामले या राजस्व एकत्र में निर्देश।
- संसद सदस्यों और राज्य विधानमंडल सदस्यों के निर्वाचन में कोई विवाद।
- अधिकारिता का मामला, वसीयत, विवाह, तलाक, कंपनी कानून एवं न्यायालय की अवहेलना।

रिट क्षेत्राधिकार

संविधान का अनुच्छेद 226 उच्च न्यायालय को न्यायादेश (रिट) की शक्ति प्रदान करता है। उच्च न्यायालय का रिट क्षेत्राधिकार (अनुच्छेद 226 के तहत) उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार (अनुच्छेद 32 के तहत) के समान है। इसका तात्पर्य है कि जब किसी नागरिक के मूल अधिकार का हनन होता है तो पीड़ित व्यक्ति का अधिकार है कि वह या तो उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय सीधे जा सकता है।

अपीलीय क्षेत्राधिकार

उच्च न्यायालय प्राथमिक अपीलीय न्यायालय है। अपने राज्य क्षेत्र के तहत आने वाले अधीनस्थ न्यायालयों के आदेशों के विरुद्ध यहां सुनवाई होती है। यहां दोनों तरह के सामान्य नागरिक अधिकार एवं आपराधिक मामलों के बारे में अपील होता है।

दीवानी मामले

इस संबंध में उच्च न्यायालय का न्यायादेश निम्नवत है-

- प्रशासनिक निर्णयों से एवं अन्य tribunals से अपील को उच्च न्यायालय की खंडीय बेंच के सामने रखा जा सकता है।
- जिला न्यायालयों एवं अन्य अधीनस्थ न्यायालयों के निर्णय के खिलाफ दूसरी अपील जिसमें कानून का प्रश्न हो (तथ्यों का नहीं)।
- सर्वप्रथम अपील जिला न्यायालयों, अतिरिक्त जिला न्यायालयों एवं अन्य अधीनस्थ न्यायालयों के आदेशों को सीधे उच्च न्यायालय में लाया जा सकता है।

आपराधिक मामले

उच्च न्यायालय का आपराधिक मामलों में न्यायायिक अपीलीय क्षेत्र निम्नलिखित है-

- कुछ मामलों में आपराधिक कार्यवाही कोड (1973) के लिए विशेष प्रावधान है। सहायक सत्र न्यायाधीश, नगर दंडाधिकारी या अन्य दंडाधिकारी (न्यायिक) की अपील उच्च न्यायालय मे की जा सकती है।
- सत्र न्यायालय और अतिरिक्त सत्र न्यायालय के निर्णय के खिलाफ उच्च न्यायालय में तब अपील की जा सकती है जब किसी को सात साल से अधिक सजा हुई हो।

पर्यवेक्षीय क्षेत्राधिकार

उच्च न्यायालय को इस बात का अधिकार है कि वह अपने न्यायिक क्षेत्र के सभी न्यायालयों व सहायक न्यायालयों के क्रियाकलापों की देखरेख करे (सैन्य न्यायालयों को छोड़कर)।

इस तरह वह-

- उनके द्वारा रखे जाने वाले लेखा, सूची आदि के लिए कार्य की उपलब्धता कराता है।
- उन्हें वहां से बुला सकता है।
- उनकी कार्यवाही के संबंध के मुद्दे, सामान्य नियम, नियंत्रण आदि बनाता है।

अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण

अपीलीय न्यायिक क्षेत्र एवं पर्यवेक्षणीय अधीनस्थ न्यायालयों जिनका ऊपर जिक्र किया गया है, के ऊपर एक उच्च न्यायालय का प्रशासनिक नियंत्रण और अन्य शक्तियां रहती है। इनमें निम्नलिखित शामिल हैं-

- यह अधीनस्थ न्यायालय में लंबित किसी मामले को वापस ले सकता है।
- यह राज्य की न्यायिक सेवा (जिला न्यायाधीशों के अलावा), सदस्यों के अनुशासन, स्थानांतरण, अवकाश स्वीकृति, पदोन्नति आदि मामलों को भी देखता है।
- इसके कानून को उन सभी अधीनस्थ न्यायालयों को मानने की बाध्यता होती है, जो उसके न्यायिक क्षेत्र में आते हैं।
- जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति, पदोन्नति, स्थानांतरण एवं व्यक्ति विशेष की राज्य न्यायिक सेवा (जिला न्यायाधीशों के अलावा), में राज्यपाल से परामर्श लिया जाता है।

अभिलेख का न्यायालय

अभिलेख के न्यायालय के रूप में उच्च न्यायालय के पास दो शक्तियों हैं-

- इसे न्यायालय की अवहेलना पर दंड देने का अधिकार हैं। चाहे वह साधारण कारावास हो या आर्थिक दंड या दोनों।
- फैसले, कार्यवाही और उच्च न्यायालय के कार्य अभिलेखीय याददाश्त एवं प्रमाण के लिए रखे जाते हैं।

न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति

उच्च न्यायालय की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति यह देखने में निहित है कि राज्य विधानमंडल व केंद्र सरकार के कम्री संवैधानिक रूप से कार्य कर रहे हैं। यद्यपि न्यायिक पुनर्विलोकन की संविधान में व्याख्या नहीं की गयी है। अनुच्छेद 13 और 226 में उच्च न्यायालय द्वारा समीक्षा के प्रावधान को दर्शाया गया है। संवैधानिक वैधता के मामले में विधानमंडलीय कार्य को चुनौती दी जा सकती है।

अधीनस्थ न्यायालय

संविधान के छठे भाग में अनुच्छेद 233 से 237 अधीनस्थ न्यायालयों को कार्यकारिणी से स्वतत्र रखने के लिए निम्नलिखित व्यवस्था की गई-

जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति

राज्य में जिला जजों की नियुक्ति, स्थानांतरण और पदोन्नति पर राज्यपाल द्वारा उच्च न्यायालय से परामर्श किया जाता है। जिस व्यक्ति को जिला न्यायाधीश नियुक्त किया जा रहा है उसकी निम्नलिखित योग्यता होनी चाहिए।

- उसे केंद्र या राज्य सरकार की सेवा में नहीं होना चाहिए।
- उसे वकील होना चाहिए या सात वर्ष का समान अनुभव।
- उसका अनुमोदन उच्च न्यायालय द्वारा होना चाहिए।

अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति

राज्य न्यायिक सेवा में किसी व्यक्ति की नियुक्ति (जिला न्यायाधीशों के अलावा) हेतु राज्यपाल उच्च न्यायालय और राज्य लोक सेवा आयोग का परामर्श लेता है।

अधीनस्थ अदालतों पर नियंत्रण

जिला अदालतों एवं अधीनस्थ अदालतो पर नियंत्रण जिनमें स्थानांतरण, पदोन्नति और राज्य न्यायिक सेवा से जुड़े व्यक्ति के अवकाश आदि मामले उच्च न्यायालय के अधीन रहते हैं। यह नियंत्रण अधीनस्थ न्यायिक व्यवस्था की स्वतंत्रता को सुरक्षित करती है।

उच्च न्यायालय के न्यायिक क्षेत्र एवं नाम

	uke	LFkki uk d k o"kZ	U;kf; d {ks=k	[k Mi hB
1.	इलाहाबाद	1866	उत्तर प्रदेश	हलाहाबाद (लखनऊ में बेंच)
2.	आंध्र प्रदेश	1954	आंध्र प्रदेश	हैदराबाद
3.	बंबई	1862	महाराष्ट्र, गोवा, दादर और नगर हवेली	मुंबई (नागपुर, पणजी और औरंगाबाद में खंडपीठ)
4.	कलकत्ता	1862	पश्चिम बंगाल एवं अंडमान	कोलकाता (पोर्ट ब्लेयर में भ्रमणकारी

			और निकोबार द्वीप समूह	खंडपीठ)
5.	छत्तीसगढ़	2000	छत्तीसगढ़	बिलासपुर
6.	दिल्ली	1966	दिल्ली	दिल्ली
7.	गुवाहाटी	1948	असम, मणिपुर, मेघालय, नागालैंड, त्रिपुरा, मिजोरम और अरुणाचल प्रदेश	गुवाहाटी (कोहिमा, आईजॉल, इम्फाल, शिलांग और अगरतला में खंडपीठ)
8.	गुजरात	1960	गुजरात	अहमदाबाद
9.	हिमाचल प्रदेश	1971	हिमाचल प्रदेश	शिमला
10.	जम्मू एवं कश्मीर	1928	जम्मू एवं कश्मीर	श्रीनगर और जम्मू
11.	झारखंड	2000	झारखंड	रांची
12.	कर्नाटक	1884	कर्नाटक	बंगलौर
13.	केरल	1958	केरल और लक्षद्वीप	अर्नाकुलम
14.	मध्यप्रदेश	1956	मध्यप्रदेश	जबलपुर (इंदौर और ग्वालियर में खंडपीठ
15.	मद्रास	1862	तमिलनाडु और पांडिचेरी	चेन्नई
16.	उड़ीसा	1948	उड़ीसा	कटक
17.	पटना	1916	बिहार	पटना
18.	पंजाब और हरियाणा	1875	पंजाब, हरियाणा और चंडीगढ़	चंडीगढ़
19.	राजस्थान	1949	राजस्थान	जोधपुर (जयपुर में खंडपीठ)
20.	सिक्किम	1975	सिक्किम	गंगटोक
21.	उत्तराखण्ड	2000	उत्तराखण्ड	नैतीताल

17. भारत के महान्यायवादी एवं महाधिवक्ता

संविधान में (अनुच्छेद 76) भारत के महान्यावादी' के पद की व्यवस्था की गई है। वह देश का सर्वोच्च कानून अधिकारी होता है।

नियुक्ति एवं कार्यकाल

महान्यायवादी (अटार्नी जनरल) की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा होती है। उसमें उन योग्यताओं का होना आवश्यक है जो उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए होती है। दूसरे शब्दों में, उसके लिए आवश्क है कि वह भारत का नागरिक हो, उसे उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में काम करने का पांच वर्षों का अनुभव हो या किसी उच्च न्यायालय में वकालत का 10 वर्षों का अनुभव हो या राष्ट्रपति के मतानुसार वह न्यायायिक मामलों का योग्य व्यक्ति हो। वह अपने पद पर राष्ट्रपति की दया तक बने रह सकता है। इसका तात्पर्य है कि उसे राष्ट्रपति द्वारा किसी भी समय हटाया जा सकता है। वह राष्ट्रपति को कभी भी अपना त्यागपत्र सौंपकर पदमुक्त हो सकता है। संविधान में महान्यायवादी का पारिश्रमिक तय नहीं किया गया है, उसे राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित पारिश्रमिक मिलता है।

कर्त्तव्य एवं कार्य

भारत सरकार के मुख्य कानून अधिकारी के रूप में महान्यायवादी के निम्नलिखित कर्त्तव्य हैं-

- इस संबंध में संविधान या कानून द्वारा सौंपे गए कार्य को पूरा करना।
- राष्ट्रपति द्वारा भेजे गए कानूनी मसलों पर भारत सरकार को सलाह देना।
- राष्ट्रपति द्वारा सौंपे गए कानूनी मामलों से संबंधित वैधानिक कर्त्तव्य को पूरा करना।

राष्ट्रपति महान्यायवादी को निम्नलिखित कार्य सौंपता है–

- सरकार से संबंधित किसी मामले में उच्च न्यायालय में पेश होना।
- संबंधित मामलों को लेकर उच्चतम न्यायालय में भारत सरकार की ओर से पेश होना।

अधिकार एवं मर्यादाएं

भारत के किसी भी क्षेत्र में किसी भी अदालत में महान्यायवादी को पेश होने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त संसद के दोनों सदनों में बोलने या कार्यवाही में भाग लेने या दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में मताधिकार के बगैर भाग लेने का अधिकार है।

राज्य के महाधिवक्ता

संविधान के अनुच्छेद 165 में व्यवस्था की गई है।

नियुक्ति एवं कार्यकाल

महाधिवक्ता की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा होती है। उस व्यक्ति में उच्च न्यायालय का न्यायाधीश बनने की योग्यता होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में उसे भारत का नागरिक होना चाहिए, उसे दस वर्ष तक न्यायिक अधिकारी या उच्च न्यायालय में 10 वर्षों तक वकालत करने का अनुभव होना चाहिए। संविधान द्वारा महाधिवक्ता के कार्यकाल को निश्चित नहीं किया गया है। वह अपने पद पर तब तक बना रहता है जब तक राज्यपाल की इच्छा हो, इसका तात्पर्य है कि उसे राज्यपाल द्वारा कभी भी हटाया जा सकता है। वह अपने पद से त्यागपत्र देकर भी कार्यमुक्त हो सकता है। संविधान में महाधिवक्ता के वेतन-भत्तों को भी निश्चित नहीं किया गया है। उसके वेतन-भत्तों का निर्धारण राज्यपाल द्वारा किया जाता है।

कर्त्तव्य एवं कार्य

राज्य में वह मुख्य कानून अधिकारी होता है। इस नाते महाधिवक्ता के कार्य निम्नवत हैं-

- संविधान या कानून सम्मत दिए गए संबंधित कानूनी कार्यों का निष्पादन।
- राज्यपाल द्वारा भेजे गए कानूनी मसलों पर सरकार को सलाह देना।
- राज्यपाल द्वारा दी गई जिम्मेदारी के तहत कानूनी मसलों पर कार्य निष्पादन।

अपने कार्य संबंधी कर्त्तव्यों के तहत उसे राज्य के किसी न्यायालय के समक्ष पेश होने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त उसे विधानमंडल के दोनों सदनों या संबंधित कमेटी अथवा उस सभा में, जहां के लिए वह अधिकृत है, में बिना मताधिकार के बोलने व भाग लेने का अधिकार हैं। वह एक सरकारी कर्मी की श्रेणी में नहीं आता इसलिए उसे निजी कानूनी कार्यवाही से रोका नहीं जा सकता।

भारत का महाधिवक्ता

महान्यायवादी के अतिरिक्त भारत सरकार के अन्य कानूनी अधिकारी होते हैं। वे हैं भारत सरकार के महाधिवक्ता एवं अतिरिक्त महाधिवक्ता। वे महान्यायवादी को उसकी जिम्मेदारी पूरी करने में मदद करते हैं। यह उल्लेखनीय है कि महान्यायवादी का पद संविधान निर्मित है, दूसरे शब्दों में अनुच्छेद 76 में महाधिवक्ता एवं अतिरिक्त महाधिवक्ता का उल्लेख नहीं है। महान्यायवादी केंद्रीय कैबिनेट का सदस्य नहीं होता।

18. पंचायती राज

पंचायती राज का विकास

बलवंत राय मेहता समिति

जनवरी 1957 में भारत सरकार ने एक समिति का गठन किया। समिति ने नवंबर 1957 को अपनी जांच रिपोर्ट सौंपी और 'लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण (स्वायतत्ता)' की योजना की सिफारिश की जो कि अंतिम रूप से पंचायती राज के रूप में जाना गया। समिति द्वारा की गई विशिष्ट सिफारिशें निम्नलिखित हैं।

- इन निकायों को पर्याप्त वित्तीय स्रोत मिलने चाहिएं ताकि ये अपने कार्यों और जिम्मेदारियों को संपादित करने में समर्थ हो सके।
- ग्राम पंचायत की स्थापना प्रत्यक्ष रूप से चुने प्रतिनिधियों द्वारा होनी चाहिए, जबकि पंचायत समिति और जिला परिषद की स्थापना अप्रत्यक्ष रूप से चुने सदस्यों द्वारा होनी चाहिए।
- सभी योजना और विकास के कार्य इन निकायों को सौंपे जाने चाहिए।
- पंचायत समिति को कार्यकारी निकाय तथा जिला परिषद को सलाहकारी, समन्वयकारी और पर्यवेक्षकारी (निरीक्षक) निकाय होना चाहिए।
- तीन स्तरीय (भाग) पंचायती राज व्यवस्था की स्थापना - गांव स्तर पर ग्राम पंचायत, ब्लॉक स्तर पर पंचायत समिति, जिला स्तर पर जिला परिषद।

समिति की इन सिफारिशों को राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा जनवरी 1958 में स्वीकार किया गया। **राजस्थान देश का पहला राज्य था, जहां पंचायती राज की स्थापना हुई।** इस व्यवस्था का शिलान्यास 2 अक्टूबर, 1959 को राजस्थान के नागौर जिले में प्रधानमंत्री द्वारा किया गया। इसके बाद आंध्रप्रदेश ने इस योजना को 1959 में लागू किया।

अशोक मेहता समिति

दिसंबर 1977 में, जनता पार्टी ने अशोक मेहता की अध्यक्षता में पंचायती राज संस्थाओं पर एक समिति का गठन किया। इसने अगस्त 1978 में अपनी रिपोर्ट सौंपी। इसकी मुख्य सिफारिशें इस प्रकार हैं-

- पंचायती राज संस्थाओं के मामलों की देखरेख के लिए राज्य मंत्रिपरिषद से एक मंत्री की नियुक्ति होनी चाहिए।
- जनसंख्या के आधार पर अनुसूचित जाति व जनजाति के लिए स्थान आरक्षित होना चाहिए।
- त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था को द्विस्तरीय व्यवस्था में बदलना चाहिए।
- जिला परिषद कार्यकारी अंग होना चाहिए और वह राज्य स्तर पर योजना और विकास के लिए जिम्मेदार हो।
- राज्य के मुख्य चुनाव अधिकारी द्वारा मुख्य चुनाव आयुक्त की सलाह पर पंचायती राज चुनाव कराए जाने चाहिएं।
- विकास के कार्य जिला परिषद को स्थानांतरित होने चाहिएं और सभी विकास अधिकारी इसके नियंत्रण और देखरेख में होने चाहिए।
- सभी स्तर के पंचायती चुनावों में राजनीतिक पार्टियों की आधिकारिक भागीदारी हो।

जी.वी.के. राव और एल.एम. सिंहवी समिति

ग्रामीण विकास एवं गरीबी मुक्ति कार्यक्रम की प्रशासनिक व्यवस्था के लिए योजना आयोग द्वारा 1985 में जी.वी.के. राव की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। समिति इस निष्कर्ष पर पहुंची कि विकास प्रक्रिया दफ्तरशाही युक्त होकर पंचायत राज से विच्छेदित हो गई है। समिति ने पंचायती राज पद्धति को मजबूत और पुनर्जीवित करने हेतु विभिन्न सिफारिशें कीं। 1986 में राजीव गांधी सरकार ने 'लोकतंत्र व विकास के लिए पंचायती राज संस्थाओं के पुनर्जीवन' पर एक समिति का गठन एल.एम. सिंहवी की अध्यक्षता में किया। इसने पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक रूप से मान्य, संरक्षित एवं परिरक्षित करने की सिफारिश की। इसने नियमित, स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव कराने के संवैधानिक प्रावधान की सलाह दी।

पी.वी. नरसिम्हा राव के प्रधानमंत्रित्व में कांग्रेस सरकार ने एक बार फिर पंचायती राज को संवैधानिक करने हेतु विचार किया। सितंबर 1991 को लोकसभा में एक संविधान संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया। अंतत: यह विधेयक 73वें संविधान संशोधन कानून 1992 के रूप में सम्मिलित हुआ और 25 अप्रैल, 1993 को प्रभाव में आया।

1992 का 73वां संशोधन अधिनियम

अधिनियम का महत्व

इस अधिनियम ने भारत के संविधान में एक नया भाग- IX सम्मिलित किया। इसे **'द पंचायतस'** नाम से उल्लिखित किया गया और अनुच्छेद 243 से 243 0 तक प्रावधान सम्मिलित किए

गए। इस अधिनियम ने संविधान में एक नई 11वीं अनुसूची भी जोड़ी। इसमें पंचायतों के 29 कार्यकारी विषय है। इस अधिनियम ने संविधान के 40वें अनुच्छेद को एक प्रयोगात्मक आकार दिया। इस अधिनियम ने पंचायती राज संस्थाओं को एक संवैधानिक रूप दिया और इसे संविधान के अधिकार-क्षेत्र के अधीन लाया।

प्रमुख विशेषताएं

इस अधिनियम की महत्वपूर्ण विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

ग्राम सभा: यह कानून पंचायती राज की स्थापना के साथ ग्राम सभा प्रदान करता है। पंजीकृत मतदाताओ से मिलकर ग्राम सभा बनती है।

त्रिस्तरीय व्यवस्था: इस कानून द्वारा सभी राज्यों के लिए त्रिस्तरीय व्यवस्था प्रदान की गई हैं, ग्राम, ब्लॉक और जिला स्तर पर पंचायत। एक राज्य जिसकी जनसंख्या 20 लाख से कम हो, माध्यमिक स्तर पर पंचायतों को कायम नहीं कर सकता है।

सीटों का आरक्षण: यह कानून प्रत्येक पंचायत में (सभी तीन स्तरों पर) अनुसूचित जाति एवं जनजाति को उनकी संख्या और कुल जनसंख्या के अनुपात में सीटों पर आरक्षण उपलब्ध कराता है।

इस अधिनियम में यह व्यवस्था की गई है कि आरक्षण के मसले पर महिलाओं के लिए उपलब्ध कुल सीटों की संख्या (इसमें वह संख्या भी शामिल है जिसके तहत अनुसूचित जाति एवं जनजाति की महिलाओं को आरक्षण दिया जाता है) एक तिहाई से कम न हो।

पंचायतों का कार्यकाल: यह कानून सभी स्तरों पर पंचायतों का कार्यकाल पांच वर्ष के लिए निश्चित करता है। फिर भी, समय पूरा होने से पूर्व भी उसे विलीन कर सकता है।

अयोग्यताएं: कोई भी व्यक्ति पंचायत का सदस्य नहीं बन पाएगा यदि वह निम्न प्रकार से अयोग्य होगा। राज्य विधानमंडल द्वारा बने किसी भी नियम के अंतर्गत। लेकिन किसी भी व्यक्ति को इस बात पर अयोग्य घोषित नहीं किया जाएगा कि वह 25 वर्ष से कम आयु का है यदि वह 21 वर्ष पूरा कर चुका है।

राज्य चुनाव आयोग: चुनावी प्रक्रियाओं की तैयारी की देखरेख, निर्देशन, नियंत्रण और पंचायतों के सभी चुनावों का प्रबंध राज्य चुनाव आयोग के अधिकार में होगा। इसमें गवर्नर द्वारा मनोनीत राज्य चुनाव आयुक्त सम्मिलित हैं। इसे राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की तर्ज पर हटाने के निर्धारित तरीके के अलावा नहीं हटाया जाएगा।

शक्तियां और कार्य: राज्य विधानमंडल पंचायतों को आवश्यकतानुसार ऐसी शक्तियां और अधिकार दे सकता है जिससे कि वह स्वायत्त संस्थाओं के रूप में कार्य करने में सक्षम हों।

वित्त संबंधी अधिकार निम्न है

- राज्य विधान राज्य संगठित कोष से पंचायतों को सहायता के रूप में अनुदान प्रदान करता है।
- पंचायत को वसूली, एकत्र और उपयुक्त कर निर्धारण, चुंगी कर, शुल्क लेने का अधिकार है।
- राज्य विधान पंचायतों को करों, चुंगी, मार्ग कर और शुल्क एकत्र करने का काम सौंपता है।

वित्त आयोग: राज्य का राज्यपाल प्रत्येक 5 वर्ष में पंचायतों की वित्तीय स्थिति के अवलोकन के लिए वित्त आयोग का गठन करेगा। यह आयोग राज्यपाल को निम्न सिफारिशें करेगा-

- राज्य के संगठित कोष से पंचायतों को दी जाने वाली सहायता अनुदान।
- करों, चुंगी, मार्गकर और शुल्कों का निर्धारण जो कि पंचायतों को सौंपे गए हैं।
- राज्य और पंचायतों में एकत्र किए गए कुल करों, चुंगी, मार्ग कर एवं एकत्रित शुल्कों का बंटवारा राज्य सरकार द्वारा हो।

राज्यपाल द्वारा आयोग को दिया जाने वाला कोई भी मामला जो कि पंचायतों के मजबूत वित्त के पक्ष में हो। राज्यपाल आयोग की सिफारिशों को कार्यवाही रिपोर्ट के साथ राज्य विधानसभा के समक्ष प्रस्तुत करेगा। केंद्रीय वित्त आयोग भी राज्य में पंचायतों के पूरक स्रोतों की राज्य के संगठित कोष से वृद्धि के लिए आवश्यक गणनाओं के बारे में सलाह देगा।

लेखा परीक्षण: राज्य विधानसभा पंचायतों द्वारा की गई y[kk (accounts) की देखदेख और उनके परीक्षण के लिए प्रावधान बना सकता है।

मुक्त किए गये राज्य व क्षेत्र: यह कानून जम्मू-कश्मीर, नागालैंड, मेघालय, मिजोरम और कुछ अन्य क्षेत्रों पर लागू नहीं होता। इन क्षेत्रों के अंतर्गत (अ) राज्यों के अनुसूचित जाति और जनजाति क्षेत्रों में (ब) मणिपुर के उन पहाड़ी क्षेत्रों में जहां जिला परिषद अस्तित्व में हो। (स) पं. बंगाल के दार्जिलिंग जिले जहां पर दार्जिलिंग गोरखा हिल परिषद अस्तित्व में है।

न्यायालय के हस्तक्षेप पर रोक: यह कानून पंचायत के चुनावी मामलों में हस्तक्षेप पर रोक लगाता है। यह घोषित करता है कि चुनाव क्षेत्र और इन चुनाव क्षेत्र में में सीटों के विभाजन संबंधी मुद्दों को न्यायालय के समक्ष पेश नहीं किया जा सकता।

11वीं अनुसूची: इसमें पंचायतों के कानून क्षेत्र के साथ 29 क्रियाशील विषय समाहित है-

- महिला एवं बाल विकास।
- सामाजिक समृद्धि जिसमें विकलांग व मानसिक रोगी की समृद्धि निहित है।
- कमजोर वर्ग की समृद्धि जिसमें विशेषकर अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति वर्ग शामिल हैं।
- लोक विभाजन पद्धति।
- सार्वजनिक संपत्ति की देखरेख।
- वनजीवन तथा कृषि खेती (वनों में)।
- लघु वन उत्पत्ति।
- लघु उद्योग, जिसमें खाद्य उद्योग सम्मिलित है।
- कृषि जिसमें कृषि विस्तार सम्मिलित है।
- भूमि विकास, भूमि सुधार लागू करना, भूमि संगठन एवं भूमि संरक्षण।
- लघु सिंचाई, जल प्रबंधन और नदियों के मध्य भूमि विकास।
- पशुपालन, दुग्ध व्यवसाय तथा मुर्गीपालन।
- मत्स्य उद्योग।
- खादी, ग्राम एवं कुटीर उद्योग।
- ग्रामीण विकास।
- पीने वाला पानी।
- ईंधन तथा पशु चारा।
- सड़कों, पुलों, तटों, जलमार्ग तथा अन्य संचार के साधन।
- ग्रामीण विद्युत जिसमें विद्युत विभाजन समाहित है।
- गैर परंपरागत ऊर्जा स्रोत।
- गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम।
- प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा संबंधी विद्यालय।
- यांत्रिक प्रशिक्षण एवं व्यावसायिक शिक्षा।
- वयस्क एवं गैर-वयस्क औपचारिक शिक्षा।
- पुस्तकालय।
- सांस्कृतिक कार्य।
- बाजार एवं मेले।
- स्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य संबंधी संस्थाएं जिनमें अस्पताल, प्राथमिक व्यवस्था केंद्र तथा दवाखाने शामिल है।
- पारिवारिक समृद्धि।

19. शहरी स्थानीय शासन

भारत में 'शहरी स्थानीय शासन' का अर्थ शहरी क्षेत्र के लोगों द्वारा चुने प्रतिनिधियों से बनी सरकार से हैं। शहरी स्थानीय शासन का अधिकार क्षेत्र उन निर्दिष्ट शहरी क्षेत्रों तक सीमित है जिसे प्रदेश सरकार द्वारा इस उद्देश्य के लिए निर्धारित किया गया है। सितंबर 1991 में पी.वी. नरसिम्हा राव सरकार ने लोकसभा में नया नगरपालिका बिल पेश किया। अंततः यह 74वें संविधान संशोधन कानून के रूप में शामिल हुआ और 1 जून, 1993 को प्रभाव में आया।

1992 का 74वां संशोधन कानून

इस कानून ने भारत के संविधान में नया भाग IX-A शामिल किया। इसे 'नगरपालिकाएं' नाम दिया गया और अनुच्छेद 243-P से 243-ZG तक प्रावधान शामिल किए गए। इस अधिनियम ने संविधान में एक नई 12वीं अनुसूची को भी जोड़ा। इसमें नगरपालिकाओं की 18 कार्यकारी विषय शामिल है।

प्रमुख विशेषताएं: अधिनियम की प्रमुख विशेषताएं निम्न हैं–

तीन प्रकार की नगरपालिकाएं: यह अधिनियम प्रत्येक राज्य में निम्न तीन तरह की नगरपालिकाओं की संरचना प्रदान करता है–

- नगर पंचायत (किसी भी नाम से) परिवर्तित क्षेत्र के लिए, जैसे वह क्षेत्र जिसे ग्रामीण क्षेत्र से शहरी क्षेत्र में परिवर्तित किया जा सके।
- नगरपालिका परिषद (छोटे शहरी क्षेत्रों के लिए)
- बड़े शहरी क्षेत्रों के लिए महानगरपालिका।

संरचना (बनावट): नगरपालिका के सभी सदस्य सीधे नगरपालिका क्षेत्र के लोगों द्वारा चुने जाएंगे। इस उद्देश्य के लिए, प्रत्येक नगरपालिकाओं को निर्वाचन क्षेत्रों (वार्ड) में बांटा जाएगा। राज्य विधानमंडल नगरपालिका के अध्यक्ष के निर्वाचन का तरीका प्रदान कर सकता है। यह नगरपालिका में निम्न सदस्यों के प्रतिनिधित्व की भी सहमति दे सकता है–

- वह व्यक्ति जिसे नगरपालिका के प्रशासन का विशेष ज्ञान अथवा अनुभव हो लेकिन उसे नगरपालिका की सभा में वोट डालने का अधिकार नहीं होगा।
- नगरपालिका क्षेत्र के निर्वाचन क्षेत्र का लोकसभा या राज्य विधानसभा के सदस्यों द्वारा पूर्ण या अंशतः प्रतिनिधित्व किया जा सकता है।
- राज्यसभा और राज्य विधानपरिषद के ऐसे सदस्य जो नगरपालिका क्षेत्र के साथ मतदाता के रूप में पंजीकृत हों।
- समिति के अध्यक्ष (वार्ड समितियों के अतिरिक्त)।

वार्ड समितियां:

तीन लाख या अधिक जनसंख्या वाली नगरपालिका के क्षेत्र के तहत एक या अधिक वार्डों को मिलाकर वार्ड समितियां बनती है।

पदों का आरक्षण :

यह एक्ट अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति को उनकी जनसंख्या और कुल नगरपालिका क्षेत्र की जनसंख्या के अनुपात में प्रत्येक नगरपालिका में आरक्षण प्रदान करता है। इसके अलावा यह महिलाओं को कुल सीटों के एक-तिहाई (इसमें अनुसूचित जाति व जनजाति महिलाओं से संबंधित आरक्षित सीटें भी हैं) सीटों पर आरक्षण प्रदान करता है।

नगरपालिकाओं का कार्यकाल: यह अधिनियम प्रत्येक नगरपालिका का कार्यकाल अवधि 5 वर्ष निर्धारित करता है।

अयोग्यताएं: नगरपालिका के चुने हुए सदस्य निम्न बातों पर अयोग्य घोषित किए जा सकते हैं–

- राज्य के विधान से संबंधित किसी चुनावी उद्देश्य के प्रभाव में अल्प अवधि के लिए किसी नियम के अंतर्गत।
- राज्य विधान द्वारा बनाए गए नियम के अंतर्गत, फिर भी किसी व्यक्ति को 25 वर्ष से कम आयु की शर्त पर अयोग्य घोषित नहीं किया जा सकेगा यदि वह 21 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो।

राज्य चुनाव आयोग:

चुनावी प्रक्रियाओं के देख-रेख, निर्देशन एवं नियंत्रण और नगरपालिकाओं के सभी चुनावों का प्रबंधन राज्य चुनाव आयोग के अधिकार में होगा।

शक्तियां और कार्य:

राज्य विधानमंडल नगरपालिकाओं को आवश्यकतानुसार ऐसी शक्तियां और अधिकार दे सकता है जिससे कि वे स्वायत्त सरकारी संस्था के रूप में कार्य करने में सक्षम हों।

वित्त (राजस्व): संबंधी निम्न अधिकार है-

- नगरपालिका को वसूली, उपयुक्त कर निर्धारण, चुंगी, यात्री कर, शुल्क लेने का अधिकार है।
- राज्य संगठित कोष से नगरपालिकाओं को सहायता के रूप में अनुदान प्रदान करता है।

वित्त आयोग:

वित्त आयोग (जो पंचायतों के लिए गठित किया गया है।) भी प्रत्येक 5 वर्ष में नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति का पुनरावलोकन करेगा और गवर्नर को निम्न सिफारिशें करेगा-

- राज्य और नगरपालिकाओं में एकत्र किए गए कुल करों, चुंगी, मार्ग एवं संग्रहित शुल्कों का बंटवारा राज्य सरकार द्वारा हो।
- करों, चुंगी, पथकर और शुल्कों का निर्धारण जो कि नगरपालिकाओं को सौंपे गए हैं।
- राज्य के संगठित कोष से नगरपालिकाओं को दिए जाने वाले सहायकता अनुदान।
- पंचायतों की वित्तीय स्थिति के सुधार के लिए आवश्यक गणना।
- राज्यपाल द्वारा आयोग को दिया जाने वाला कोई भी मामला जो पंचायतों के मजबूत वित्त के पक्ष में हो।

केंद्रीय वित्त आयोग भी राज्य में नगरपालिकाओं के पूरक स्रोतों की राज्य के संगठित कोष से वृद्धि के लिए (राज्य वित्त आयोग द्वारा दी गई सिफारिशों के आधार पर) आवश्यक गणनाओं के बारे में सलाह देगा।

मुक्त किए राज्य व क्षेत्र: यह अधिनियम राज्यों के अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति क्षेत्रों पर लागू नहीं होता। यह एक्ट प. बंगाल की दार्जिलिंग गोरखा परिषद की शक्तियों और कार्यवाही को प्रभावित नहीं करता।

जिला योजना समिति: प्रत्येक राज्य जिला स्तर पर एक जिला योजना समिति का गठन करेगा जो जिले की पंचायतों एवं नगरपालिकाओं द्वारा तैयार योजना को संगठित करेगी और जिला स्तर पर एक विकास योजना का प्रारूप तैयार करेगी।

महानगरीय योजना समिति: प्रत्येक महानगर क्षेत्र में विकास योजना के प्रारूप को तैयार करने हेतु एक महानगरीय योजना समिति होगी। राज्य विधानमंडल इस संबंध में निम्न प्रावधान बना सकता है-

- इन समिति के सदस्यों के निर्वाचन का तरीका,
- केंद्र सरकार, राज्य सरकार तथा अन्य संस्थाओं का इन कमेटियों में प्रतिनिधित्व,

इस एक्ट के अंतर्गत महानगरीय योजना समिति के 2/3 सदस्य महानगर क्षेत्र में नगरपालिका के निर्वाचित सदस्यों एवं पंचायतों के अध्यक्षों की जनसंख्या के अनुपात में समानुपाती होनी चाहिये।

न्यायालय के हस्तक्षेप पर रोक: यह अधिनियम नगरपालिकाओं के चुनाव संबंधी मामलों में न्यायालय के हस्तक्षेप पर रोक लगाता है। यह घोषित करता है कि चुनाव क्षेत्र और इन चुनाव क्षेत्र में सीटों के विभाजन संबंधी मुद्दों को न्यायालय के समक्ष पेश नहीं किया जा सकता।

12वीं सूची: इसमें नगरपालिकाओं के कानून क्षेत्र के साथ 18 क्रियाशील विषयवस्तु समाहित हैं।

- शहरी योजना (Urban planning) जिसमें शहर की योजना (town) सम्मिलित है।
- प्रयोग में लायी भूमि को नियमित करना और भवन निर्माण।
- आर्थिक एवं सामाजिक विकास योजना।
- सड़कें एवं पुल।
- घरेलू, औद्योगिक एवं व्यावसायिक उददेश्य के लिए जलापूर्ति।
- लोक सेवा, स्वास्थ्य संबंधी, सरंक्षणता और ठोस क्षय प्रबंधन।
- अग्नि सेवाएं।
- नगर वानिकी, पर्यावरण संरक्षण एवं पारिस्थितिकी संबंधी प्रगति।
- समाज के कमजोर वर्गों के हितों का संरक्षण, जिनमें मानसिक रोगी व विकलांग शामिल है।
- बस्तियों का सुधार तथा उन्नति।
- शहरी गरीबी का शमन।
- शहरी सुख-साधन व अनुकूलताओं का प्रावधान; जैसे- पार्क, बगीचे व खेल मैदान।
- सांस्कृतिक, शैक्षिक व सौंदर्य संबंधी पहलुओं को बढ़ावा।
- कब्र तथा कब्रिस्तान, दाहक्रिया व श्मशान घाट और विद्युत शवदाहगृह।
- मवेशियों के पीने के पानी के तालाब, पशु अत्याचार निवारण।
- जन्म व मृत्यु से संबंधित महत्वपूर्ण संख्यिकी।

- जन सुविधाएं जिनमें मार्गों पर विद्युत व्यवस्था, पार्किंग स्थल, बस स्टैंड तथा सार्वजनिक हित सम्मिलित हैं।
- कसाई खानों व चर्म शिल्पकारी का नियमन।

शहरी शासनों के प्रकार

महानगरपालिका

महानगरपालिकाओं का निर्माण बड़े शहरों जैसे दिल्ली, मुंबई, कोलकाता, हैदराबाद, बंगलोर तथा अन्य शहरों के लिए है। यह संबंधित राज्य विधानमंडल के कानून द्वारा राज्यों में स्थापित हुईं तथा भारत की संसद के एक्ट द्वारा केंद्रशासित क्षेत्र में, जिनमें एक साझा एक्ट सभी प्रदेश की महानगरपालिकाओं के लिए हो सकता है या सभी महानगरपालिकाओं के लिए अलग-अलग अधिनियम।

महानगरपालिकाओं के तीन अधिकार क्षेत्र जिनमें परिषद, स्थायी समिति तथा आयुक्त आते हैं। परिषद का प्रधान मेयर होता है। उपमेयर उसका सहायक होता है। वह परिषदों की सभा की अध्यक्षता करता है। स्थायी समिति परिषद के कार्य को सगुम बनाने के लिए गठित की जाती है जो कि आकार में बहुत बड़ी है। नगरपालिका आयुक्त परिषद और स्थायी समिति द्वारा लिए निर्णयों को लागू करने के लिए जिम्मेदार है अत: वह नगरपालिका का मुख्य अधिकारी है।

नगरपालिका

नगरपालिकाएं कस्बों और छोटे शहरों के प्रशासन के लिए स्थापित की गईं। महानगरपालिकाओं की तरह, यह भी राज्य विधानमंडल के संबंधित एक्ट द्वारा गठित की गई हैं और केंद्रशासित राज्यो में भारत की संसद के द्वारा गठित की गई हैं। यह अन्य नामों, जैसे नगरपालिका परिषद, नगरपालिका समिति, नगरपालिका बोर्ड, उपनगरीय नगरपालिका, शहरी नगरपालिका तथा अन्य नाम से भी जानी जाती हैं।

महानगरपालिका की तरह, नगरपालिका के पास भी परिषद, स्थायी समिति तथा मुख्य कार्यकारी परिषद नामक अधिकार क्षेत्र आते हैं। परिषद का प्रधान अध्यक्ष होता है। उपाध्यक्षता उसका सलाहकार होता है। मुख्य कार्यकारी अधिकारी नगरपालिका के प्रत्येक दिन के प्रशासन का जिम्मेदार होता है। वह राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किया जाता है।

सूचीबद्ध क्षेत्रीय (Notified Area) समिति

सूचीबद्ध क्षेत्रीय समिति का गठन दो प्रकार के क्षेत्र के प्रशासन के लिए किया जाता है- औद्योगीकरण के कारण विकासशील कस्बा और वह कस्बा जिसने अभी तक नगरपालिका के गठन की आवश्यक शर्तें पूरी नहीं की हों लेकिन राज्य सरकार द्वारा वह महत्वपूर्ण माना गया है।

कस्बाई क्षेत्रीय समिति

कस्बाई क्षेत्रीय समिति छोटे कस्बों में प्रशासन के लिए गठित की जाती है। यह एक उपनगरपालिका आधिकारिक इकाई है और इसे सीमित नागरिक सेवाएं; जैसे निकासी, सड़कें, मार्गों में प्रकाश व्यवस्था और सरंक्षणता की जिम्मेदारी दी जाती है। यह राज्य विधानमंडल के एक अलग कानून द्वारा गठित किया जाता है।

छावनी परिषद

छावनी क्षेत्र में नागरिक जनसंख्या के प्रशासन के लिए छावनी परिषद की स्थापना की गई है। इसे 1924 के छावनी एक्ट के प्रावधान के अंतर्गत गठित किया गया है, जो केंद्र सरकार द्वारा बनाया गया कानून है। यह केंद्रीय सरकार के रक्षा मंत्रालय के प्रशासनिक नियंत्रण के अधीन कार्य करता है। अत: ऊपरी दी गई स्थानीय शहरी इकाइयों के विपरीत जो कि राज्य द्वारा प्रशासित और गठित की गई हैं, छावनी परिषद केंद्र सरकार द्वारा गठित और प्रशासित की जाती है।

इस समय, देश में 63 छावनी परिषदें है। एक छावनी परिषद में आंशिक रूप से निर्वाचित या मनोनीत सदस्य शामिल हैं। निर्वाचित सदस्य 3 वर्ष की अवधि के लिए जबकि मनोनीत सदस्य (कार्यालय के सेवानिवृत सदस्य) उस स्थान पर लंबे समय तक रहते हैं। छावनी कार्य नगरपालिका के समान होते हैं। छावनी परिषद के कार्यकारी अधिकारी की नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा होती है।

नगरीयकरण

इस तरह का शहरी प्रशासन वृहत सार्वजनिक उपक्रमों द्वारा स्थापित किया जाता है। जो उद्योगों के निकट बनी आवासीय क्षेत्र में रहने वाले अपने कर्मचारियों को सुविधाएं प्रदान करती है। यह उपक्रम नगर के प्रशासन की देखरेख के लिए एक नगर प्रशासक नियुक्त करता है।

बंदरगाह संघ

बंदरगाह संघ की स्थापना बंदरगाह क्षेत्रों जैसे मुंबई, कोलकाता, चेन्नई और अन्य में मुख्य रूप से दो उद्देश्यों के लिए की गई-

- बंदरगाहों की सुरक्षा व व्यवस्था।
- नागरिक सुविधाएं प्रदान करना।

बंदरगाह संघ का गठन संसद के एक्ट द्वारा किया गया है। निर्वाचित और गैरनिर्वाचित दोनों प्रकार के सदस्य सम्मिलित हैं।

विशेष उद्देश्य हेतु अभिकरण :

इन 7 क्षेत्रीय आधार वाली शहरी इकाइयों (या बहुउद्देशीय इकाइयां) के साथ, राज्यों ने विशेष कार्यों के नियंत्रण हेतु विशेष प्रकार के अभिकरणों (Agencies) का गठन किया है जो महानगरपालिकाओं या नगरपालिकाओं या अन्य स्थानीय शासनों के समूह से संबंधित है। कुछ इस तरह की इकाईयां इस प्रकार हैं-

- नगरीय सुधार संघ (trusts)।
- शहरी सुधार शक्ति (authorities)।
- जलापूर्ति एवं निकासी बोर्ड।
- आवासीय बोर्ड।
- पर्यावरण नियंत्रण बोर्ड।
- विद्युत आपूर्ति बोर्ड।
- शहरी यातायात बोर्ड।

यह कार्यकारी स्थानीय इकाईयां, कानूनी इकाइयों के रूप में राज्य विधानमंडल के विशेष प्रस्ताव द्वारा स्थापित की जाती हैं।

20. निर्वाचन एवं निर्वाचन आयोग

निर्वाचन

निर्वाचन व्यवस्था

निर्वाचन व्यवस्था संविधान के भाग – XV में अनुच्छेद 324 से 329 तक चुनावों या निर्वाचन से संबंधित निम्न प्रावधानों का उल्लेख है-

- संविधान के अनुसार संसद अथवा राज्य विधायिका के चुनावों पर प्रश्नचिह्न नहीं लगाया जा सकता, केवल एक चुनाव याचिका जो ऐसे प्राधिकारी के समक्ष ऐसे तरीके से प्रस्तुत की जाए जिसका प्रावधान विधायिका ने किया हो। 1966 से चुनावी याचिका पर सुनवाई अकेले उच्च न्यायालय करता है किंतु अपील का अधिकार क्षेत्र केवल उच्चतम न्यायालय में है।
- कोई व्यक्ति मतदाता सूची में नामित होने के लिए केवल ध र्म, नस्ल, लिंग अथवा इसमें से किसी एक के आधार पर अयोग्य नहीं हो सकता।
- संसद उन सभी व्यवस्थाओं का प्रावधान कर सकती है जो संसद तथा राज्य विधायिकाओं के चुनाव मतदाता सूची की तैयारियों, निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन तथा सभी मामले जो संवैधानिक व्यवस्थाओं की सुरक्षा के लिए आवश्यक हैं।
- राज्य विधायिका भी स्वयं के चुनावों से संबंधित सभी मामलों में, मतदाता सूची की तैयारियों के संबंध में तथा संबंधित संवैधानिक व्यवस्थाओं की सुरक्षा के लिए आवश्यक सभी मामलों में प्रावधान बना सकती है।
- लोकसभा तथा राज्य विधानसभा के लिए चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर होता है।
- संविधान घोषणा करता है कि निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन अथवा इन निर्वाचन क्षेत्रों के लिए आबंटित स्थानों से संबंधित कानूनों पर न्यायालय में प्रश्न नहीं उठाया जा सकता। परिणामस्वरूप परिसीमन आयोग द्वारा पारित आदेश अंतिम होते हैं तथा उन्हें किसी भी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती।
- संविधान (अनु. 324) देश में स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनावों के लिए स्वतंत्र चुनाव आयोग या निर्वाचन आयोग की व्यवस्था करता है। संसद, राज्य विधायिका, राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति के चुनावों के अधीक्षण, निर्देशन तथा प्रबंध की शक्ति चुनाव आयोग में निहित है। वर्तमान समय में चुनाव आयोग में एक मुख्य चुनाव आयुक्त तथा दो चुनाव आयुक्त होते हैं।

चुनाव सुधार

मतदान की उम्र में कमी: 1988 के 61वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा लोकसभा तथा विधानसभा चुनावों के लिए मतदान की उम्र को 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दिया गया।

प्रस्तावकों की संख्या में वृद्धि: 1988 में राज्यसभा तथा राज्य विधानपरिषद चुनाव के लिए नामांकन पत्र के प्रस्ताव के लिए आवश्यक निर्वाचकों की संख्या को बढ़ाकर निर्वाचन क्षेत्र की जनसंख्या का दस प्रतिशत अथवा 10 निर्वाचक, जो कम हो, कर दी गई।

इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन: 1989 में चुनावों में इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (ईवीएस) के इस्तेमाल का प्रावधान किया गया। ईवीएम का प्रथम बार प्रयोग प्रायोगिक तौर पर 1998 में राजस्थान, मध्यप्रदेश तथा दिल्ली विधानसभा के चुनावों में चुनिंदा निर्वाचन क्षेत्रों में किया गया था। ईवीएम का पहला प्रयोग (पूरे राज्य में) 1999 में गोवा विधानसभा के आम चुनावों में किया गया था।

मतदान केंद्रों में कब्जा: 1989 में प्रावधान किया गया कि मतदान केंद्रों में लूट के कारण मतदान को स्थागित अथवा रद्द किया जा सकता है।

उम्मीदवारों के नाम की सूची बनाना: चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों के नाम की सूची बनाने के लिए उनको तीन श्रेणियों में विभाजित किया जाता है। ये इस प्रकार हैं-

- दूसरे (निर्दलीय) उम्मीदवार।
- मान्यता प्राप्त दलों के उम्मीदवार।
- गैर मान्यता प्राप्त पंजीकृत उम्मीदवार।

राष्ट्रीय सम्मान अधिनियम के अपमान हेतु अयोग्यता: राष्ट्रीय सम्मान का अपमान करने पर अयोग्यता संबंधी कानून के तहत निम्नलिखित आरोपों में दोषी पाए जाने वाला व्यक्ति संसद तथा विधायिका के चुनाव लड़ने के लिए छह वर्षों के लिए अयोग्य होगा।

- राष्ट्रीय गान को गाने से रोकने का आरोप।
- भारतीय संविधान के अपमान का आरोप।
- राष्ट्रीय ध्वज के अपमान का आरोप।

शराब की बिक्री पर रोक: शराब या अन्य कोई मादक पदार्थ चुनाव समाप्त होने के 48 घंटे पूर्व तक चुनावी क्षेत्र में सार्वजनिक अथवा निजी किसी दुकान, खाद्य स्थल, होटल अथवा किसी अन्य स्थान पर, नहीं बेचा जा सकता।

प्रस्तावकों की संख्या: मान्यता प्राप्त दल का समर्थन प्राप्त न होने पर किसी संसदीय या विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र से चुनाव लड़ने के इच्छुक उम्मीदवार के नामांकन पत्र पर उस निर्वाचन क्षेत्र के 10 मतदाताओं के हस्ताक्षर एक प्रस्तावक की तरह होने चाहिये। किंतु किसी मान्यता प्राप्त राजनैतिक दल का समर्थन प्राप्त उम्मीदवार के लिए मात्र एक प्रस्तावक ही आवश्यक है।

उम्मीदवार की मृत्यु: चुनाव से ठीक पहले उम्मीदवार की मृत्यु होने पर चुनाव रद्द नहीं किया जाता। अपितु पीड़ित उम्मीदवार से संबंधित दल का दूसरे उम्मीदवार का प्रस्ताव करने के लिए सात दिन का समय दिया जाता है।

उप-चुनावों की सीमा: संसद अथवा राज्य विधानसभा में स्थान रिक्त होने पर उप चुनाव छह माह के भीतर करा लेना चाहिए किंतु दो मामलों में यह शर्त लागू नहीं होती–

- जब चुनाव आयोग केंद्र सरकार के परामर्श से यह प्रामाणित कर दे कि उपरोक्त समय में उपचुनाव करा पाना कठिन है।
- जहां सदस्य, जिसका स्थान भरा जाता है, का शेष कार्यकाल एक वर्ष से कम बचा हो, अथवा

मतदान के दिन कर्मचारियों को अवकाश: किसी भी व्यापार, कार्य, उद्योग अथवा किसी दूसरे संस्थान में कार्यरत पंजीकृत मतदाता को मतदान के दिन वैतनिक अवकाश दिया जाता है।

दो निर्वाचन क्षेत्रों का प्रतिबंध: कोई भी उम्मीदवार साथ-साथ हो रहे आम चुनाव अथवा उपचुनाव में 2 से ज्यादा संसदीय अथवा विधानसभा निर्वाचन क्षेत्रों से चुनाव लड़ने के लिए योग्य नहीं होगा।

प्रभावी प्रचार समय में कमी: नाम वापसी की अंतिम तिथि तथा मतदान की तिथि के मध्य न्यूनतम अंतर 20 दिन से घटाकर 14 दिन कर दिया गया है।

राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति का चुनाव: 1997 में राष्ट्रपति पद का चुनाव लड़ने के लिए प्रस्तावकों और अनुमोदक मतदाताओं की संख्या 10 से बढ़ाकर 50 तथा उपराष्ट्रपति पद का चुनाव लड़ने के लिए प्रस्तावकों तथा अनुमोदक मतदाताओं की संख्या 5 से बढ़ाकर 20 कर दी गई। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति दोनों पदों के चुनाव में निरर्थक उम्मीदवारों को हतोत्साहित करने के लिए जमानत राशि 2500 रु. से बढ़ाकर 15000 रु. कर दी गई।

डाक मतपत्र द्वारा मतदान: 1999 में कुछ निश्चित वर्ग के व्यक्तियों के मतदान के लिए डाक मतपत्र का प्रावधान किया गया।

निर्वाचन आयोग

निर्वाचन आयोग एक स्थायी व स्वतंत्र संस्था है। इसका गठन भारत के संविधान द्वारा देश में साफ-सुथरे चुनाव कराने के लिए किया गया। संविधान के अनुच्छेद 324 के अनुसार संसद, राज्य विधानमंडल, राष्ट्रपति के पदों के निर्वाचन के लिए संचालन, निर्देशन व नियंत्रण की जिम्मेदारी चुनाव आयोग की है। उल्लेखनीय है कि राज्यों में होने वाले पंचायतों व निगम चुनावों में चुनाव आयोग का कोई संबंध नहीं है। इसके लिए भारत के संविधान में अलग राज्य चुनाव आयोग की व्यवस्था की गई है।

संगठन या रचना

संविधान के अनुच्छेद-324 में चुनाव आयोग के संबंध में निम्नलिखित प्रावधान हैं:

- चुनाव आयोग का गठन मुख्य चुनाव आयुक्त, अन्य निर्वाचन आयुक्त एवं समय-समय पर राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त आयुक्तों से मिलकर होता है।
- मुख्य निर्वाचन आयुक्त और अन्य निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जानी चाहिए।
- जब कोई अन्य निर्वाचन आयुक्त इस प्रकार नियुक्त किया जाता है तब मुख्य निर्वाचन अधिकारी चुनाव आयोग के अध्यक्ष के रूप में काम करेगा।
- राष्ट्रपति, चुनाव आयोग की सलाह पर प्रादेशिक आयुक्तों की नियुक्ति कर सकता हैं, जिसे वह चुनाव आयोग की सहायता के लिए आवश्यक समझे।

मुख्य निर्वाचन आयुक्त व दो अन्य निर्वाचन आयुक्तों के पास समान शक्ति होती है और वेतन, भत्ता व अन्य दूसरे लाभ भी एकसमान होते हैं जो सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के समान होते हैं। ऐसी स्थिति में जब मुख्य निर्वाचन आयुक्त व दो अन्य निर्वाचन आयुक्तों के बीच विचार में मतभेद होता है तो आयोग बहुमत के आधार पर निर्णय करता है।

उनका कार्यकाल छह वर्ष का होता है या 65 वर्ष की आयु तक, जो पहले हो। वे किसी भी समय त्यागपत्र दे सकते हैं या उन्हें कार्यकाल समाप्त होने से पूर्व भी हटाया जा सकता है।

स्वतंत्रता

संविधान के अनुच्छेद - 324 में चुनाव आयोग के स्वतंत्र व निष्पक्ष कार्य करने के लिए निम्नलिखित प्रावधान हैं-

- मुख्य निर्वाचन आयुक्त को अपनी निर्धारित पदावधि में काम करने की सुरक्षा है। मुख्य निर्वाचन आयुक्त को उसके पद से उसी रीति से व उन्हीं आधारों पर ही हटाया जा सकता है जिस रीति व आधारों पर सर्वोच्च न्यायालय के

न्यायाधीशों को हटाया जाता है, अन्यथा नहीं। दूसरे शब्दों में, उन्हें दुर्व्यवहार, अयोग्यता के आधार पर संसद के दोनों सदनों द्वारा प्रस्ताव पारित करने के बाद राष्ट्रपति द्वारा हटाया जा सकता है।

- अन्य निर्वाचन आयुक्त या प्रादेशिक आयुक्त मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सिफारिश पर ही हटाया जा सकता है, अन्यथा नहीं।
- मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सेवा की शर्तों में उनकी नियुक्ति के पश्चात उसके लिए अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

शक्ति और कार्य

संसद, राज्य के विधानमंडल, राष्ट्रपति व उपराष्ट्रपति के पदों के निर्वाचन के संदर्भ में चुनाव आयोग की शक्ति व कार्यों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है–

- अर्द्ध-न्यायिक।
- सलाहकारी।
- प्रशासनिक

विस्तार में शक्ति व कार्य इस प्रकार हैं-

- शरारत, मतदान केंद्र लूटना, हिंसा व अन्य अनियमितताओं के आधार पर चुनाव रद्द करना।
- चुनाव के मद्देनजर राजनीतिक पार्टियों को पंजीकृत करना तथा चुनाव में प्रदर्शनों के आधार पर उसे राष्ट्रीय या राज्य पार्टी का दर्जा देना।
- समय-समय पर निर्वाचन-नामावली तैयार करना और सभी योग्य मतदाताओं को पंजीकृत करना।
- चुनाव की तारीख और सारणी निर्धारित करना एवं नामांकन पत्रों का परीक्षण करना।
- निर्वाचन व्यवस्था से संबंधित विवाद की जांच-परख के लिए अधिकारी नियुक्त करना।
- चुनाव के वक्त दलों व उम्मीदवारों के लिए आचार संहिता निर्मित करना।
- संसद सदस्य की अयोग्यता से संबंधित मामलों पर राष्ट्रपति को सलाह देना।
- राजनीतिक दलों को मान्यता देना और उन्हें चुनाव चिह्न देना।
- विधानपरिषद के सदस्यों की अयोग्यता से संबंधित मसलों पर राज्यपाल को परामर्श देना।
- संसद के परिसीमन आयोग अधिनियम के आधार पर समस्त भारत के निर्वाचन क्षेत्रों का भू-भाग निर्धारित करना।

21. संघ लोक सेवा आयोग एवं राज्य लोक सेवा आयोग

संघ लोक सेवा आयोग भारत का केंद्रीय भर्ती अभिकरण (संस्था) है। यह स्वतंत्र संवैधानिक निकाय या संस्था है क्योकि इसका गठन संविधानिक प्रावधानों के माध्यम से किया गया है। संविधान के 14वें भाग में अनुच्छेद 315 से 323 में संघ लोक सेवा आयोग (यूपीएससी) की स्वतंत्रता व शक्तियां व कार्य के अलावा इसके संयोजन तथा सदस्यों की नियुक्तियां व बर्खास्तगी का विस्तार से वर्णन किया गया है।

गठन

संघ लोक सेवा आयोग में एक अध्यक्ष व कई सदस्य होते हैं, जो भारत के राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। संविधान में आयोग की सदस्य संख्या का उल्लेख नहीं है। यह राष्ट्रपति के ऊपर छोड़ दिया गया है जो आयोग का संयोजन निर्धारित करता है। साधारणतया आयोग में अध्यक्ष समेत नौ से ग्यारह सदस्य होते हैं। संविधान ने राष्ट्रपति को अध्यक्ष तथा सदस्यों की सेवा की शर्तें निर्धारित करने का अधिकार दिया है।

आयोग के अध्यक्ष पद ग्रहण करने की तारीख से छह वर्ष की अवधि तक या 65 वर्ष की आयु तक, इनमें से जो भी पहले हो, अपना पद धारण करता है। वे कभी भी राष्ट्रपति को संबोधित कर त्यागपत्र दे सकते हैं। राष्ट्रपति दो परिस्थितियों में संघ लोक सेवा आयोग के एक सदस्य को कार्यवाहक अध्यक्ष नियुक्त कर सकता है–

- जब अध्यक्ष अपना काम अनुपस्थिति या अन्य दूसरे कारणों से नहीं कर पा रहा हो।
- जब अध्यक्ष का पद रिक्त हो।

पद से हटाना

राष्ट्रपति संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या दूसरे सदस्यों को निम्नलिखित परिस्थितियों में हटा सकता है-

- अगर राष्ट्रपति ऐसा समझता है कि वह मानसिक या शारीरिक अक्षमता के कारण पद पर बने रहने योग्य नहीं है।
- अगर उसे दिवालिया घोषित कर दिया जाता है।
- अपनी पदावधि के दौरान अपने पद के कर्त्तव्यों के बाहर किसी से वेतन नियोजन में लगा हो।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति आयोग के अध्यक्ष या दूसरे सदस्यों को उनके कदाचार के कारण भी हटा सकता है। किंतु ऐसे मामलों में राष्ट्रपति को जांच के लिए सर्वोच्च न्यायालय में भेजना होता है। अगर सर्वोच्च न्यायालय जांच के बाद बर्खास्त करने का परामर्श का समर्थन करता है तो राष्ट्रपति, अध्यक्ष या दूसरे सदस्यों को हटा सकते हैं। संविधान के इस प्रावधान के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस मामले में दी गई सलाह राष्ट्रपति के लिए बाध्य है। संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या अन्य सदस्य को कदाचार का दोषी माना जाएगा, अगर वह (क) भारत सरकार या राज्य सरकार की किसी संविदा या करार में संबंधित है। (ख) निगमित कंपनी के सदस्य और कंपनी के अन्य सदस्यों के साथ सम्मिलित रूप से संविदा या करार में लाभ के लिए भाग लेता है।

स्वतंत्रता

संविधान में संघ लोक सेवा आयोग को निष्पक्ष व स्वतंत्र कार्य करने के लिए निम्नलिखित प्रावधान हैं–

- संघ लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष या सदस्य कार्यकाल के बाद के पुनः नहीं नियुक्त किया जा सकता (दूसरे कार्यकाल के लिए योग्य नहीं)।
- संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या सदस्यों को राष्ट्रपति संविधान में वर्णित आधारों पर ही हटा सकते हैं।
- संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या सदस्य को वेतन, भत्ता व पेंशन सहित सभी खर्चे भारत की संचित निधि से मिलते हैं।
- संघ लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष (कार्यकाल के बाद) भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार के अधीन किसी और नियोजन (नौकरी) का पात्र नहीं हो सकता।
- हालांकि अध्यक्ष या सदस्य की सेवा की शर्तें राष्ट्रपति तय करते हैं लेकिन नियुक्ति के बाद अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

कार्य

संघ लोक सेवा आयोग के कार्यों का वर्णन निम्नानुसार है-

- अल्पकालीन नियुक्ति एक वर्ष से अधिक तक व नियुक्तियों की नियमितकरण से संबंधित विषय।
- सेवा के विस्तार व कुछ सेवानिवृत नौकरशाहों की पुनर्नियुक्ति से संबंधित मसला।
- संघ लोक सेवा आयोग हर वर्ष अपने कामों की रिपोर्ट राष्ट्रपति को देता है।
- संघ लोक सेवा आयोग राज्य (दो या अधिक राज्य द्वारा अनुरोध करने) को किसी ऐसी सेवाओं के लिए जिसके लिए विशेष अर्हता वाले अभ्यर्थी अपेक्षित है, उनके लिए संयुक्त भर्ती की योजना व प्रवर्तन में सहायता करता है।

- राज्यपाल की अनुमति व राष्ट्रपति की स्वीकृति के बाद राज्य की जरूरतों को पूरा करना।
- निम्नलिखित विषयों में परामर्श देता है-
- सिविल सेवाओं और सिवलि पदों के लिए भर्ती की पद्धतियों से संबंधित सभी विषयों पर।
- सिविल सेवाओं और पदों पर नियुक्ति करने में, प्रोन्नति तथा एक सेवा से दूसरी सेवा में तबादला या प्रतिनियुक्ति के लिए अभ्यर्थियों की उपयुक्तता पर संबंधित विभाग प्रोन्नति की सिफारिश करता है और संघ लोक सेवा आयोग से अनुमोदित करने का आग्रह करता है।
- यह अखिल भारतीय सेवाओं, केंद्रीय सेवाओं व केंद्र प्रशासित क्षेत्रों की लोक सेवाओं में नियुक्ति के लिए परीक्षाओं का संचालन करता है।

सीमाएं

निम्नलिखित विषय यूपीएसी के कार्यों के अधिकार क्षेत्र के बाहर हैं।

- राष्ट्रपति संघ लोक सेवा आयोग के दायरे से किसी पद, सेवा व विषय को हटा सकता है।
- सेवाओं व पदों पर नियुक्ति के लिए अनसूचित जाति व अनुसूचित जनजातियों के दावों को ध्यान में रखने हेतु।
- आयोग या प्राधिकरण की अध्यक्षता या सदस्यता, राजनयिक की उच्च पद, ग्रुप सी व डी सेवाओं के अधिकतर पदों के चयन से संबंधित मामले।
- पिछड़ी जाति की नियुक्तियों पर आरक्षण देने के मसले पर।

कर्मचारी चयन आयोग

कर्मचारी चयन आयोग एक केंद्रीकृत संस्था है जिस पर केंद्र सरकार के अंतर्गत मध्यम व निम्न सेवाओं के लिए लोगों की नियुक्ति करने की जिम्मेदारी है। एसएससी का गठन 1975 में केंद्र सरकार द्वारा एक कार्यकारी प्रस्ताव के आधार पर किया गया। इसे कार्मिक मंत्रालय से जुड़े कार्यालय की हैसियत प्राप्त है और यह परामर्शदात्री संस्था के तौर पर काम करती है। इसमें अध्यक्ष, दो सदस्य, सचिव सह परीक्षा नियंत्रक होते हैं। अध्यक्ष या सदस्य का कार्यकाल पांच वर्ष का या 62 वर्ष की आयु तक जो पहले हो, का होता है। उनकी नियुक्ति केंद्र सरकार करती है।

राज्य लोक सेवा आयोग

केंद्र के संघ लोक सेवा आयोग के समानांतर राज्यों में राज्य लोक सेवा आयोग (एसपीएससी) है। संविधान के 14वें भाग में अनुच्छेद 315 से 323 में राज्य लोक सेवा आयोग की स्वतंत्रता व शक्तियों के अलावा इसके गठन तथा सदस्यों की नियुक्तियों व बर्खास्तगी इत्यादि का उल्लेख किया गया है।

गठन

राज्य लोक सेवा आयोग में एक अध्यक्ष व अन्य सदस्य होते हैं। जिन्हें राज्य का राज्यापाल नियुक्त करता है। संविधान में आयोग की सदस्य संख्या का उल्लेख नहीं किया गया है। यह राज्यपाल के ऊपर छोड़ दिया गया है। इसके अतिरिक्त, आयोग के सदस्यों की वांछित योग्यता का भी जिक्र नहीं किया गया है परंतु यह आवश्यक है कि आयोग के आधे सदस्यों को भारत सरकार या राज्य सरकार के अधीन कम से कम 10 वर्ष काम करने का अनुभव हो।

आयोग के अध्यक्ष व सदस्य पद ग्रहण करने की तारीख से छह वर्ष की अवधि तक या 62 वर्ष की आयु तक, इनमें जो भी पहले हो, अपना पद धारण कर सकते हैं राज्यपाल दो परिस्थितियों में राज्य लोक सेवा आयोग के किसी एक सदस्य को कार्यवाहक अध्यक्ष नियुक्त कर सकते हैं-

- जब अध्यक्ष अपना कार्य अनुपस्थिति या अन्य दूसरे कारणों की वजह से नहीं कर पा रहा हो।
- जब अध्यक्ष का पद रिक्त हो।

पद से हटाया जाना

भले ही राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष व सदस्य की नियुक्ति राज्यपाल करते हैं लेकिन इन्हें केवल राष्ट्रपति ही हटा सकता हैं (राज्यपाल नहीं)। राष्ट्रपति उन्हें उसी आधार पर हटा सकते हैं जिन आधारों पर यूपीएससी के अध्यक्ष व सदस्यों को हटाया जाता है। अत: उन्हें निम्नलिखित आधारों पर हटाया जा सकता है-

- अगर राष्ट्रपति यह समझता है कि वह मानसिक या शारीरिक शैथिल्य के कारण पद पर बने रहने के योग्य नहीं है।
- अगर उसे दिवालिया घोषित कर दिया जाता है।
- अपनी पदावधि के दौरान अपने पद के कर्त्तव्यों के बाहर किसी सवेतन नियोजन में लगा हो।

इसके अलावा राष्ट्रपति राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या दूसरे सदस्यों को उनके कदाचार के कारण भी हटा सकता है परंतु ऐसे मामलों को जांच के लिए सर्वोच्च न्यायालय के पास भेजना होता है। संविधान के अनुसार, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस मामले में दी गई सलाह राष्ट्रपति के लिए बाध्य है।

स्वतंत्रता

संघ लोक सेवा आयोग की तरह ही संविधान में राज्य लोक सेवा आयोग के निष्पक्ष व स्वतंत्र कार्य करने के लिए निम्नलिखित प्रावधान हैं-

- राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या सदस्य (कार्यकाल के बाद) को पुन: नियुक्त नहीं किया जा सकता (यानी दूसरे कार्यकाल के योग्य नहीं)।
- अध्यक्ष या सदस्य की सेवा की शर्तें राज्यपाल तय करता है। अत: नियुक्ति के बाद अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।
- राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या सदस्य को वेतन, भत्ता व पेंशन सहित सभी खर्चे राज्य की संचित निधि से मिलते हैं।
- राज्य लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष (कार्यकाल के बाद) संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या सदस्य तथा दूसरे राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या सदस्य तथा दूसरे राज्य लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष बनने का पात्र होगा।
- राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या सदस्यों को राष्ट्रपति संविधान में वर्णित आधारों पर ही हटा सकता है।

कार्य

राज्य लोक सेवा आयोग राज्य सेवओं के लिए वही काम करता है जो संघ लोक सेवा आयोग केंद्रीय सेवाओं के लिए करता है-

- सिविल सेवाओं और पदों पर स्थानांतरण करने में, प्रोन्नति, या एक सेवा से दूसरी सेवा में तबादला या प्रतिनियुक्ति के लिए अभ्यर्थियों की उपयुक्ता पर ।
- राज्य सरकार के अधीन काम करने के दौरान किसी व्यक्ति को हुई हानि को लेकर पेंशन का दावा करना। राज्य लोक सेवा आयोग हर वर्ष अपने कार्यों की रिपोर्ट राज्यपाल को देता है। राज्यपाल इस रिपोर्ट के साथ-साथ ऐसे ज्ञापन विधान मंडल के समक्ष रखता है जिसमें आयोग द्वारा अस्वीकृत मामले और उनके कारणों का वर्णन किया जाता है।
- यह राज्य की सेवाओं में नियुक्ति के लिए परीक्षाओं का संचालन करता है।
- निम्नलिखित विषयों पर परामर्श देता है-
- सिविल सेवाओं और सिविल पदों के लिए भर्ती की पद्धतियों से संबंधित सभी विषयों पर।
- सिवलि सेवाओं और पदों पर नियुक्ति करने में तथा सेवा प्रोन्नति व एक सेवा से दूसरे सेवा में तबादले के लिए अनुसरण किए जाने वाले सिद्धांत के संबंध में।

सीमाएं

निम्नलिखित विषयों को राज्य लोक सेवा आयोग के अधिकार क्षेत्र के बाहर रखा गया है। दूसरे शब्दों में, निम्नलिखित विषयों पर राज्य लोक सेवा आयोग से संपर्क नहीं किया जा सकता–

- सेवाओं में नियुक्ति पर अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों के दावों को ध्यान में रखने के मसले पर।
- पिछड़ी जातियों की नियुक्तियों या आरक्षण के मसले पर।

राज्यपाल राज्य लोक सेवा आयोग के दायरे से किसी पद, सेवा या विषय को हटा सकता है।

संयुक्त राज्य लोक सेवा आयोग

दो या इससे अधिक राज्यों के लिए संविधान में संयुक्त राज्य लोक सेवा आयोग की व्यवस्था की गई है। संघ लोक सेवा आयोग और राज्य लोक सेवा आयोग का गठन जहां सीधे संविधान द्वारा किया गया है। वहीं संयुक्त राज्य लोक सेवा आयोग का गठन राज्य विधानमंडल की आग्रह से संसद द्वारा किया गया है। इस तरह संयुक्त राज्य लोक सेवा आयोग एक वैधानिक संस्था है न कि संवैधानिक। संयुक्त राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष व सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। उनका कार्यकाल छह वर्ष अथवा 62 वर्ष की आयु, जो पहले हो, तक होता है। उन्हें राष्ट्रपति द्वारा बर्खास्त किया या हटाया जा सकता है। वे किसी भी समय राष्ट्रपति को त्यागपत्र देकर पदमुक्त हो सकते हैं। संयुक्त राज्य लोक सेवा आयोग वार्षिक प्रगति रिपोर्ट संबंधित राज्यपालों को सौंपता है। प्रत्येक राज्यपाल इसे राज्य विधानमंडल के समक्ष प्रस्तुत करता है।

22. वित्त आयोग

भारत के संविधान में अनुच्छे 280 के तहत वित्त आयोग की व्यवस्था की गई है। इसका गठन राष्ट्रपति द्वारा हर पांचवें वर्ष या आवश्यकतानुसार उससे पहले किया जाता है।

वित्त आयोग में एक अध्यक्ष और चार अन्य सदस्य होते हैं, जिनकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। उनका कार्यकाल राष्ट्रपति के आदेश के तहत तय होता है। उनकी पुर्ननियुक्ति भी हो सकती है।

संविधान ने संसद को इन सदस्यों की योग्यता का निर्धारण करने का अधिकार दिया है। इसी के तहत संसद ने आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों की विशेष योग्यताओं का निर्धारण किया है। अध्यक्ष सार्वजनिक मामलों का अनुभवी होना चाहिए और अन्य चार सदस्यों को निम्नलिखित में से चुना जाना चाहिए-

- किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश या इस पद के लिए योग्य व्यक्ति।
- ऐसा व्यक्ति जिसे भारत के लेखा एवं वित्त मामलों का विशेष ज्ञान हो।
- एक ऐसा व्यक्ति जिसे प्रशासन या वित्तीय मामलों का व्यापक अनुभव हो।
- ऐसा व्यक्ति जो अर्थशास्त्र का विशेष ज्ञाता हो।

कार्य

निम्नलिखित मामलों में भारत के राष्ट्रपति द्वारा कुछ संस्तुतियों के लिए वित्त आयोग की आवश्यकता महसूस की जाती है-

- करों के सही बंटवारे और राज्यों एवं केंद्र के बीच करों के सही निर्धारण के लिए।
- केंद्र द्वारा राज्यों को प्रदान की जाने वाली सहायता राशि के सही निर्धारण (निश्चित कोष से अलग) के लिए।
- राज्य वित्त आयोग की संस्तुतियों के आधार पर नगर पालिकाओं, पंचायत आदि के लिए नियमित राशि व आवश्यकता के अनुरूप उसका आकलन और संसाधनों का निर्धारण।
- राष्ट्रपति द्वारा भेजे गए तर्कसम्मत वित्तीय-मामले या अन्य कार्यों के लिये।

आयोग अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को सौंपता है, जो इसे संसद के दोनों सदनों में रखता है।

यह स्पष्ट करना जरूरी होगा कि वित्त आयोग की सिफारिशों की प्रकृति सलाह की तरह होती है और इनको मानने के लिए सरकार बाध्य नहीं होती। यह केंद्र सरकार पर निर्भर करता है कि वह राज्य सरकारों को दी जाने वाली सहायता के संबंध में आयोग की सिफारिशों को लागू करे।

वित्त आयोग के अध्यक्ष

क्र.सं	आयोग	वर्ष	अध्यक्ष
1.	प्रथम वित्त आयोग	1951-1953	के.सी. नियोगी
2.	द्वितीय वित्त आयोग	1956-1957	के. संथानाम
3.	तीसरा वित्त आयोग	1960-1962	ए.के. चन्दा
4.	चौथा वित्त आयोग	1964-1965	डॉ. पी.वी. राजमन्नार
5.	पांचवा वित्त आयोग	1968-1969	महावीर त्यागी
6.	छठा वित्त आयोग	1972-1973	पी. ब्रह्मानंद रेड्डी
7.	सातवां वित्त आयोग	1977-1978	जे.पी. सेलट
8.	आठवां वित्त आयोग	1982-1984	वाई.वी. चव्हाण
9.	नौवां वित्त आयोग	1987-1989	एन.के.पी. साल्वे
10.	दसवां वित्त आयोग	1998-1994	के.सी. पंत
11.	ग्यारहवां वित्त आयोग	1998-2000	ए.एम. खुसरो
12.	बारहवां वित्त आयोग	2002	डॉ. सी. रंगराजन
13.	तेरहवाँ	2007	विजय एल. केलकर

भारत का नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक

भारत के संविधान (अनुच्छेद 148) में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के स्वतंत्र पद की व्यवस्था की गई है जिसे संक्षेप में 'महालेखा परीक्षक' कहा गया है। यह भारतीय लेखापरीक्षण और लेखाविभाग का मुखिया होता है। यह लोगों की जेब का संरक्षक होने के साथ-साथ देश की संपूर्ण वित्तीय व्यवस्था का नियंत्रक होता है।

नियुक्ति एवं कार्यकाल

नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। कार्यभार संभालने से पहले यह राष्ट्रपति के सम्मुख निम्नलिखित वचन/शपथ लेता है–

- भारत के संविधान के प्रति सत्यनिष्ठा के साथ वफादार रहेगा।
- भारत की एकता एवं अखंडता को अक्षुण्ण रखेगा।
- बिना किसी भेदभाव, डर आदि के अपने कर्त्तव्यों का संपूर्ण योग्यता, ज्ञान एवं न्याय के साथ निर्वहन करेगा।
- संविधान एवं कानून का पालन करेगा।

इसका कार्यकाल 6 वर्ष या 65 वर्ष की आयु तक होता है। इससे पहले वह राष्ट्रपति के नाम किसी भी समय अपना त्यागपत्र भेज सकता है।

स्वतंत्रता

- इसे कार्यकाल की सुरक्षा मुहैया कराई गई है। इसे केवल राष्ट्रपति द्वारा संविधान में उल्लिखित कार्यवाही के जरिए हटाया जा सकता है।
- इसका वेतन एवं अन्य सेवा शर्तें संसद द्वारा निर्धारित होती हैं। वेतन उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के बराबर होता है।
- नियुक्ति के बाद इसके वेतन, अधिकार, छुट्टियां, पेंशन, सेवानिवृत्ति की आयु में परिवर्तन नहीं किया जा सकता।
- महालेखा परीक्षक कार्यालय के वेतन, भत्ते, पेंशन आदि प्रशासनिक खर्चे भारत की संचित निधि पर भारित है।

कर्त्तव्य और शक्तियां

संसद एवं संविधान द्वारा स्थापित नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कार्य एवं कर्त्तव्य निम्नलिखित हैं-

- केंद्र एवं राज्य सरकार द्वारा किए गए खर्चों का लेखा परीक्षण करता है।
- वह अन्य इकाइयों जैसे-निगम, कंपनियों आदि को केंद्र एवं राज्य राजस्व से मिलने वाली वित्तीय मदद का लेखा परीक्षण करता है।
- वह अन्य प्राधिकरणों जैसे स्थानीय इकाइयों के लेखा परीक्षण भी राष्ट्रपति या राज्यपाल के आग्रह पर करता है।
- केंद्र एवं राज्य के लेखा प्रपत्र विवरण को लेकर राष्ट्रपति को सलाह देता है।
- वह कर आदि को प्रमाणित एवं कार्यान्वित करता है।
- संसदीय समिति के सार्वजनिक लेखा मामलों के संबंध में वह दिशा निर्देशक, मित्र एवं दार्शनिक की तरह कार्य करता है।

वह राष्ट्रपति के सम्मुख तीन लेखा परीक्षण रिपोर्टों को रखता है :–

- आनुमानिक लेखा परीक्षण रिपोर्ट।
- वित्तीय खातों पर लेखा परीक्षण रिपोर्ट।
- सार्वजनिक उपक्रमों पर लेखा परीक्षण रिपोर्ट।

23. योजना आयोग व राष्ट्रीय विकस परिषद

1950 में भारत सरकार के कार्यकारी प्रस्ताव (केंद्रीय मंत्रिमंडल के तहत) के बाद योजना आयोग का गठन किया गया। इसका गठन 1946 में के.सी. नियोगी की अध्यक्षता में स्थापित सलाहकार योजना बोर्ड की संस्तुति के बाद किया गया। यह गैर-संवैधानिक एवं अतिरिक्त संवैधानिक इकाई है।

कार्य

योजना आयोग के कार्य निम्नलिखित हैं-

- प्रत्येक स्तर पर योजना के सफल अमल के लिए चीजों का निर्धारण।
- देश के संसाधनों का संतुलित उपयोग करते हुए सर्वोच्च प्रभावी योजना को बनाना।
- प्रमुखताओं का निर्धारण एवं उन संसाधनों को परिभाषित करना जिनमें इन योजनाओं को लागू किया जा सकता है।
- उन तथ्यों को चिह्नित करना जिससे आर्थिक विकास अवरूद्ध हो रहा हो।
- देश के पदार्थ, पूंजी और मानव संसाधनों का जायजा लेना और उनके संवर्धन की संभावना को तलाशना।

यह उल्लेखनीय है कि योजना आयोग केवल एक स्टाफ एजेंसी, एक सलाहकार निकाय है। इसकी कोई कार्यकारी जिम्मेदारी नहीं है। यह किसी निर्णय के अमल के लिए उत्तरदायी नहीं है।

गठन

योजना आयोग के गठन के संबंध में निम्न बिंदु उल्लेखनीय हैं-

- आयोग के पास चार से सात पूर्णकालिक निपुण सदस्य होते हैं। उन्हें राज्य मंत्री के समान दर्जा प्राप्त होता है।
- आयोग का एक सदस्य सचिव होता है।
- कुछ केंद्रीय मंत्रियों को आयोग के अंशकालिक सदस्यों के रूप में नियुक्त किया जाता है।
- आयोग का अध्यक्ष भारत का प्रधानमंत्री होता है। वह आयोग की बैठकों की अध्यक्षता करता है।
- आयोग का एक उपाध्यक्ष भी होता हैं। वह इसका कार्यकारी प्रमुख होता।

आंतरिक संगठन

योजना आयोग के निम्नलिखित तीन अंग होते हैं।

- कार्यक्रम सलाहकार।
- देख-रेख विभाग।
- तकनीकी विभाग।

तकनीकी विभाग

तकनीकी खंड, योजना आयोग की एक बड़ी क्रियात्मक निकाय है। यह मुख्यत: योजना निर्माण, योजना देख-रेख एवं योजना मूल्यांकन में शामिल रहती है।

देख-रेख विभाग

योजना आयोग की निम्नलिखित देख-रेख शाखाएं होती हैं-

- वैयक्तिक प्रशिक्षण शाखा।
- सांगठनिक शाखा।
- लेखा शाखा।
- सामान्य प्रशासन शाखा।
- सतर्कता शाखा।

कार्यक्रम सलाहकार

योजना आयोग में कार्यक्रम सलाहकार के पद का सृजन 1952 में किया गया। इसका सृजन इस उद्देश्य से किया गया कि योजना के क्षेत्र में भारत के राज्यों एवं योजना आयोग के बीच संपर्क बना रहे। इनका पद अतिरिक्त सचिव के समान होता है और यह कई राज्यों का प्रभारी होता है।

योजना आयोग के आंतरिक संगठन में दोहरा पदानुक्रम होता है- प्रशासनिक एवं तकनीकी। प्रशासनिक श्रेणियों का प्रमुख योजना आयोग का का सचिव होता है, तकनकी खंड का मुखिया सलाहकार होता है। जिसका रैंक अतिरिक्त सचिव या संयुक्त सचिव के बराबर होता है।

राष्ट्रीय विकास परिषद

राष्ट्रीय विकास परिषद (एनडीसी) का गठन अगस्त 1952 में किया गया। इसका गठन प्रथम पंचवर्षीय योजना (ड्राफ्ट निर्माण) में भारत सरकार की कार्यकारिणी की संतुति के बाद किया गया।

संगठन

राष्ट्रीय विकास परिषद में निम्नलिखित सदस्य होते हैं-

- भारत का प्रधानमंत्री (इसके अध्यक्ष या प्रमुख के रूप में)
- सभी केंद्रीय कैबिनेट मंत्री (1967 से)

- योजना आयोग के सदस्य।
- सभी केंद्रीशासित राज्यों के मुख्यमंत्री/प्रशासक।
- सभी राज्यों के मुख्यमंत्री।

योजना आयोग का सचिव राष्ट्रीय विकास परिषद के सचिव के रूप में कार्य करता है।

उद्देश्य

राष्ट्रीय विकास परिषद की स्थापना निम्नलिखित उद्देश्यों के तहत की गई-

- देश के सभी हिस्सों में संतुलित एवं तीव्र विकास को सुनिश्चित करने के लिए।
- योजना के सहयोग के लिए राष्ट्र के संसाधनों एवं प्रयासों को बढ़ाने एवं विस्तारित करने के लिए।
- विस्तृत संदर्भ में सामूहिक आर्थिक नीतियों को प्रोन्नत करने के लिए।
- योजना के कार्यान्वयन में राज्यों के सहयोग को सुरक्षित करने के लिए।

कार्य

उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एनडीसी को निम्नलिखित कार्य दिए गए हैं-

- राष्ट्रीय योजना आयोग के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए पैमानों का निर्धारण करना।
- योजना के क्रियान्वयन में संसाधनों का अनुमान लगाना और सुझाव देना।
- योजना आयोग द्वारा बनाए गए राष्ट्रीय योजना की संस्तुति देना।
- राष्ट्रीय विकास को प्रभावित करने में महत्पूर्ण सामाजिक एवं आर्थिक नीतियों की संस्तुति करना।
- समय-समय पर राष्ट्रीय योजना के कार्यों की समीक्षा करना।
- राष्ट्रीय योजना को बनाने के लिए दिग्दर्शिता का सुझाव देना।

यद्यपि इसे योजना आयोग के सलाहकार निकाय के रूप में सूचीबद्ध किया गया है। यह अपनी संस्तुतियों को केंद्र एवं राज्य सरकारों को भेजती है। साल में दो बार इसकी बैठक होनी आवश्यक है।

राष्ट्रीय विकास परिषद का पहला एवं प्रमुख कार्य है- केंद्र, राज्य सरकार और योजना आयोग के बीच सेतु की तरह कार्य करना। खासतौर पर योजना के क्षेत्र में योजना कार्यक्रमों की नीतियों में समन्वय स्थापित करना।

24. प्रमुख संविधान संशोधन अधिनियम

- **प्रथम संविधान संशोधन अधिनियम, 1951 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा अनुच्छेद-19(2) मतें वर्णित स्वतंत्रता के अधिकारों पर **सार्वजनिक व्यवस्था, विदेशी राज्यों से मैत्रीपूर्ण संबंध** तथा **अपराध् उद्दीपन** के आधार पर प्रतिबंध लगाने का प्रावधान किया गया। इस अधिनियम द्वारा अनुच्छेद : 15, 31, 85, 87, 174, 176, 341, 372 और 376 को संशोधित किया गया। दो नये अनुच्छेद-31 (क) और 31 (ख) तथा एक नई अनुसूची (नवीं अनूसची) को संविधान में शामिल किया गया। अनुच्छेद-31 (क) के अन्तर्गत भूमि सुधार कानूनों को संवैधानिक सुरक्षा प्रदान किया गया। जबकि अनुच्छेद -31 (ख) के माध्यम से यह प्रावधान किया गया कि अनूसूची-9 में सम्मिलित अधिनियमों को न्यायालय में इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि वे मूलाधिकारों का अतिक्रमण करते हैं। अनुच्छेद-15 में खण्ड (2) जोड़ा गया जिसमें यह प्रावधान किया गया कि सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के हित में राज्य विशेष उपबंध कर सकता है।
- **सातवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1956 :** यह संशोधन राज्यों के पुनर्गठन के लिए किया गया। इस संशोधन द्वारा भारत को 14 राज्यों और 6 केन्द्र शासित प्रदेशों में बांटा गया।
- **आठवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1690 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा अनुच्छेद -334 में संशोधन करके अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा आंग्ल-भारतीय समुदाय के सदस्यों के लिए संसद और राज्य विधानमंडलों में आरक्षण की अवधि को 10 वर्षों के लिए बढ़ा दिया गया।
- **दसवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1961 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा दादर और नागरहवेली संघ शासित प्रदेश के रूप में भारत में सम्मिलित कर लिया गया।
- **बारहवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1962 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा गोवा, दमन और दीव को केन्द्र शासित प्रदेश के रूप में भारत में सम्मिलित कर लिया गया।
- **तेरहवां संविधान अधिनियम, 1962 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा नागालैण्ड को भारत के 16वें राज्य के रूप में सम्मिलित किया गया तथा संविधान में एक नया अनुच्छेद : 371 (क) जोड़कर नागालैण्ड के प्रशासन के सम्बन्ध में कुछ विशेष प्रावधान किया गया।
- **चौदहवां संविधान अधिनियम 1962 :** चौदहवां संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा पांडिचेरी को सेवानिवृत्ति की आयु सीमा को 60 वर्ष से बढ़ाकर 62 वर्ष कर दिया गया। पन्द्रहवें संशोधन द्वारा उच्च न्यायालयों के रिट सम्बन्धी अधिकारिता को भी बढ़ा दिया गया।
- **इक्कीसवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1966:** इस संशोधन अधिनियम द्वारा 'सिंधी' भाषा को आठवीं अनुसूची की भाषाओं में स्थान दिया गया।
- **बाइसवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1969 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा 'मेघालय' के रूप में एक नये राज्य का सृजन किया गया।
- **तेईसवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1969 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों एवं आंग्ल-भारतीय समुदाय के लिए संसद और राज्य विधायिकाओं में आरक्षण की अवधि को दस वर्षों के लिए और बढ़ा दिया गया।
- **चौबीसवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1971 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा संविधान के अनुच्छेद-13 और 368 में संशोधन करके यह स्पष्ट किया गया **कि संसद को मौलिक** अधिकारों सहित संविधान के किसी भी भाषा में संशोधन करने की असीमित शक्ति प्राप्त है।
- **पचीसवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1971 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा अनुच्छेद-31 (2) का संशोधन किया गया तथा एक नया अनुच्छेद -31 (ग) जोड़कर यह प्रावधान किया गया कि अनुच्छेद-39 (ख) और (ग) जोड़कर यह प्रावधान किया गया कि अनुच्छेद-39 (ख) और (ग) के नीति-निदेशक तत्वों को प्रभावी करने लिए कोई कानून बनाया जाता है तो उसे इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि उससे मूलाधिकारों का हनन होता है।
- **छब्बीसवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1971 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा संविधान के दो अनुच्छेदों-291 और 362 को संविधान से निकाल कर तथा एक नया अनुच्छेद-363 (ग) जोड़ कर भूतपूर्व राजाओं के प्रिवीपर्स

तथा विशेषाधिकारों को समाप्त कर दिया गया।

- **सत्ताईसवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1971 :** इसके द्वारा संविधान में दो नये अनुच्छेद, अनुच्छेद-239 (ख) और 371 (ग) जोड़े गये जबकि दो अनुच्छेदों, अनुच्छेद-239 (क) और 240 का संशोधन किया गया। दो नये केन्द्र शासित प्रदेश मिजोरम और अरूणाचल प्रदेश का सृजन किया गया।
- **इकतीसवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1974 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा अनुच्छेद-81 में संशोधन करके लोकसभा में निर्वाचित सदस्यों की अधिकतम संख्या 525 से बढ़ाकर 545 कर दी गयी, जिसमें केन्द्र शासित प्रदेशों के 20 प्रतिनिधि होंगे।
- **छतीसवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1975 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा सिक्किम को सह-राज्य के स्थान पर पूर्ण राज्य का दर्जा दिया गया। पैंतिसवें संविधान संशोधन द्वारा अंत: स्थापित अनुच्छेद-2 (क) और अनुसूचि-10 को संविधान से निकाल दिया गया।
- **सैंतीसवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1975:** इस संशोधन अधिनियम द्वारा केन्द्र शासित प्रदेश अरुणाचल प्रदेश के लिए विधानसभा और मंत्रिपरिषद् का प्रावधान किया गया।
- **बयालिसवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 :** बयालिसवां संविधान संशोधन को आपातकाल के दौरान पारित किया गया। यह अब तक का सबसे व्यापक और सर्वाधिक विवादास्पद संविधान संशोधन है। इस संशोधन द्वारा संविधान के अनेक उपबंधों में व्यापक परिवर्तन किये गये।
- इस संशोधन द्वारा संविधान की प्रस्तावना में तीन नये शब्द- **'धर्म'निरपेक्ष'**, **'समाजवाद'** तथा **'अखण्डता'** जोड़े गये।
- संविधान के भाग-4 में तीन नये नीति-निदेशक तत्व जोड़े गये-(i) सामान्य न्याय और नि: शुल्क विधिक सहायता (ii) उद्योगों के प्रबंध में श्रमिकों की भागीदारी, और (iii) पर्यावरण की रक्षा तथा सुधार और वन तथा वन्य जीवों को सुधार।
- अनुच्छेद -31 (ग) में संशोधन करके मूल अधिकारों पर सभी नीति-निदेशक तत्वों को प्राथमिकता प्रदान की गई।
- एक नया भाग, **भाग-4 (क)** जोड़ा गया, जिसमें नागरिकों के **10 मूल कर्त्तव्यों** का उल्लेख है।
- अनुच्छेद-74 में संशोधन करके राष्ट्रपति के लिए मंत्रिपरिषद के सलाह को बाध्यकारी बना दिया गया।
- लोकसभा तथा राज्य विधानसभाओं के कार्यकाल को एक वर्ष के लिए बढ़ाकर 6 वर्ष कर दिया गया।
- यह प्रावधान किया गया कि संसद द्वारा संविधान के किसी भी भाग में किये गये संशोधन को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती।
- संविधान में एक नया अनुच्छेद-139 (क) जोड़ा गया, जिसके अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय को यह शक्ति प्रदान की गयी कि वह सार्वजनिक महत्व के महत्वपूर्ण मामले को उच्च न्यायालयों से अपने पास मंगवा सकता है।
- केन्द्र को यह शक्ति प्रदान की गयी कि वह राज्यों में विधि और व्यवस्था की गंभीर परिस्थिति का सामना करने के लिए केन्द्रीय सुरक्षा बल को भेज सकता है।
- सातवीं अनुसूचि के राज्य सूची के कुछ विषयों को समवर्ती सूची में डाल दिया गया।
- संविधान में दो नया अनुच्छेद - 323 (क) और 323 (ख) जोड़कर संसद को विभिन्न प्रकार के अधिकरणों की स्थापना की शक्ति प्रदान की गयी।
- अनुच्छेद-352 में संशोधन करके यह प्रावधान किया गया कि आपातस्थिति की उद्‌घोषण देश के किसी भाग के लिए भी की जा सकती है।
- अनुच्छेद-356 में संशोधन करके राज्यों में राष्ट्रपति शासन की प्रारंभिक अवधि को 6 महीने से बढ़ाकर 1 वर्ष कर दिया गया।
- **चौवालिसवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 :** 42वें संविधान द्वारा किये गये व्यापक परिवर्तनों को निरसित करने के उद्देश्य से जनता सरकार ने 44वां संविधान संशोधन अधिनियम पारित किया।
- इसके द्वारा सम्पत्ति के मूल अधिकार को मूल अधिकारों की सूची से निकालकर एक नये अनुच्छेद-300 (क) में **कानूनी अधिकार** के रूप में रखा गया।
- **लोकसभा तथा राज्य विधान सभा की अवधि को पुन:** 6 वर्ष के स्थान पर पांच वर्ष कर दिया गया।
- अनुच्छेद-352 के अधीन राष्ट्रीय आपातकाल की उद्‌घोषणा के लिए **'आंतरिक अशांति'** के स्थान पर **'संशस्त्र विद्रोह'** शब्द रखा गया अर्थात् सशस्त्र विद्रोह से आन्तरिक अशांति उत्पन्न होने पर ही राष्ट्रीय आपातकाल की उद्‌घोषणा की जा सकती है।

- मंत्रिमंडल के लिखित परामर्श पर ही राष्ट्रीय आपातकाल की उद्घोषणा की जा सकेगी।
- अनुच्छेद : 356 के अधीन राष्ट्रपति शासन की प्रारंभिक अवधि 1 वर्ष के स्थान पर पुन: 6 माह कर दिया गया।
- राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के निर्वाचन सम्बन्धी विवादों को हल करने के लिए उच्चतम न्यायालय को पुन: अधि कारिता प्रदान की गयी।
- 42वें संशोधन द्वारा मंत्रिमण्डल के सलाह को राष्ट्रपति के लिए बाध्यकारी बना दिया गया था, लेकिन 44वें संशोधन में यह व्यवस्था की गयी कि राष्ट्रपति मंत्रिमण्डल के सलाह बाध्यकारी होगा।
- निवारक निरोध कानून के आधार पर किसी व्यक्ति को दो माह की अवधि के लिए ही नजरबन्द किया जा सकता है, लेकिन सलाहकार बोर्ड के परामर्श पर यह अवधि बढ़ाई जा सकती है।
- **पैंतालीसवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1980 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा लोकसभा और राज्य विधानसभा में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों तथा आंग्ल-भारतीय समुदाय के आरक्षण की अवधि को 10 वर्षों के लिए और बढ़ा दिया गया।
- **इक्यावनवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1984 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा अनुच्छेद-330 में संशोधन करके मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, नागालैण्ड और मिजोरम के अनुसूचित जनजातियों के लिए लोंकसभा के स्थान आरक्षित किये गये। नागालैण्ड तथा मेघालय की विधानसभाओं में भी अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित किये गये और इसके लिए अनुच्छेद-332 में संशोधन किया गया।
- **बावनावां संविधान संशोधन अधिनियम, 1985 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा दल-परिवर्तन को रोकने के लिए प्रावधान किये गये।
- **पचपनवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1986 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा केन्द्र शासित प्रदेश अरुणाचल प्रदेश को राज्य का दर्जा प्रदान किया गया।
- **छप्पनवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1987 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा गोवा को दमन और दीव से अलग करके राज्य का दर्जा प्रदान किया गया, जबकि दमन और दीव को केन्द्र शासित प्रदेश बनाया गया। गोवा के लिए 30 सदस्यीय विधानसभा के गठन का प्रावधान किया गया।
- **इकसठवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1989 :** अनुच्छेद 326 का संशोधन करके मताधिकार की न्यूनतम आयु सीमा को **21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष** कर दिया गया।
- **बासठवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1989 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा लोकसभा और राज्यों की विधनसभाओं में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों तथा आंग्ल भारतीय समुदाय के लोगों के लिए आरक्षण की अवधि को 10 वर्षों के लिए और बढ़ा दिया गया।
- **इकहत्तरवां संविधान संशोधन अधिनियम 1992 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा तीन नये भाषाओं -**कोंकणी, मणिपुरी** और **नेपाली** को संविधान की आठवीं अनुसूची में स्थान दिया गया।
- **तिहत्तरवां संविधान संशोधन अधिनियिम, 1992 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा संविधान में एक नया **भाग-9** तथा **अनुच्छेद-243 क से 243 ण** तक 16 नये अनुच्छेद और एक नयी अनुसूची **11वीं अनुसूची** जोड़कर पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया।
- **चौहत्तरवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा संविधान में एक नया **भाग-9 क** तथा अनुच्छेद -243 से 243 य छ तक 18 नये अनुच्छेद और एक नयी अनुसूची, बारहवीं अनुसूची जोड़कर नगरीय स्थानीय शासन के संबंध में विस्तृत प्रावधान किये गये।
- **छिहत्तरवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1994 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा तमिलनाडु सरकार द्वारा पारित उस अधिनियम को संविधान की नवीं अनुसूची में शामिल कर लिया गया। जिसमें पिछड़े वर्गों के लिए 69 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया गया है।
- **सतहत्तरवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1995 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा अनुच्छेद -16 में एक नया खण्ड-4 (क) जोड़कर राज्याधीन सेवाओं में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए पदोन्नति में आरक्षण की व्यवस्था की गयी।
- **चौरासीवां संविधान संशोधन अधिनियम, 2001 :** इस संशोधन अधिनियम द्वारा लोकसभा और राज्य विधानसभाओं में सीटों की संख्या को 2026 तक यथावत बनाये रखने का प्रावधान किया गया।
- **पिचायासीवां संविधान संशोधन अधिनियम, 2001:** इस संशोधन अधिनियम द्वारा अनुसूचित जाति और जनजाति के लिए सरकारी नौकरियों में पदोन्नति में आरक्षण की व्यवस्था की गई।

- **छियासीवां संविधान संशोधन अधिनियम, 2001 :** सभी के लिए शिक्षा' के लक्ष्य को प्राप्त करने के उद्देश्य से यह संविधान संशोधन पारित किया गया ताकि 6–14 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए निः शुल्क और अनिवार्य शिक्षा को मूल अधिकार में सम्मिलित किया जा सके।
- **सतासीवां संविधान संशोधन अधिनियम, 2003 :** निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन सन् 2001 की जनगणना के आधार पर किया गया।
- **इक्यानवेवां संविधान संशोधन अधिनियम, 2003 :** इसमें दलबदल-विरोधी कानून में संशोधन किया गया है। इसके अतिरिक्त प्रावधान भी किया गया है कि केन्द्र और राज्य सरकारें अपने-अपने मन्त्रिमण्डल में मन्त्रियों की संख्या लोकसभा और विधान सभा की सीटों के 15% से ज्यादा नहीं कर सकतीं हैं।
- **बानवेवां संविधान संशोधन अधिनियम, 2003 :** इसमें आठवीं अनुसूची में चार और भाषाओं-मैथिली, डोगरी, बोडो और सन्थाली, को जोड़ा गया है।
- **तिरानवेवां संविधान संशोधन अधिनियम, 2006 :** इसमे अहत गैर-सहायता प्राप्त निजी शिक्षण संस्थाओं में आरक्षण की सुविधा प्रदान की गई है इसे अनुच्छेद 15 में जोड़ा गया है।
- **पिनचयानवेवां संविधान संशोधन अधिनियम, 2009 :** लोक सभा एवं राज्य विधान सभाओं में अनुसूचित जातियों, जनजातियों के लिए चुनावी सीटों के आरक्षण तथा आंग्ल भारतीय सदस्यों के मनोनयन की व्यवस्था को 26 जनवरी, 2010 से आगामी दस वर्ष के लिए और बढ़ा दिया है।
- **छियानवेवां संविधान संशोधन अधिनियम, 2010 :** 'उड़िया शब्द के स्थान पर **'ओड़िया'** किया गया।
- **सन्तानवेवां संविधान संशोधन अधिनियम, 2011 :** कोऑपरेटिव सोसाइटीज के निर्माण की स्वतन्त्रता मौलिक अधिकारों में सम्मिलित की गई। नीति निर्देशक तत्वों में कोऑपरेटिव सोसाइटीज के गठन प्रबन्धन आदि के प्रोत्साहन को सम्मिलित किया गया।